भारतीय ग्रन्थमाला—संख्या १.

++++ ++++ ++++++++++++

भारतीय शासन

'स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है; और,
हम इसे लेंगे।'

भारतीय ग्रन्थमाला—संख्या १.

भारतीय शासन

लेखक
देशी राज्य शासन, साम्राज्य और उनका पतन,
नागरिक शिक्षा, भारतीय जागृति, और
भारतीय राजस्व आदि के
रचयिता
भगवानदास केला

प्रकाशक
व्यवस्थापक, भारतीय ग्रन्थमाला, बृन्दाबन

मुद्रक
गयाप्रसाद तिवारी, बी. काम., नारायण प्रेस, प्रयाग

नवाँ संस्करण
१००० प्रति

सन् १९४४ ई०

मूल्य
डेढ़ रुपया

'भारतीय शासन' के संस्करण

पहला	संस्करण	१००० प्रतियाँ	सन् १९१५ ई०
दूसरा	,,	१००० ,,	,, १९१६ ,,
तीसरा	,,	१००० ,,	,, १९२१ ,,
चौथा	,,	१००० ,,	,, १९२५ ,,
पांचवाँ	,,	१२०० ,,	,, १९२७ ,,
छठा	,,	१२५० ,,	,, १९२९ ,,
सातवाँ	,,	१२५० ,,	,, १९३६ ,,
आठवाँ	,,	१२५० ,,	,, १९३८ ,,
नवाँ	,,	१००० ,,	,, १९४४ ,,

निवेदन

इस पुस्तक का प्रथम संस्करण पिछले योरपीय महायुद्ध के समय, सन् १९१८ में प्रकाशित हुआ था। अब नवें संस्करण के समय दूसरे महायुद्ध का चक्र चल रहा है। पिछले महायुद्ध के समय 'छोटे राष्ट्रों की स्वाधीनता' और 'स्वभाग्य-निर्णय' की बात का ज़ोर था। अब भी लोकसत्ता तथा स्वाधीनता स्थापित करने का दावा किया जा रहा है। भारतवर्ष इस दावे की कसौटी है। संसार भर की जनता का छठे भाग से अधिक अकेले इस देश में है।

तीस वर्ष तक अपने देश की पराधीनता-मूलक शासनपद्धति लिखते रहना कितना कष्टप्रद होता है, कोई सहृदय पाठक विचार करें। हमने इस पुस्तक का समय-समय पर संशोधन किया। इस बार भी जहाँ तक बन आया, सुधार और परिवर्तन करके इसे अधिक उपयोगी बनाने का प्रयत्न किया गया है। पर अब तो हम शासनपद्धति को बदल डालने के उत्सुक हैं। क्या शीघ्र ही इस पुस्तक का ऐसा संस्करण पाठकों की भेंट हो सकेगा, जिसमें भारतवर्ष की स्वाधीनता का विवेचन हो? प्रश्न व्यक्तिगत नहीं है, केवल राष्ट्रीय भी नहीं है, अन्तर्राष्ट्रीय महत्व का है; मानवता की दृष्टि से, सभी के लिए सोचने विचारने का है।

विनीत

विषय-सूची

पहला परिच्छेद

विषय प्रवेश

शासनपद्धति—उन्नत समाजवाले देशों में एक ऐसी संस्था होती है, जो वहाँ के निवासियों की सामूहिक उन्नति का ध्यान रखते हुए आवश्यक नियम बनाए और उन नियमों का पालन कराए, देश के भीतर शान्ति रखे, तथा विदेशियों के आक्रमण से उसकी रक्षा करे। इस संस्था को सरकार (गवर्मेंट) कहते हैं। सरकार कुछ ऐसे कार्यों का भी सम्पादन करती है, जिनको आदमी अलग-अलग न कर सकें, या जिन के लिए बहुत अधिक पूँजी की आवश्यकता हो।

उपर्युक्त विविध कार्यों को सुचारु रूप से चलाने के लिए तीन प्रकार के अधिकारियों की आवश्यकता होती है:—(१) व्यवस्था अर्थात् क़ानून बनानेवाले, (२) शासन, अर्थात् क़ानूनों पर अमल कराने, उनका अच्छी तरह पालन करानेवाले, और (३) न्याय, अर्थात् क़ानूनी अधिकारों की रक्षा कराने, और क़ानून-भंग के अपराधियों को दंड देनेवाले। कहीं तो ये तीन प्रकार के अधिकारी बिल्कुल पृथक्-पृथक् होते हैं, और कहीं, इनमें से दो या तीनों कार्य एक ही प्रकार के अधिकारियों के सुपुर्द होते हैं। अस्तु; इन तीन प्रकार के अधिकारियों के संगठन और कार्य-प्रणाली आदि के कानून या नियम-संग्रह को शासनपद्धति कहते हैं।

सरकार के कार्य; (१) व्यवस्था— सरकार के कार्य बड़े-बड़े राज्यों में, दो भागों में, विभक्त किये हुए हैं, केन्द्रीय सरकार के कार्य, और प्रान्तीय सरकार के कार्य। उन्नत राज्यों में इन कार्यों का संचालन करने के लिए क्रमशः केन्द्रीय और प्रान्तीय व्यवस्थापक सभाएँ क़ानून बनाती हैं। प्रायः केन्द्रीय विषयों की व्यवस्था के लिए दो-दो सभाएँ होती हैं। प्रान्तीय कानूनों के लिए प्रत्येक प्रान्त में प्रायः एक ही सभा होती है, परन्तु कहीं-कहीं दो-दो सभाएँ भी होती हैं। यदि एक ही सभा हो तो उसे व्यवस्थापक सभा कहते हैं। यदि सभाएँ दो होती हैं, तो उन्हें संयुक्त रूप में व्यवस्थापक मंडल कहा जाता है। दो सभाओं में से जिसमें जनसाधारण के प्रतिनिधि होते हैं, उसे छोटी सभा, निचली सभा, अथवा 'लोअर हाउस' कहते हैं। दूसरी सभा को जिसमें धनी-मानी या प्रतिष्ठित सदस्य होते हैं, बड़ी सभा, ऊपरली सभा, अथवा 'अपर हाउस' कहते हैं। स्मरण रहे कि निचली सभा में सदस्यों की संख्या अधिक होती है, तथा इस सभा के अधिकार भी ऊपरली सभा की अपेक्षा अधिक ही होते हैं। किसी व्यवस्थापक सभा में लोगों का प्रतिनिधि-रूप से भाग लेना, एक महत्वपूर्ण कार्य है। इसके लिए सुयोग्य व्यक्तियों का ही निर्वाचन होना चाहिए: और जो व्यक्ति निर्वाचित हों, उन्हें बड़े परिश्रम तथा ईमानदारी से अपने महान कर्तव्य का पालन करना चाहिए।

(२) शासन कार्य—भिन्न-भिन्न विषयों के क़ानून बना

देने से ही सरकार का कार्य पूरा नहीं हो जाता। इन क़ानूनों के अनुसार व्यवहार करना होता है। क़ानून को अमल में लाने, और शान्ति सुव्यवस्था रखने का कार्य करनेवालों को शासक कहा जाता है। सर्वोच्च शासक को कहीं तो व्यवस्थापक मंडल अथवा मतदाता निर्वाचित करते हैं, और कहीं वह पुश्तैनी होता है, अर्थात् पिता के बाद उसका बड़ा लड़का राज्य का अधिकारी हो जाता है। पहली दशा में वह राष्ट्रपति या प्रेसीडेंट कहलाता है, और दूसरी दशा में राजा या बादशाह आदि। सर्वोच्च शासक की सहायता के लिए एक सभा होती है, इसे प्रबन्धकारिणी सभा अथवा कहीं-कहीं मंत्रि-मंडल कहते हैं। प्रबन्धकारिणी सभा राज्य के विविध कर्मचारियों को नियुक्त करती है। सेना तथा पुलिस पर इसका अधिकार होता है। यही सभा राज्य के भिन्न-भिन्न विभागों के वार्षिक आय-व्यय का चिट्ठा अर्थात् बजट बनाकर उसे व्यवस्थापक सभा में पेश करती है, और उसकी स्वीकृति के अनुसार सर्व-साधारण से विविध कर आदि द्वारा आय प्राप्त करती है, तथा प्राप्त आय को ख़र्च करती है। किसी क्षेत्र के प्रबन्ध-कार्य की गुरुता को देखकर यह निश्चय किया जाता है कि उसकी प्रबन्ध-कारिणी सभा के कुल कितने सदस्य हों, अथवा एक-एक सदस्य के सुपुर्द क्या-क्या कार्य या विभाग रहें। इसमें समय-समय पर परिवर्तन होता रहता है।

शासकों का संगठन केन्द्र, प्रान्त तथा ज़िला वार होता है। अपने-अपने क्षेत्र में निर्धारित अधिकार रखते हुए, ज़िलों के

शासक तो प्रन्तीय शासक के अधीन होते हैं, और प्रान्तीय शासक देश काल के अनुसार, कुछ बातों में केन्द्रीय शासकों के अधीन होते हैं।

उन्नत और विकसित राज्यों में राजा या बादशाह सब कार्य प्रधान मंत्री की सलाह से करता है, जो व्यवस्थापक सभा के प्रति उत्तरदायी होता है। अन्य शासक पूर्णतया व्यवस्थापकों के प्रति उत्तरदायी होते हैं; इनका वेतन निश्चय करने का अधिकार व्यवस्थापक सभा का होता है। जिस समय यह जान पड़े कि शासक अपना कर्तव्य ठीक पालन नहीं करते, व्यवस्थापकों को अधिकार है कि उन्हें उनके पद से हटाने का प्रयत्न करें। बहुत से अनुभवों से, शासकों (या मंत्रिमण्डल) को उनके पद से हटाने के लिए एक शिष्टाचार-मूलक पद्धति का आविष्कार हो गया है। वैध राजतंत्र या लोकतंत्र राज्यों में व्यवस्थापक सभा को असन्तुष्ट देखकर, या उसके उन पर अविश्वास प्रकट करने पर वे त्यागपत्र दे देते हैं।

(३) **न्याय कार्य**--किसी देश के सुप्रबन्ध के लिए समय-समय पर यह भी विचार करना आवश्यक होता है कि किसी स्थान में किसी व्यक्ति-समूह ने क़ानून का उल्लङ्घन तो नहीं किया है। क़ानून जैसे नागरिकों के लिए होता है, वैसे ही शासकों अर्थात् सरकारी कर्मचारियों के वास्ते भी होता है। अपनी रक्षा और उन्नति के लिए नागरिक अपने कुछ अधिकार शासकों को दे देते हैं, तथापि उन्हें भी यथेष्ट अधिकार रहते हैं। यदि किसी समय नागरिकों और शासकों में किसी विषय

पर मतभेद हो तो उसका निपटारा कराने के लिए न्यायालय होते हैं। वे यह भी विचार करते हैं कि यदि दो या अधिक नागरिकों का पारस्परिक झगड़ा है तो क़ानून की दृष्टि से किसका पक्ष उचित है, और किसका अनुचित। ऐसे विचार या निर्णय को 'न्याय' कहते हैं, और इस कार्य को करनेवाले न्यायाधीश, जज, या मुन्सिफ आदि कहलाते हैं। न्याय का उद्देश्य तभी सफल हो सकता है, जब वह सस्ता और निष्पक्ष हो। उसमें जाति, रंग, धनी और निर्धन, राजकर्मचारी और नागरिक, आदि का लिहाज़ न होना चाहिए। विशेषतया पराधीन देशों में राजनैतिक विषयों में बहुधा अन्याय होने, शासकों के त्रुटि-युक्त पक्ष का भी समर्थन होने, और शासक जाति के आदमियों से अनुचित रियायत होने की सम्भावना रहती है। इस ओर न्यायाधीशों का विशेष ध्यान रहना चाहिए।

इस प्रसंग में यह उल्लेख करना आवश्यक है कि न्यायाधीशों की नियुक्ति, उनके पद या वेतन की वृद्धि, तथा उन्हें हटाने का अधिकार शासकों के अधीन न होकर, व्यवस्थापक संस्थाओं के अधीन रहना चाहिए। और, किसी भी दशा में न्याय-कार्य शासकों के सुपुर्द न होना चाहिए। पुनः विशेषतया फौजदारी मामलों में यह सर्वथा सम्भव है कि एक न्यायाधीश अभियोग को समुचित रीति से न समझे, अथवा उसका निणय एकांगी हो। इसलिए उन्नत राज्यों में अभियुक्त की जाति तथा देश के कुछ सुयोग्य सज्जनों की 'जूरी' यह विचार करती है कि अभियोग सम्बन्धी वास्तविक घटनाएँ क्या है। उसके आधार पर, जज

तत्सम्बन्धी क़ानूनी निर्णय सूचित करता है।

सरकार के तीनों अंगों का सम्बन्ध—इस प्रकार सरकार के तीन कार्य होते हैं—व्यवस्था, शासन, और न्याय। इन कार्यों को व्यवस्थापक मंडल, शासक मंडल, और न्याय-विभाग कहते हैं। ये सरकार के तीन अंग हैं। यद्यपि इन अंगों का कार्य पृथक्-पृथक् है, तथापि इनमें से प्रत्येक का दूसरे से घनिष्ठ सम्बन्ध है। कोई सर्वथा स्वतंत्र नहीं है। व्यवस्थापक मंडल क़ानून बनाता है, तो उन पर अमल शासक-मण्डल करवाता है, और, उन क़ानूनों की अवहेलना करनेवालों को दंड देने का विचार न्याय विभाग करता है। क़ानून बनने का महत्व तभी है, जब जनता उसका पालन करे; और, सर्वसाधारण क़ानूनों का पालन तभी करते हैं, जब उन्हें भली भांति मालूम हो कि ऐसा न करने से उन्हें दंड दिया जायगा। दंड का निश्चय न्याय-विभाग करता है और वह दंड जेल के अधिकारियों द्वारा दिया जाता है, जो शासक मंडल के अधीन होते हैं। यदि शासक मंडल यह कार्य न करे तो न्याय-विभाग के कार्य का कुछ महत्व नहीं रहता। इसी प्रकार, यदि न्याय-विभाग न हो तो व्यवस्थापक मंडल के बनाए क़ानूनों का ठीक अर्थ लगाना, नागरिकों-नागरिकों के, तथा नागरिकों और शासकों के झगड़े या मतभेद का निपटारा होना कठिन है। इस प्रकार न्याय विभाग व्यवस्थापक मंडल की महत्वपूर्ण सहायता करता है।

सरकार के तीनों अंग अपने-अपने स्थान पर उच्च हैं। प्रत्येक

के अपना-अपना कर्तव्य भली भांति पूरा करने से ही राज्य की, और देश के नागरिकों की, उन्नति होती है।

भारतवर्ष के राजनैतिक भाग—राजनैतिक दृष्टि से भारतवर्ष के पाँच भाग हैं:—१—स्वाधीन राज्य। २—बर्मा। ३—देशी राज्य। ४—ब्रिटिश या अंगरेज़ी भारत। ५—अन्य विदेशी राज्य।

इन पाँचों भागों का क्षेत्रफल कुल मिलाकर लगभग उन्नीस लाख वर्ग मील और जनसंख्या लगभग उनतालीस करोड़ है। देशी राज्यों और ब्रिटिश भारत की शासनपद्धति का विवेचन आगे सविस्तर किया जायगा। यहाँ सब भागों के सम्बन्ध में केवल कुछ मुख्य-मुख्य बातें दी जाती हैं।

स्वाधीन राज्य—भारतवर्ष में स्वाधीन राज्य केवल नेपाल ही हैं। इसकी सीमा पर भारत सरकार का रेज़ीडेंट रहता है, पर उसे इसके आन्तरिक राज-प्रबन्ध में हस्तक्षेप करने का कुछ अधिकार नहीं होता। यह राज्य हिमालय के दक्षिण में, अधिकांश में पहाड़ी राज्य है। इसकी लम्बाई पांच छः मील से अधिक, और चौड़ाई लगभग एकसौ चालीस मील है। पिछली मनुष्य-गणना के अनुसार, यहाँ का क्षेत्रफल चव्वन हज़ार वर्ग-मील, और जनसंख्या साठ लाख है। नेपाल में छोटे-बड़े कुल २२ राज्य हैं। यहाँ का प्रधान शासक 'महाराजाधिराज श्री पांच सरकार' कहलाता है। वस्तुतः शासन-कार्य का सम्पादन प्रधान मंत्री करता है, यह 'महाराज तीन सरकार' कहलाता है। इससे नीचे जंगी लाट होता है, वह इसके देहान्त के बाद इसके पद का

अधिकारी हो जाता है। अंगरेज़ सरकार इस राज्य को प्रति वर्ष दस लाख रुपये भेंट करती है। यहाँ के क़ायदे क़ानून प्राचीन हिन्दू शास्त्रों के अनुसार है। शासन में कठोरता है, चोरी, डाके आदि को रोकने का कड़ा प्रबन्ध है। मुक़द्दमे स्वयं 'तीन सरकार' सुनते हैं, उनमें वकीलों की आवश्यकता नहीं होती।

बर्मा—उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में, भारतवर्ष पर अधिकार कर लेने के बाद, अंगरेजों ने बर्मा लेने का प्रयत्न किया, और उक्त शताब्दी के अन्तिम भाग में उसे क्रमशः प्राप्त कर लेने पर ब्रिटिश भारत के अन्तर्गत एक प्रान्त बना दिया; कारण, अंगरेज़ों को उसके लिए अलग सरकार स्थापित करने की सुविधा न थी, और बर्मा को जीतने में भारतवर्ष के ही जन-धन का उपयोग हुआ था। बर्मा अपनी पैदावार के कारण अङ्गरेज़ों के लिए बहुत लाभप्रद रहा, और विशेषतया मिट्टी के तेल के कारण आधुनिक मोटर तथा वायुयान के युग में, यह राजनैतिक दृष्टि से भी साम्राज्य के लिए बहुत उपयोगी प्रमाणित हुआ। इसके अतिरिक्त, सिंगापुर में जल-सेना का केन्द्र बनाने से बर्मा का महत्व और भी बढ़ गया। ब्रिटिश भारत में, गत वर्षों में स्वातन्त्र्य-आन्दोलन क्रमशः अधिकाधिक अग्रसर होने से, अंगरेज़ों को उसके साथ बर्मा के भी स्वतन्त्र हो जाने की आशङ्का होना स्वाभाविक था। अस्तु, अंगरेज़ों ने उसे ब्रिटिश भारत से अलग करने का विचार किया और इस विषय में भारत तथा बर्मा के जनमत पर ध्यान न देकर उन्होंने सन् १९३५ में बर्मा के लिए पृथक् शासनपद्धति का निर्माण कर दिया।

यहाँ की सरकार वे सब काम करती है जो ब्रिटिश भारत में प्रान्तीय तथा केन्द्रीय सरकार करती हैं, अर्थात् यहाँ शासन सम्बन्धी विषयों का केन्द्रीय और प्रान्तीय विषयों में विभाजन नहीं किया गया है। यहाँ का प्रधान शासक गवर्नर है, और उसका सम्राट् से सीधा सम्बन्ध है। बर्मा के लिए अलग रिज़र्व बैंक नहीं है; भारतवर्ष का ही रिज़र्व बैंक बर्मा सम्बन्धी कार्य भी करता है। बर्मा के व्यवस्थापक मंडल की दो सभाएँ हैं:—(१) सीनेट और (२) प्रतिनिधि-सभा (हाउस-आफ़-रिप्रेज़ेन्टेटिव)। सन् १९४१ ई० की मनुष्यगणना के अनुसार यहाँ की जनसंख्या डेढ़ करोड़ और क्षेत्रफल २ लाख २३ हज़ार वर्गमील है।

पुस्तक छपते समय बर्मा पर जापान का अधिकार है; ब्रिटिश सरकार इसे वापिस लेने का प्रयत्न कर रही है।

देशी राज्य——ये कुल मिलाकर लगभग ५६० है। इनमें से कुछ तो विस्तार में योरप के स्वतंत्र राष्ट्रों के बराबर हैं, और बहुत से बहुत ही छोटे-छोटे हैं। इनका आन्तरिक शासन यहाँ के ही राजा या सरदार, सम्राट् (इंगलैंड-नरेश) की अधीनता में रहते हुए, करते हैं। इन राज्यों की शासनपद्धति एक स्वतंत्र परिच्छेद में बताई जायगी। इनका कुल क्षेत्रफल सात लाख वर्ग मील से अधिक और जनसंख्या नौ करोड़ से ऊपर है। इनका कुछ ब्यौरा आगे दिया जाता है।

२

देशी राज्य

संख्या	देशी राज्य	क्षेत्रफल (वर्ग मील)	जनसंख्या (सन १९४१ ई०)
१	हैदराबाद ...	८२,६९८	१,६१,८४,०००
२	मैसूर ...	२९,३२६	७३,२९,०००
३	बड़ौदा ...	८,१६४	२८,५५,०००
४	कशमीर ...	८४,५१६	४०,२१,०००
५	गवालियर ...	२६,३६७	३९,९२,०००
६	सिक्कम	२,८१८	१,२२,०००
७	पश्चिम भारत एजन्सी	३५,४४२	४९,०१,१००
८	पंजाब के राज्य ...	३१,२४१	५४,५९,०००
९	पश्चिमोत्तरसीमाप्रांत ए०	२२,८३८	२३,७८,०००
१०	बलोचिस्तान एजन्सी	८०,४१०	३,५६,०००
११	मध्यभारत एजन्सी ...	५१,५९७	७३,०२,०००
१२	राजपूताना एजन्सी ..	१,२९,०५९	१,३९,७०,०००
१३	मद्रास के राज्य ...	१०,७२६	७१,८२,०००
१४	पंजाब के पहाड़ी राज्य	५,८२०	१०,९४,०००
१५	उड़ीसा के राज्य ...	१८,२७७	३०,२५,०००
१६	बंगाल के राज्य ...	६,६७७	२१,४२,०००
१७	आसाम में ...	१२,३२०	७,२५,०००
१८	संयुक्तप्रान्त में ...	५,९४३	९,२८,०००
१९	छत्तीसगढ़ के राज्य	३१,०२०	४०,५४,०००
२०	कोल्हापुर और दक्षिण के राज्य ...	१०,०५२	२७,८९,०००

ब्रिटिश भारत—ब्रिटिश भारत के प्रान्तों के नाम, क्षेत्र-फल और जनसंख्या आगे दी जाती है; शासनपद्धति अगले परिच्छेदों में बताई जायगी।

संख्या	प्रान्त	क्षेत्रफल (वर्ग मील)	जनसंख्या (सन १९४१ ई०)
१	आसाम	५५,०००	१,०२,०५,०००
२	बंगाल	७८,०००	६,०३,१४,०००
३	बिहार	६९,०००	३,६३,४०,०००
४	बम्बई	७७,०००	२,०८,५८,०००
५	मध्यप्रान्त और बरार	९९,०००	१,६८,२२,०००
६	मदरास	१,३६,०००	४,९३,४२,०००
७	पश्चिमोत्तर सीमाप्रांत	१४,००१	३०,३८,०००
८	उड़ीसा	३२,०००	८७,२९,०००
९	पंजाब	९९,०००	२,८४,१६,०००
१०	संयुक्तप्रान्त	१,०६,०००	५,५०,२१,०००
११	सिंध	४६,०००	४५,३७,०००
योग	गवर्नरों के प्रान्त	८,०१,०००	२९,३६,२५,०००
१	बलोचिस्तान	५४,२००	२२,०२,०००
२	अजमेर-मेरवाड़ा	२,७००	
३	अन्डमान-निकोबार	३,१००	
४	कुर्ग	१,६००	
५	देहली	६००	
६	पंथ पिपलोदा	×	
योग	चीफ़-कमिश्नरों के प्रान्त	६२,२००	२२,०२,०००
	ब्रिटिश भारत	८,६३,२००	२९,५८,२७,०००

अन्य विदेशी राज्य—भारत के अन्य विदेशी राज्यों से अभिप्राय उन भागों से है जो अंगरेजों क अतिरिक्त अन्य यारपियन शक्तियों के अधीन हैं । यनाम, माही कारीकल, पांडेचेरी, और चन्द्रनगर फ्रांस के अधीन हैं । इनका क्षेत्रफल दो सौ वर्ग मील और जनसंख्या तोन लाख से कुछ कम है । इन स्थानों में पांडेचेरी मुख्य है । यही इन सब की राजधानी है, यहाँ इनका प्रबन्ध करने के लिए एक गवर्नर तथा उसको सहायतार्थ एक मन्त्री, कुछ विविध विभागों के सेक्रेटरी, और एक न्यायाध्यक्ष रहते हैं ।

इस समय फ्रांस के अधिकांश भाग पर जर्मनी का प्रत्यक्ष या परोक्ष अधिकार है । स्वतंत्र फ्रांस की सरकार इङ्गलैंड में है ।

गोवा, डामन, और ड्यू पुर्तगाल के अधीन हैं । इन तीनों स्थानों का क्षेत्रफल साढ़े चौदह सौ वर्गमोल और जनसंख्या लगभग छः लाख है । इन स्थानों के लिए एक गवर्नर-जनरल, गोवा (राजधानी) में रहता है । उसकी प्रायः पाँच साल में बदली होती है । उसकी प्रबन्धकारिणी और व्यवस्थापक दोनों प्रकार की सभाएँ हैं ।

दूसरा परिच्छेद

ब्रिटिश सरकार और भारतवर्ष

प्राक्कथन—भारतवर्ष के शासन का ब्रिटिश पार्लिमेंट, और इंगलैंड के बादशाह (भारतवर्ष के सम्राट) से घनिष्ठ सम्बन्ध

है। ब्रिटिश भारत तो इनके अधीन ही है। यहाँ जो शासनपद्धति प्रचलित है, वह ब्रिटिश पार्लिमेंट द्वारा निश्चित की गयी है, और वही इसमें सुधार करती है। पुनः यहाँ का शासन इंगलैंड तथा उसके स्वाधीन उपनिवेशों की शैली पर चलाने का प्रयत्न किया जा रहा है। इसलिए, भारतीय शासनपद्धति को अच्छी तरह समझने के वास्ते, ब्रिटिश साम्राज्य की शासनपद्धति और ब्रिटिश सरकार का भारतवर्ष के शासन में सम्बन्ध जान लेना उपयोगी है। यहाँ कुछ मुख्य-मुख्य बातें दी जाती हैं।†

इस पुस्तक में इङ्गलैंड से अभिप्राय ब्रिटिश संयुक्त राज्य अर्थात् इङ्गलैंड, वेल्ज़, तथा स्काटलैंड, और उत्तरी आयर्लैण्ड से है। इनमें इङ्गलैण्ड ही प्रधान है।

बादशाह—इंगलैंड का बादशाह अपने वंश के ही कारण, पैत्रिक सिंहासन का उत्तराधिकारी होता है, गुण कर्मानुसार नहीं होता। पुरुष भी गद्दी पर बैठ सकता है और स्त्री भी; परन्तु शाही खानदान में भाई का अधिकार, बहिन के अधिकार से अधिक माना जाता है। बादशाह के बड़े लड़के को 'प्रिंस-आफ़-वेल्स' (युवराज) कहते हैं। शाही परिवार के ख़र्च के लिए प्रति वर्ष पार्लिमेंट द्वारा निर्धारित रक़म दी जाती है। इस रक़म के अतिरिक्त सम्राट् राष्ट्रीय कोष से अपने लिए और कुछ ख़र्च नहीं करता।*

† इस विषय का सविस्तर वर्णन, स्वतंत्र रूप से, भारतीय ग्रन्थ माला की 'ब्रिटिश साम्राज्य शासन' पुस्तक में किया गया है।

* यह बात भारतीय नरेशों के लिए बहुत अनुकरणीय है, जो अपने अपेक्षाकृत बहुत कम आयवाले राज्य के कोष से, अपने व्यक्तिगत या पारिवारिक कार्यों के लिए बड़ी-बड़ी रक़में ख़र्च किया करते हैं, और इन पर कोई बन्धन या सीमा नहीं रहती।

बादशाह सर्वथा स्वतंत्र या स्वेच्छाचारी नहीं है। यद्यपि उसे कुछ विशेष अधिकार भी प्राप्त है, आम तौर से वह अपने अधिकारों को अपने मन्त्रियों की सलाह बिना अमल में नहीं लाता। ब्रिटिश शासनपद्धति का एक मुख्य सिद्धान्त यह है कि बादशाह कोई ग़लती नहीं कर सकता। बात यह है कि वह किसी भी राज्य-कार्य का उत्तरदायी नहीं। सब कामों के उत्तरदाता मन्त्री हैं। वे पार्लिमेंट के प्रति उत्तरदायी होते हैं। †

पार्लिमेंट— ब्रिटिश पार्लिमेंट की दो सभाएँ हैं—'लार्ड' सभा या 'हाउस-आफ़-लार्ड्स' और 'कामन' सभा या 'हाउस-आफ़-कामन्स'। 'लार्ड का अर्थ है स्वामी, प्रभु या सरदार, और 'कामन्स' का अर्थ है सर्वसाधारण। लार्ड सभा में लगभग ७०० सदस्य हैं। इनमें से छः सौ से अधिक वंशागत हैं, ये लोग स्वभाव से प्रायः परिवर्तन-विरोधी या अनुदार होते हैं। देश के व्यवस्था-कार्य में इनका हाथ होने से जहाँ क्रांतिकारी परिवर्तनों को रोकने में सहायता मिल सकती है, वहाँ यह बड़ी हानि भी है कि इनके कारण कोई सुधार होने में बहुत बिलम्ब हो जाता है। 'कामन' सभा के सदस्य निर्वाचित होते हैं, उनकी संख्या छः सौ पन्द्रह है। स्त्रियों को निर्वाचन-अधिकार पुरुषों के समान है। इस सभा का प्रत्येक ग़ैर-सरकारी सदस्य ६०० पौंड वार्षिक वेतन पाता है। सदस्यों का निर्वाचन प्रायः पाँचवें वर्ष होता है।

---

† भारतीय नरेशों को भी वैध शासक होना चाहिए, अर्थात् सब कार्य मन्त्रियों के परामर्शानुसार करना चाहिए।

कोई क़ानून (एक्ट) बनने से पहले, बादशाह और पार्लिमेंट की दोनों सभाओं का एकमत होना आवश्यक है। साधारण तौर से क़ानूनी मसविदे तीन प्रकार के होते हैं:—(१) सार्वजनिक, जो जनता के सम्बन्ध में हों, (२) व्यक्तिगत, जो किसी विशेष व्यक्ति या व्यक्ति-समूह से सम्बन्ध रखते हों, (३) धन सम्बन्धी, जो सार्वजनिक कामों के लिए रुपया देने या टेक्स लगाने आदि के सम्बन्ध में हों। धन सम्बन्धी मसविदे केवल 'कामन' सभा में ही आरम्भ होते हैं। उनको छोड़ कर, अन्य मसविदे किसी भी सभा में आरम्भ हो सकते हैं। हर एक सभा, दूसरी सभा के पास किये मसविदे का संशोधन कर सकती है, लेकिन लार्ड-सभा धन सम्बन्धी मसविदों का संशोधन नहीं कर सकती। अगर कोई मसविदा लार्ड-सभा से दो बार अस्वीकृत हो जाय तो कामन-सभा से तीसरी बार स्वीकृत होने पर, उसे बादशाह की स्वीकृति के लिए भेज दिया जाता है, और उसकी स्वीकृति मिल जाने पर वह क़ानून बन जाता है। इन विशेष दशाओं के अतिरिक्त, साधारणतः हर एक मसविदा सम्राट् की स्वीकृति पाने से पूर्व, दोनों सभाओं में तीन बार पढ़ा जाना और पास होना आवश्यक है। प्रायः दोनों सभाएँ सहमत हो जाती हैं, या मतभेद की दशा में कुछ समझौता कर लेती है। यद्यपि पार्लिमेंट के अधिकार शासन और प्रबन्ध सम्बन्धी भी हैं, उसने अपने ये अधिकार छोटी-छोटी संस्थाओं—प्रिवी कौंसिल, | मन्त्रिमण्डल आदि—को दे दिये हैं।

प्रिवी कौंसिल—बादशाह को शासन-कार्य में परामर्श देने के लिए एक 'प्रिवी कौंसिल' (गुप्त सभा) रहती है। इसके सदस्यों को बादशाह स्वयं नियत (एवं बर्खास्त) करता है। राजनैतिक महत्व के या राजपरिवार से सम्बन्ध रखनेवाले व्यक्ति, तथा मंत्रिमंडल के सदस्य आदि इस सभा के मेम्बर होते हैं। सभा का प्रधान 'लार्ड प्रेसीडेन्ट' कहलाता है, यह हमेशा मंत्रिमंडल का सदस्य होता है। इस सभा की जुडिशल (न्याय सम्बन्धी) कमेटी को भारतवर्ष, उपनिवेशों तथा पादरियों की ऊँची अदालतों के फ़ैसलों की अपील सुनने का अधिकार है। इस सभा के कुल सदस्यों की संख्या ३५० से ऊपर हो जाती है। बहुधा छः सदस्यों की उपस्थिति में ही काम कर लिया जाता है। 'सम्राट् की परिषद्' कहने से इसी सभा का आशय लिया जाता है। इस सभा की सलाह से सम्राट् की जो आज्ञाएँ निकलती हैं, उन्हें 'सपरिषद् सम्राट् की आज्ञाएँ' ('आर्डर्स-इन-कौंसिल') कहा जाता है। इस सभा के बहुत बड़ी होने के कारण, बहुत से विषयों में बादशाह को सलाह देने का काम मंत्रिमंडल करता है।

मंत्रिमंडल—आजकल इंगलैंड में तीन राजनैतिक दल या पार्टियाँ मुख्य हैं, (१) उदार या 'लिबरल' (२) अनुदार या 'कंज़र्वेटिव' और (३) मज़दूर या 'लेबर' दल। शासन सम्बन्धी विविध विभागों के उच्च पदाधिकारी उस राजनैतिक दल के आदमियोंमें से नियत किये जाते हैं, जिसके सदस्यों की संख्या 'कामन'-सभा में सब से अधिक हो, या जो विशेष प्रभावशाली

हो, और इतने अन्य सदस्यों का सहयोग प्राप्त कर सके कि कुल सदस्य मिलकर विरोधी दल के सदस्यों से अधिक होजायँ। ये पदाधिकारी लगभग पचास होते हैं, और मंत्री या 'मिनिस्टर' कहलाते हैं। इनके समूह को मन्त्रिवर्ग ('मिनिस्टरी') कहते हैं।

कुछ मुख्य-मुख्य विभागों के मन्त्रियों की एक अन्तरङ्ग सभा होती है। इसे मंत्रिमण्डल या 'कबिनेट' कहते हैं। मंत्रि-मण्डल को ब्रिटिश राज्य-चक्र की धुरी समझना चाहिए। यह सब शासन-कार्य का उत्तरदायी है। इसमें प्रधान मन्त्री के अतिरिक्त लगभग बीस मन्त्री रहते हैं। जब एक मत्रिमण्डल त्यागपत्र देता है तो बादशाह दूसरा मत्रिमण्डल बनाने के लिए किसी दूसरे राजनीतिज्ञ को बुलाता है। अगर यह राजनीतिज्ञ अपने कार्य में सफल होजाय तो इसे प्रधान मन्त्री बना दिया जाता है। प्रधान मन्त्री, मंत्रिमण्डल के अधिवेशनों में सभापति होता है, सरकार की नीति ठहराता है, और विविध विभागों की निगरानी करता है। भारत-मन्त्री भी इस मंत्रिमण्डल का एक सदस्य होता है, उसके विषय में अगले परिच्छेद में लिखा जायगा।

होम गवर्मेंट—ऊपर इंगलैण्ड के बादशाह, पार्लिमेंट और मंत्रिमंडल के सम्बन्ध लिखा गया है। जहाँ तक ये भारतवर्ष के शासन की व्यवस्था करते हैं, इन्हें सामूहिक रूप से 'होम गवर्मेंट' कहते हैं। अंगरेजी शब्द 'होम' का अर्थ घर या स्वदेश है। क्योंकि बादशाह या पार्लिमेंट आदि इंगलैण्ड में

रहते हैं, और विदेशी हैं, इन्हें भारतवर्ष को 'होम गवर्मेंट' या गृह-सरकार कहना अशुद्ध है। इनका यह नाम अंगरेज शासकों ने अपनी दृष्टि से डाला; पीछे यही नाम सरकारी कागज पत्रों में आ गया, और भारतवासियों में भी प्रचलित हो गया।

भारतवर्ष स्वाधीन होने पर 'होम गवर्मेंट' के प्रभुत्व से मुक्त हो जायगा, अर्थात् 'होम गवर्मेंट' के भारत सम्बन्धी अधिकारों का लोप हो जाना भारतवर्ष का स्वराज्य प्राप्त करना है।

'होम गवर्मेंट' द्वारा होनेवाले खर्च को 'होम चार्जेस' कहते हैं। यह खर्च भारतवर्ष के खजाने से भेजा जाता है। इसका परिमाण घटता-बढ़ता रहता है, और प्रति वर्ष प्राय: चालीस पैंतालीस करोड़ रुपये होता है। इसमें बड़े-बड़े अंगरेज अफसरों की पेन्शन, भारत-मंत्री के दफ़्र का खर्च, हाई कमिश्नर का वेतन,; और भारतवर्ष के लिए इंगलैंड में खरीदे जानेवाले विविध प्रकार के सामान के मूल्य का समावेश होता है।

'होम गवर्मेंट' के मुख्य अंगों में से यहाँ सम्राट् और पार्लिमेंट का भारतवर्ष से सम्बन्ध बताया जाता है। भारत-मंत्री के विषय में, स्वतंत्र रूप से, अगले परिच्छेद में लिखा जायगा।

सम्राट् और भारतवर्ष—इंगलैंड का बादशाह भारतवर्ष का सम्राट् कहलाता है, उसका यहाँ (भारतवर्ष) आना बहुत ही कम होता है और, जब वह आता भी है तो नपे-तुले समय के लिए। वह कुछ खास-खास नगरों में निर्धारित कार्य-क्रम के अनुसार ठहरता है, भारतीय लोक नेताओं के सम्पर्क में वह विशेष नहीं आता और उसे भारतवर्ष सम्बन्धी जानकारी भी

प्रायः कुछ नहीं होती। भारतीय जनता उसका दर्शन सिक्कों नोटों या टिकटों आदि पर छपे चित्रों में करती है। पहले कहा जा चुका है कि सम्राट् के नाम से होनेवाला सब कार्य वास्तव में उसके मंत्री ही करते-धरते हैं, इस प्रकार सम्राट् भारतवर्ष के सम्बन्ध में, सहानुभूति रखते हुए भी विशेष कार्य नहीं करता।

सम्राट् के अधिकार दो प्रकार के हैं—(१) विशेषाधिकार ('प्रिरोगेटिव') और (२) कानूनी ('स्टेस्यूटरी') अधिकार। विशेषाधिकारों में एक अधिकार अपराधियों को क्षमा प्रदान करना है। सम्राट् भारतवर्ष में इस अधिकार का उपयोग गवर्नर-जनरल या गवर्नर द्वारा करता है। इसका प्रसंग प्रायः प्राण-दंड से मुक्ति देने के अवसर पर आता है। सम्राट् पर कोई दीवानी या फौजदारी मुकदमा नहीं चलाया जा सकता, यह उसके विशेषाधिकार का दूसरा उदाहरण है। सम्राट् के कुछ कानूनी अधिकार निम्नलिखित हैं :—गवर्नर-जनरल, गवर्नरों और जंगी लाट आदि प्रमुख अधिकारियों की नियुक्ति करना, गवर्नर-जनरल और गवर्नरों को आदेश-पत्र देना, संघ-न्यायालय और हाईकोर्टों की स्वीकृति या अस्वीकृति। सन् १९३५ के विधान के अनुसार जिस संघ शासन की प्रस्तावना की गयी थी, उसके सम्बन्ध में भी सम्राट् को विविध अधिकार थे।

पार्लिमेंट और भारतवर्ष—ब्रिटिश पार्लिमेंट का भारतीय शासन से विशेषतया निम्नलिखित सम्बन्ध है :—

(१) वह भारतवर्ष की शासनपद्धति निश्चय करती है। वह

प्रचलित शासनपद्धति या किसी शासन-विभाग की जाँच के लिए कमीशन नियुक्त करती है तथा आवश्यक परिवर्तन करने के लिए नया विधान बनाती है या सम्राट् की आज्ञा निकलवाती है।

(२) ब्रिटिश भारत का आय व्यय अनुमान-पत्र (बजट) तथा यहाँ की उन्नति का विवरण उपस्थित होने पर उसके सदस्य प्रति वर्ष भारतीय शासनपद्धति की आलोचना करते हैं।

(३) पार्लिमेंट की दोनों सभाओं के कुछ सदस्यों की एक कमेटी है, जो भारतवर्ष सम्बन्धी घटनाओं की जानकारी प्राप्त करती, तथा पार्लिमेंट को उनके सम्बन्ध में परामर्श देती है।

(४) भारत-मन्त्री का वेतन, और उसके कार्यालय का व्यय ब्रिटिश कोष से दिया जाता है; बजट की इस मद पर विचार करने के समय पार्लिमेंट में भारतीय विषयों की चर्चा होती है।

(५) पार्लिमेंट के सदस्य कभी-कभी भारतवर्ष सम्बन्धी प्रश्न पूछते, और प्रस्ताव करते हैं।

साधारणतया पार्लिमेंट के अधिकांश सदस्य भारतवर्ष सम्बन्धी विषयों में बहुत अनुराग नहीं रखते, उन्हें अपने देश की, तथा साम्राज्य सम्बन्धी विविध समस्याओं से बहुत कम अवकाश मिलता है।

ब्रिटिश साम्राज्य; उत्तरदायी शासन—इस परिच्छेद में अभी तक ब्रिटिश साम्राज्य के मातृ-देश अर्थात् इंगलैंड की शासनपद्धति का वर्णन हुआ है। ब्रिटिश साम्राज्य में, इसके अतिरिक्त स्वाधीन या पराधीन कई भू-भाग हैं। केनेडा, दक्षिण

अफ्रीका, आस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैंड, न्यूफ़ाउन्डलैंड और आयरिश-फ्री-स्टेट को अपने आन्तरिक शासन के लिए पूर्ण, तथा वैदेशिक प्रबन्ध के लिए बहुत-कुछ, स्वतन्त्रता प्राप्त है। इन देशों में उत्तरदायी शासनपद्धति प्रचलित है। भारतवर्ष का राजनैतिक ध्येय भी यही माना गया है। इस शासनपद्धति की मुख्य-मुख्य बातें ये हैं:—

(१) शासन सम्बन्धी सब कार्य प्रधान शासक के नाम से किये जाते हैं। वह व्यवस्थापक मण्डल के प्रति उत्तरदाता नहीं होता, इसलिए वह उसके द्वारा हटाया भी नहीं जा सकता। इसे कहीं गवर्नर-जनरल, और कहीं गवर्नर कहते हैं।

(२) उसके कार्य मंत्रियों के परामर्श से और उन्हीं के उत्तरदायित्व पर होते हैं। मंत्री, नाम-मात्र को उसके द्वारा, परन्तु वास्तव में प्रजा-प्रतिनिधियों द्वारा, साधारणतः व्यवस्थापक मण्डल के सदस्यों में से चुने जाते हैं। इस प्रकार प्रजा-प्रतिनिधि अपने निर्वाचित मंत्रियों द्वारा, देश का शासन करते हैं।

(३) जब व्यवस्थापक सभा का इन मंत्रियों पर विश्वास नहीं रहता, तो ये (यदि ये व्यवस्थापक मण्डल को बर्खास्त नहीं करते) त्यागपत्र दे देते हैं, और उनके स्थान पर नये मंत्री चुने जाते हैं। इस प्रकार प्रबन्धक और व्यवस्थापक शक्ति उस दल के हाथ में होती है, जिसका व्यवस्थापक सभा में बहुमत हो।

(४) व्यवस्थापक मंडल और मंत्रिमण्डल अपनी विवाद-ग्रस्त बातों को न्याय-विभाग के सम्मुख रखे बिना ही तय कर लेते हैं।

साम्राज्य-परिषद—इस परिषद् में साम्राज्य के भिन्न-भिन्न भागों के विवाद-ग्रस्त विषयों का विचार होता है तथा उनकी उन्नति के उपाय सोचे जाते हैं, यथा साम्राज्य के विविध भागों का पारस्परिक आर्थिक, व्यापारिक या राजनैतिक सम्बन्ध किस प्रकार रहे। इसका अधिवेशन दूसरे-तीसरे वर्ष, प्राय: लन्दन में होता है, परन्तु साम्राज्य के अन्य स्थानों में भी हो सकता है। इस परिषद् के स्वीकृत प्रस्ताव केवल परामर्श-रूप में होते हैं और विरुद्ध मत रखनेवालों पर वाध्य नहीं होते। इंगलैण्ड, और साम्राज्य के स्वराज्य-प्राप्त भागों के प्रधान मंत्री, परतन्त्र उपनिवेशों की ओर से ब्रिटिश सरकार का उपनिवेश-मन्त्री, और भारतवर्ष की ओर से भारत-मंत्री इस परिषद् के सदस्य होते हैं। प्रत्येक सदस्य को अपने साथ कुछ सलाहकार ले जाने का अधिकार है परन्तु साम्राज्य के प्रत्येक मुख्य भाग की सरकार का केवल एक मत (वोट) रहता है। इंगलैण्ड का प्रधान मंत्री इस परिषद् का सभापति होता है। परिषद् में स्वराज्य-प्राप्त भागों के मंत्री अपने-अपने देशवासियों के प्रति उत्तरदायी होते हैं, और इसलिए उनका मत प्रकट करते हैं, परन्तु भारत-मंत्री और उसके सलाहकार भारतवासियों के प्रति उत्तरदायी नहीं होते। इन्हें भारतवर्ष का प्रतिनिधि कहना सर्वथा अशुद्ध और हास्यास्पद है।

ब्रिटिश साम्राज्य और भारतवर्ष—वर्तमान राजनैतिक स्थिति में भारतवर्ष ब्रिटिश साम्राज्य का अङ्ग है, और कई बातों में इसका दर्जा इस साम्राज्य के स्वराज्य-प्राप्त भागों से बहुत कम है। सन् १६१६ ई० तक भारतवर्ष के शासन-सुधार सम्बन्धी जो

भी आन्दोलन हुए, उनमें यह बात अनिवार्य रूप से मानी जाती थी कि भारतवर्ष ब्रिटिश साम्राज्य का अङ्ग रहे, परन्तु ब्रिटिश सरकार की कई बातें बहुत असन्तोष-प्रद रहने के कारण, यहाँकी महान राष्ट्रीयसंस्था कांग्रेस ने सन १९२० ई० में अपने उद्देश्य से यह बात निकाल दी। अब, कांग्रेस के वर्तमान विधान के अनुसार, भारतवर्ष ब्रिटिश साम्राज्य के बाहर भी रह सकता है। भारतवर्ष में कुछ आदमी अब भी ऐसे हैं जो इस देश का लक्ष्य साम्राज्य के अन्तर्गत, स्वाधीन उपनिवेशों के समान पद प्राप्त करना समझते हैं, पर उनकी संख्या बहुत कम है, और क्रमशः घटती जा रही है। पुनः जो लोग औपनिवेशिक स्वराज्य के पक्ष में हैं, वे भी विशेषतया इसलिए हैं कि वर्तमान नीति के अनुसार स्वाधीन उपनिवेशों पर, इंगलैंड की ओर से व्यापार, विदेश-नीति, या संधि-विग्रह आदि किसी प्रकार का बन्धन नहीं रहता; वे स्वतंत्र राष्ट्रों के समान ही हैं।



तीसरा परिच्छेद



भारत-मंत्री

सम्राट् तथा ब्रिटिश पार्लिमेंट का भारतवर्ष के शासन से क्या सम्बन्ध है, इसका विचार पिछले परिच्छेद में हो चुका है। अब भारत-मंत्री के विषय में विचार करना है। सन् १९३५ ई० के विधान के अनुसार, इस सम्बन्ध में (तथा भारत-सरकार और

भारतीय व्यवस्थापक मंडल के संगठन आदि में) जो परिवर्तन किये जानेवाले थे, वे संघ की स्थापना न होने के कारण, अमल में नहीं आये। इसलिए अन्य बातों का विचार करने से पूर्व यह जान लेना चाहिए कि संघ किसे कहते हैं, यह क्यों स्थापित किया जाता है।

संघ शासन—संघ शासन का अर्थ कई राज्यों का सम्मिलित शासन है। जब कुछ राज्य आत्मरक्षा या आर्थिक अथवा राजनैतिक उन्नति के लिए अपनी सेना, व्यापार या राष्ट्रोन्नति आदि विभागों का प्रबन्ध सामूहिक रूप से करना चाहते हैं, और इस उद्देश्य से अपना संगठन करते हैं तो यह कहा जाता है कि उन्होंने अपना संघ (फेडरेशन) बनाया। संघ शासन में संघान्तरित राज्यों की सरकारें अपने-अपने राज्य सम्बन्धी शिक्षा, स्वास्थ्य आदि विषयों में स्वाधीन रहती हैं। वे अपनी आय का कुछ भाग और अपने कुछ अधिकार केन्द्रीय सरकार (संघ-सरकार) को दे देती हैं, जो इन राज्यों की बाहरी आपत्ति से रक्षा करने के अतिरिक्त सार्वदेशिक हित सम्पादन का कार्य करती है। सन् १९३५ के विधान में, अन्य बातों के अतिरिक्त भारतवर्ष में संघ-शासन की योजना की गयी थी, जिससे ब्रिटिश भारत और देशी राज्यों का एक संघ बनकर दोनों का एक साथ शासन हो। परन्तु विधान का यह भाग अमल में नहीं आया और अब स्थगित है। इसके सम्बन्ध में विशेष रूप से, इस पुस्तक के परिशिष्ट में लिखा जायगा।

भारत-मंत्री और उसका कार्य—ऊपर कहा जा चुका है कि संघ की स्थापना न होने के कारण, सन् १९३५ के विधान के अनुसार भारत-मंत्री के अधिकार और कार्यों के सम्बन्ध में जो परिवर्तन होनेवाले थे, वे अमल में नहीं आये। वर्तमान अवस्था में स्थिति इस प्रकार है।

भारत-मंत्री को सम्राट्, अपने प्रधान मन्त्री के परामर्श से,

नियत करता है। ब्रिटिश मंत्रिमण्डल का सदस्य होने के कारण, भारत-मन्त्री की नियुक्ति व बरख़ास्तगी इंगलेंड के अन्य मंत्रियों के साथ लगी हुई है। वह पार्लिमेंट के सामने प्रति वर्ष मई महीने की पहली तारीख़ के बाद, जिस दिन पार्लिमेंट का अधिवेशन आरम्भ हो, उसके २८ दिन के भीतर, भारतवर्ष के आय-व्यय का हिसाब पेश करता है। उसी समय, वह इस बात की सविस्तर रिपार्ट देता है कि गत आलोचनीय वर्ष की नैतिक, सामाजिक तथा राजनैतिक उन्नति किस प्रकार अथवा कितनी हुई है। ब्रिटिश 'कामन'-सभा की एक कमेटी इस पर विचार करती है और भारत-मंत्री या उसका प्रतिनिधि इसे समझाने के लिए व्याख्यान देता है। उस समय पार्लिमेंट के सदस्य भारतवर्ष के शासन सम्बन्धी विषयों पर आलोचना प्रत्यालोचना कर सकते हैं। इसे 'भारतीय बजट की बहस' कहते हैं।

समय-समय पर पार्लिमेंट को भारत सम्बन्धी आवश्यक सूचना देते रहना भी भारत-मन्त्री का ही काम है। सम्राट् उसके द्वारा भारतवर्ष के कुछ क़ानूनों को रद्द कर सकता है। भारतवर्ष के जंगी लाट (कमांडरनचीफ़), बंगाल, बम्बई और मदरास के गवर्नर, इनकी कौंसिलों के सदस्य, हाईकोर्ट के जज, तथा अन्य उच्च राजकर्मचारियों की नियुक्ति के लिए, वह सम्राट् को सम्मति देता है। वह भारत-सरकार के सब बड़े-बड़े अफ़सरों को आज्ञा दे सकता है, और उन्हें अपने अधिकार का अनुचित बर्ताव करने से रोक सकता है।

भारत-मंत्री भारतीय शासन के लिए पार्लिमेंट के सामने

उत्तरदाता है, उसे भारतीय शासन-व्यवस्था के निरीक्षण और नियंत्रण का अधिकार है। उसके दो सहायक मन्त्री होते हैं। एक स्थायी, और दूसरा ब्रिटिश पार्लिमेंट की उस सभा का सदस्य, जिसमें भारत-मन्त्री न हो। भारत-मन्त्री के दफ़र को 'इण्डिया आफ़िस' कहते हैं, यह लन्दन (इङ्गलैण्ड) में है। जैसा पहले कहा जा चुका है, भारत-मन्त्री का वेतन तथा 'इण्डिया आफ़िस' का ख़र्च ब्रिटिश सरकार देती है।

इण्डिया कौंसिल—भारत-मन्त्री को शासन सम्बन्धी कार्य में सहायता या परामर्श देनेवाली सभा 'इण्डिया कौंसिल' कहलाती है। इसका अधिवेशन भारत-मन्त्री की आज्ञा से एक मास में एक बार होता है। इसका सभापति भारत-मन्त्री अथवा उसका सहकारी मन्त्री, या भारत-मन्त्री द्वारा नामज़द, कौंसिल का कोई सदस्य, होता है। इस कौंसिल के सदस्यों को भारत-मन्त्री नियुक्त करता है। भारत-मन्त्री को कौंसिल में साधारण मत (वोट) देने के अतिरिक्त एक अधिक मत देने का भी अधिकार है। वह विशेष अवसरों पर इस कौंसिल के बहुमत बिना भी काम कर सकता है। वह 'इण्डिया कौंसिल' की कुछ कमेटियाँ बना सकता है, और यह आदेश कर सकता है कि उन कमेटियों के अधीन क्या-क्या विभाग रहेंगे, और कौंसिल का कार्य किस पद्धति से किया जायगा।

भारत-मन्त्री की कौंसिल के सदस्य, ८ से १२ तक होते हैं। इनमें से आधे सदस्य वे ही हो सकते हैं, जो भारतवर्ष में भारत-सरकार की नौकरी, कम से कम दस वर्ष तक, कर चुके हों; और,

जिन्हें वह नौकरी छोड़े पाँच वर्ष से अधिक न हुए हों। प्रत्येक सदस्य पाँच वर्ष के लिए नियुक्त किया जाता है; विशेष कारण होने से उसका समय पाँच वर्ष तक और बढ़ाया जा सकता है। सदस्य किसी भी देश या धर्म का हो, इस बात का कोई बन्धन नहीं है, परन्तु सन् १९०७ ई० से पहले कोई भारतवासी इस कौंसिल का सदस्य न था; अब इसमें प्रायः तीन हिन्दुस्तानी होते हैं। प्रत्येक सदस्य का वार्षिक वेतन १२०० पौंड है, भारतीय सदस्यों को ६०० पौंड वार्षिक भत्ता और मिलता है। कौंसिल के सदस्य वैदेशिक विषयों में, युद्धनीति में, तथा देशी राज्यों के मामलों में बिल्कुल हस्तक्षेप नहीं कर सकते; इन्हें कोई स्वतन्त्र अधिकार प्राप्त नहीं है, ये भारत-मन्त्री की आज्ञानुसार लन्दन में भारतवर्ष सम्बन्धी काम करते हैं। इन सदस्यों को पार्लिमेंट में बैठने का अधिकार नहीं है, इन्हें इनके काम से हटाने का अधिकार पार्लिमेंट को ही है। भारत-मन्त्री और उसकी कौंसिल के नाम से, लन्दन के 'बैंक-आफ-इङ्गलैण्ड' में भारत का खाता है। उसका हिसाब जाँचने के लिए एक लेखा-परीक्षक (आडीटर) नियत है।

हाई कमिश्नर—यह अधिकारी पाँच वर्ष के लिए नियुक्त होता है, इसका वार्षिक वेतन तीन हज़ार पौंड है, जो भारतीय कोष से दिया जाता है। यह कौंसिल-युक्त गवर्नर-जनरल के अधीन है, और उसी के द्वारा भारत-मन्त्री की अनुमति से नियुक्त किया जाता है।

इसकी नियुक्ति सन् १९१९ के विधान के अनुसार होने लगी

है। पहले इसका कार्य भारत-मंत्री ही करता था। उक्त कानून के अमल में आने से हाई कमिश्नर के कार्य निम्नलिखित है:—(१) यह इङ्गलैण्ड में भारत-सरकार के एजन्ट का काम करता है। (२) यह भारतवर्ष की प्रान्तीय सरकारों की एजंसी का काम, गवर्नर-जनरल की आज्ञानुसार, करता है। (३) यह भारतीय 'स्टोर' विभाग, विद्यार्थी विभाग, तथा भारतीय व्यापार-कमिश्नर के कार्य का निरीक्षण करता है। भारतवर्ष में रेल या पुल आदि के बनाने के लिए जो सामग्री आवश्यक होती है, वह अधिकतर इङ्गलैंड से ही आती है, और उसे ठेका देकर बनवाने तथा यहाँ भेजने का काम यही अधिकारी करता है। यह भारत सरकार को व्यापार सम्बन्धी नयी-नयी सूचनाएँ भेजता है। इङ्गलैण्ड में लगभग दो हजार भारतीय विद्यार्थी विविध विषयों की शिक्षा पाते हैं, उनकी देखरेख करना और उन्हें विश्वविद्यालयों में प्रवेश होने आदि की सुविधाएँ दिलाने की व्यवस्था करने का कार्य इसके ही सुपुर्द है। अन्तर्राष्ट्रीय सभाओं में भारतवर्ष की ओर से सरकार प्रायः इसी को 'प्रतिनिधि' बनाती है।

लन्दन में ब्रिटिश साम्राज्य के विविध भागों के हाई कमिश्नर रहते हैं, ये अपने-अपने राज्यों की स्वतंत्रता के प्रतीक माने जाते हैं। भारतवर्ष स्वराज्य-प्राप्त नहीं है, केवल इसका हाईकमिश्नर रहने से इस देश का राजनैतिक पद उन्नत नहीं हो जाता। ब्रिटिश साम्राज्य के उपनिवेशों के हाई कमिश्नर व्यापारिक कार्यों के अतिरिक्त राजनैतिक उत्तरदायित्व भी पूरा करते हैं। भारतीय हाई कमिश्नर के सम्बन्ध में यह बात नहीं है। इससे स्पष्ट है कि

उसका महत्व बहुत कम है। फिर, यद्यपि वह ब्रिटिश भारत और देशी राज्यों के लिए प्रति वर्ष करोड़ों रुपये का सामान खरीदता है, वह केवल गवर्नर-जनरल के अधीन है; इस पर केन्द्रीय व्यवस्थापक मंडल अथवा भारतीय लोकमत का नियंत्रण नहीं है। यह सर्वथा अनुचित है। इसमें अविलम्ब सुधार होने की आवश्यकता है।

चौथा परिच्छेद

भारत-सरकार

[सन् १९३५ ई० के विधान का संघ शासन सम्बन्धी भाग अमल में न आने से, भारत-सरकार का वर्तमान संगठन बहुत कुछ पहले जैसा, सन् १९१९ के विधान के अनुसार ही, बना हुआ है। पच्चीस वर्ष बीतने पर भी इसमें विशेष सुधार नहीं हुआ।]

होम गवर्मेंट और भारत-सरकार—पिछले दो परिच्छेदों में यह बताया जा चुका है कि होम गवर्मेंट अर्थात् सम्राट्, पार्लिमेंट और भारत-मंत्री का भारतवर्ष के शासन से क्या सम्बन्ध है। ये ब्रिटिश सरकार के अंग हैं, और इङ्गलैंड में रहते हुए यहाँ के शासन प्रबन्ध का नियंत्रण करते हैं। भारतवर्ष से दूर होने के कारण ये स्वयं यहाँ का शासन नहीं कर सकते; इस कार्य को इनके प्रतिनिधि यहाँ रह कर करते हैं। इस बात को ध्यान में रखना आवश्यक है कि भारतवर्ष में शासन करनेवाली संस्थाएँ अपने कार्य-संचालन में स्वतंत्र नहीं है, ये तो पराधीन संस्थाएँ

हैं। इन्हें केवल उतना ही अधिकार होता है, जितना ब्रिटिश सरकार इन्हें प्रदान करे। उस अधिकार में कमी-बेशी करने की अथवा भारतीय शासनपद्धति में सुधार या परिवर्तन करने की, सत्ता ब्रिटिश सरकार को ही है। प्राय: आदमी केन्द्रीय शासन के दोषों को देख कर भारत-सरकार अथवा गवर्नर-जनरल आदि को भला-बुरा कहा करते हैं, परन्तु वास्तव में सूत्र-संचालन तो इङ्गलैण्ड से होता है, शासन की बागडोर ब्रिटिश अधिकारियों के हाथ में रहती है। अस्तु; अब भारत-सरकार के संगठन आदि का विचार किया जाता है।

भारत-सरकार का अर्थ है, कौंसिल-युक्त गवर्नर-जनरल, ('गवर्नर-जनरल-इन-कौंसिल')। स्मरण रहे कि यहाँ कौंसिल से मतलब गवर्नर-जनरल की प्रबन्धकारिणी सभा है, व्यवस्थापक नहीं।

गवर्नर-जनरल या वायसराय—गवर्नर-जनरल, भारत-सरकार का सब से महत्वपूर्ण अंग है, और उसे उसके अन्य पदाधिकारियों की अपेक्षा विशेष अधिकार हैं। वह ब्रिटिश भारत के प्रान्तीय शासन की निगरानी करता है, और सब गवर्नरों (तथा चीफ़-कमिश्नरों) से ऊपर है, इसलिए वह गवर्नर-जनरल कहलाता है। वह सम्राट् के प्रतिनिधि की हैसियत से देशी राज्यों में जाता है, सभा या दरबार करता है, और घोषणा-पत्र आदि निकालता है, इसीलिए वह वायसराय कहलाता है। 'वायसराय' का अर्थ बादशाह का प्रतिनिधि है। साधारण व्यवहार में 'गवर्नर-जनरल' और 'वायसराय' शब्दों में कोई

भेद नहीं माना जाता। अपने प्रधान मन्त्री की सिफ़ारिश से सम्राट् किसी योग्य अनुभवी, एवं साधारणतः 'लार्ड'-उपाधि-प्राप्त व्यक्ति को गवर्नर-जनरल नियत करता है। उसकी अवधि निर्धारित नहीं है; प्रायः पाँच साल की होती है।* उसका वार्षिक वेतन २,५०,८०० रुपये है, इसके अतिरिक्त उसे बहुत-सा भत्ता आदि मिलता है, जिससे वह अपने पद का कार्य सुविधा और मान-मर्यादा पूर्वक कर सके, अर्थात् उसकी शान-शौकत भली भांति बनी रहे।

जितना वेतन यहाँ गवर्नर जनरल को मिलता है, इतना संयुक्तराज्य अमरीका के राष्ट्रपति अथवा इंगलैंड के प्रधान मन्त्री को भी नहीं मिलता। फिर कहाँ अमरीका और इंगलैंड जैसे धनी देश और कहाँ निर्धन भारत! गवर्नर-जनरल के अलाउन्स या भत्ते की रकमें तो और भी चकित करने-वाली हैं। व्यय-प्रबन्ध सम्बन्धी भत्ता, स्टाफ और गृहस्थी का भत्ता, दौरे का भत्ता, स्पेशल ट्रेन, बैंड, शरीररक्षक ('बाडीगार्ड'), प्राइवेट सेक्रेटरी और स्टाफ आदि का खर्च मिलाकर उसका वेतन लगभग अठारह लाख रुपये प्रति वर्ष हो जाती है!

गवर्नर-जनरल के अधिकार—अपनी प्रबन्धकारिणी सभा की अनुपस्थिति में गवर्नर-जनरल, किसी प्रान्तीय सरकार या किसी पदाधिकारी के नाम, स्वयं कोई आज्ञा निकाल सकता है। आवश्यकता होने पर वह ब्रिटिश भारत या उसके किसी भाग की शान्ति और सुशासन के लिए छः महीने के वास्ते अस्थायी क़ानून (आर्डिनेंस) बना सकता है। यदि वह चाहे तो किसी आदमी को, जिसे किसी अदालत ने फ़ौजदारी के

*लार्ड लिनलिथगो की अवधि दो बार बढ़ायी गयी। वह अप्रैल १९३६ से अक्तूबर १९४३ तक, साढ़े सात साल, गवर्नर-जनरल रहा।

मामले में अपराधी ठहराया हो, बिना किसी शर्त के, या कुछ शर्त लगाकर, क्षमा कर सकता है। उसे (१) भारत-सरकार, (२) भारतीय व्यवस्थापक मंडल, (३) प्रान्तीय सरकारों, (४) प्रान्तीय व्यवस्थापक परिषदों, और (५) नरेन्द्र मंडल के सम्बन्ध में विविध अधिकार हैं। उनका वर्णन आगे प्रसगानुसार किया जायगा। यद्यपि भारतवर्ष की शासनपद्धति के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण निर्णय करने का अन्तिम दायित्व ब्रिटिश पार्लिमेंट पर है, गवर्नर-जनरल मौके पर रहनेवाला और वस्तुस्थिति का प्रत्यक्ष अनुभव रखनेवाला अधिकारी होता है। इसलिए ब्रिटिश सरकार पर उसकी राय का बड़ा प्रभाव पड़ता है। इसके अतिरिक्त, वह अपने अधिकारों के अनुसार भी भारतीय लोकमत को कुछ सन्तुष्ट कर सकता है *

गवर्नर-जनरल और भारत-मंत्री का सम्बन्ध—गवर्नर-जनरल का भारत-मंत्री से किस प्रकार का सम्बन्ध रहे, गवर्नर-जनरल पर भारत-मंत्री का नियंत्रण कहाँ तक हो, इसका पूर्णतया स्पष्ट निर्णय नहीं होता। क़ानून से गवर्नर-जनरल भारत-मंत्री के आदेशों की अवहेलना नहीं कर सकता, जिन बातों को उसे सम्राट् की आज्ञा से करना होता है, उनकी सूचना भारत-मंत्री द्वारा ही मिलती है अतः उनमें भी गौण रूप से भारत-मंत्री की ही आज्ञा का पालन करना होता है। इस प्रकार गवर्नर-जनरल भारत-मंत्री के अधीन हैं। तथापि कभी-कभी यह

* उदाहरणवत् इस समय वह राजनैतिक क़ैदियों और भोजन-वस्त्र की समस्या को बहुत-कुछ हल कर सकता है।

अधीनता दोनों के व्यक्तित्व पर निर्भर होती है। यदि गवर्नर-जनरल का व्यक्तित्व ऊँचा है, उसका ब्रिटिश मंत्रिमंडल में अच्छा प्रभाव है तो वह भारत-मन्त्री से बहुत-कुछ अपनी बात मनवा सकता है। प्रायः वह और भारत-मन्त्री एक ही दृष्टिकोण वाले होते हैं, और विरोध का अवसर कम आता है। परन्तु यदि आ जाय तो उसका निपटारा दोनों के व्यक्तित्व के अनुसार होता है।

गवर्नर-जनरल की कौंसिल—गवर्नर-जनरल की कौंसिल अर्थात् प्रबन्धकारिणी सभा में स्वयं गवर्नर-जनरल के अतिरिक्त कई सदस्य होते हैं। सदस्यों की संख्या आवश्यकतानुसार घट-बढ़ सकती है। हाँ, कम-से-कम तीन सदस्य ऐसे होने चाहिएँ, जिन्होंने भारतवर्ष में दस वर्ष भारत-सरकार की नौकरी की हो। क़ानूनी योग्यता के लिए एक सदस्य हाईकोर्ट का ऐसा वकील, अथवा इंगलैंड या आयर्लैंड का ऐसा बैरिस्टर, होना चाहिए जिसने दस वर्ष वकालत (प्रैकटिस) की हो। इस तरह का कोई नियम नहीं है कि इस सभा में हिन्दुस्तानियों की अमुक संख्या रहे। इस समय अधिकांश सदस्य हिन्दुस्तानी होते हैं। सदस्य, सम्राट् की अनुमति से पाँच वर्ष के लिए नियुक्त किये जाते हैं।

सदस्यों में से प्रत्येक को भारत-सरकार के एक-एक विभाग विभाग का कार्य सुपुर्द रहता है; इन विभागों का काम तथा कार्य-क्षेत्र आवश्यकतानुसार समय-समय पर बदलता रहता है। हाँ, विदेश-विभाग स्वयं गवर्नर-जनरल के अधीन होता है, जो देशी

रियासतों सम्बन्धी विषयों का भी निरीक्षण तथा नियंत्रण करता है। सेना विभाग पर जंगी लाट अर्थात् 'कमांडरनचीफ' का प्रभुत्व रहता है। अगर जंगी लाट गवर्नर-जनरल की प्रबन्ध-कारिणी सभा का सदस्य हो, तो सभा में उसका पद और स्थान गवर्नर-जनरल से दूसरे दर्जे पर होता है।

(दूसरा) महायुद्ध आरम्भ होने के समय (सन् १९३९ में) सदस्यों के सुपुर्द सरकारी विभाग इस प्रकार थे—(१) सेना तथा रक्षा विभाग। (२) 'होम' (गृह) विभाग; इसके अन्तर्गत सरकारी नौकरियाँ पुलिस, जेल, न्याय, और देश की आन्तरिक राजनीति थी। (३) फाइनेंस या अर्थ विभाग; यह सरकारी आय-व्यय की देखभाल करता था। (४) यातायात विभाग; यह रेल, डाक, तार, हवाई जहाज, बन्दरगाह आदि का प्रबन्ध करता था, (५) क़ानून विभाग। (६) शिक्षा, स्वास्थ्य और भूमि विभाग। (७) व्यापार और मजदूर विभाग।

महायुद्ध के समय प्रथम बार सन् १९४१ में उक्त विभागों के कार्यक्षेत्र में परिवर्तन करके उनकी संख्या में यह वृद्धि की गयी—(८) 'सप्लाई' या रसद विभाग, (९) 'इन्फर्मेशन' अर्थात् (१०) सिविल डिफेन्स या नागरिक रक्षा विभाग। (११) 'लेबर' या श्रम विभाग, (१२) प्रवासी भारतवासी विभाग। महायुद्ध-काल में पुनः सन् १९४२ में परिवर्तन किया गया। तीन विभाग और स्थापित करके उन्हें एक-एक सदस्य के जिम्मे किया गया—(१३) युद्ध सामग्री और यातायात विभाग। (१४) डाक और हवाई जहाज विभाग। (१५) रक्षा विभाग।

उपर्युक्त विभागों का कार्य संभालनेवाले १२ सदस्यों में तीन सरकारी योरपियन, एक गैर-सरकारी योरपियन और ग्यारह गैर-सरकारी भारतीय हैं। इस प्रकार सदस्यों में भारतीयों का भारी बहुमत है। परन्तु ये सदस्य देश की वास्तविक मनोवृत्ति का प्रतिनिधित्व नहीं करते और न कर ही सकते हैं। चाहे सरकार ने सिक्ख, दलित वर्ग, और गैर-सरकारी योरपियन सदस्य की नियुक्ति से साम्प्रदायिक भावना रखनेवालों को कुछ सन्तोष देने का प्रयत्न किया हो, कौंसिल के सदस्यों का भारतवर्ष के प्रमुख राजनैतिक दलों से कुछ सम्पर्क नहीं है। सरकारी विभागों में विशेष महत्व रखनेवाले हैं—सेना, अर्थ, और गृह विभाग। ये तीनों विभाग पहले की तरह अब भी सरकारी योरपियन सदस्यों के हाथ में है। भारतवासियों के सुपुर्द जो गौण से विभाग पहले थे, उनके ही कार्यों को अधिक विभागों में बाँट कर, भारतीय सदस्यों की संख्या बढ़ाने से वस्तुस्थिति में अन्तर नहीं आता। कौंसिल का सामूहिक उत्तरदायित्व नहीं है। सरकारी विज्ञप्तियों में कहा गया है कि कौंसिल के विस्तार का उद्देश्य वर्तमान शासन विधान के अन्तर्गत युद्ध-संचालन में प्रतिनिधित्व-पूर्ण भारतीय जनमत का घनिष्टतर सहयोग प्राप्त करना और युद्ध कार्य के बढ़ते हुए भार को संभालने की व्यवस्था करना है। इनमें से पहली बात की तो आशा करना ही भूल है, दूसरी बात भी संदिग्ध ही है।

सेक्रेटरी तथा अन्य पदाधिकारी—प्रबन्धकारिणी सभा के प्रत्येक सदस्य को सहायता देने के लिए उपर्युक्त प्रत्येक विभाग में एक सेक्रेटरी, एक डिप्टी सेक्रेटरी, कई एसिस्टेंट सेक्रेटरी तथा कुछ क्लर्क आदि रहते हैं। ये प्रायः भारतीय सिविल सर्विस के होते हैं; परन्तु गवर्नर-जनरल चाहे तो कुछ सेक्रेटरियों को भारतीय व्यवस्थापक सभा के निर्वाचित अथवा नामज़द, सरकारी या गैर-सरकारी सदस्यों में से नियुक्त कर

सकता है। ऐसे सेक्रेटरियों को कौंसिल-सेक्रेटरी कहते हैं। इनका पद उस समय तक बना रहता है, जब तक गवर्नर-जनरल चाहता है, और ये उसकी प्रबन्धकारिणी सभा के सदस्यों को सहायता देने का ऐसा काम करते हैं, जो इनके सुपुर्द किया जाय। इनका वेतन भारतीय व्यवस्थापक सभा निश्चय करती है। अगर कोई सेक्रेटरी छः महीने तक उक्त सभा का सदस्य न रहे तो वह अपने पद से पृथक् हो जाता है। सेक्रेटरी अपने विभाग के दफ़र को संभालता है, और सभा की बैठक में उपस्थित रहता है।

सब सेक्रेटरियों का एक विशाल कार्यालय (सेक्रेटेरियट) भारतवर्ष की राजधानी देहली में है, परन्तु भारत-सरकार का सदर-मुकाम (हेडक्वार्टर) सर्दी में देहली और गर्मियों में शिमला रहता है। इसलिए सेक्रेटरियों को आवश्यकतानुसार देहली या शिमले में रहना होता है।

भारत-सरकार के अधीन डायरेक्टर-जनरल और इन्सपेक्टर-जनरल आदि कुछ और भी अधिकारी होते हैं, जिनका काम यह है कि भारत-सरकार और प्रान्तीय सरकारों के विविध विभागों के कार्य की निगरानी रखें और उन्हें यथोचित परामर्श दें।

प्रबन्धकारिणी सभा के अधिवेशन—इस सभा का अधिवेशन प्रायः प्रति सप्ताह होता है। उसमें उन विषयों पर विचार होता है, जिन पर गवर्नर-जनरल विचार करवाना चाहे, अथवा, जिन्हें वह अस्वीकार करे और जिन पर कोई सदस्य

सभा का निर्णय चाहे। अधिवेशन में सभापति स्वयं गवर्नर-जनरल होता है। उसकी अनुपस्थिति में उप-सभापति उसका सम्पादन करता है। उप-सभापति के पद के लिए गवर्नर-जनरल इस सभा के सदस्यों में से किसी को नियुक्त करता है। सभा के अधिवेशन में गवर्नर-जनरल (या ऐसा अन्य व्यक्ति जो सभापति का कार्य करे) और सभा का एक सदस्य (कमांडरन-चीफ़ को छोड़कर), कौंसिल-युक्त गवर्नर-जनरल के सब कार्यों का सम्पादन कर सकते हैं।

काम करने का ढंग—जब किसी विभाग सम्बन्धी कोई विचारणीय प्रश्न उठता है, तो उस विभाग का सेक्रेटरी उसका मसविदा तैयार करके गवर्नर-जनरल या उस सदस्य के सामने पेश करता है, जिसके अधीन उक्त विभाग हो। साधारणतया सदस्य इस पर जो निर्णय करता है, वही अन्तिम समझा जाता है, परन्तु यदि प्रश्न विवाद-ग्रस्त हो या उसमें सरकारी नीति की बात आती हो तो सेक्रेटरी से तैयार किया हुआ मसविदा सभा में पेश होता है, और यहाँ से जो हुक्म हो, उसे सेक्रेटरी प्रकाशित करता है। सभा के साधारण अधिवेशनों में मतभेद वाले प्रश्नों के विषय में, बहुमत से काम करना पड़ता है। यदि दोनों पक्ष समान हों तो जिस तरफ गवर्नर-जनरल (सभापति) मत प्रकट करे, उसी के पक्ष में फ़ैसला होता है। मगर गवर्नर-जनरल को इस बात का अधिकार रहता है कि यदि उसकी समझ में सभा का निर्णय देश के लिए हितकर न हो तो सभा के बहुमत की भी उपेक्षा कर, वह अपनी सम्मति के

अनुसार कार्य कर सकता है, परन्तु ऐसी प्रत्येक दशा में विरुद्ध पक्ष के दो सदस्यों की इच्छा होने पर, उसे अपने कार्य की, कारण सहित सूचना देनी होती है, तथा सभा के सदस्यों ने उस विषय में जो कार्रवाई लिखी हो, उसकी कापी भारत-मंत्री के पास भेजनी होती है।

गवर्नर-जनरल आदि का अवकाश तथा अनुपस्थिति—भारत-मंत्री गवर्नर-जनरल को,और कौंसिल-युक्त गवर्नर-जनरल की सिफारिश पर कमांडरनचीफ़ का, उनके कार्यकाल में एक बार चार मास तक की छुट्टी, सार्वजनिक हित के लिए, या स्वास्थ्य अथवा व्यक्तिगत कारण से दे सकता है। और कौंसिल-युक्त गवर्नर-जनरल, कमांडरनचीफ़ को छोड़ कर, कौंसिल के अन्य सदस्यो को उनके कार्य-काल में एक बार चार मास तक की छुट्टी स्वास्थ्य या व्यक्तिगत कारण से दे सकता है। इस छुट्टी के समय में, उक्त पदाधिकारियों को निर्धारित भत्ता मिलता है। गवर्नर-जनरल और कमांडरनचीफ़ को तो उक्त भत्ते के अतिरिक्त, सफ़र खर्च सम्बन्धी इतना भत्ता और भी मिलता है, जितना भारत-मंत्री उचित समझे। गवर्नर-जनरल और कमांडरनचीफ़ के स्थानापन्न व्यक्ति की व्यवस्था सम्राट् की अनुमति से होती है।

यदि गवर्नर-जनरल का पद रिक्त होते समय उसका उत्तराधिकारी भारतवर्ष में न हो, तो मदरास, बम्बई या बंगाल के गवर्नरों में से जिसकी नियुक्ति सम्राट् द्वारा पहले हुई हो, वह गवर्नर-जनरल का का कार्य करता है। जब तक उपर्युक्त गवर्नर द्वारा गवर्नर-जनरल का कार्य-भार ग्रहण न किया जाय, कौंसिल

का उप-सभापति, और उसकी अनुपस्थिति में कौंसिल का सीनियर (अधिक समय से काम करने वाला) मेम्बर (कमांडरन-चीफ़ को छोड़कर), गवर्नर-जनरल का कार्य करता है।

अगर कमांडरनचीफ़ को छोड़कर प्रबन्धकारिणी कौंसिल के किसी अन्य मेम्बर का स्थान खाली हो जाय और उसका कोई उत्तराधिकारी विद्यमान न हो तो कौंसिल-युक्त गवर्नर-जनरल अस्थायी नियुक्ति करके उस रिक्त स्थान की पूर्ति कर सकता है।

भारत-सरकार का कार्य—शासन सम्बन्धी विषयों के दो भाग हैं—(१) अखिल भारतवर्षीय या केन्द्रीय विषय, और (२) प्रान्तीय विषय। इसी वर्गीकरण के आधार पर भारत-सरकार (केन्द्रीय सरकार) और प्रान्तीय सरकारों के कार्यों तथा उनकी आय के श्रोतो का विभाजन किया गया है। केन्द्रीय विषयों का उत्तरदायित्व भारत-सरकार पर है। यदि किसी विषय के सम्बन्ध में यह सन्देह हो कि यह प्रान्तीय है, या केन्द्रीय, तो इसका निपटारा कौंसिल-युक्त गवर्नर-जनरल करता है, परन्तु इस विषय में अंतिम अधिकार भारत-मंत्री का है।

संक्षेप में भारतवर्ष में मुख्य-मुख्य केन्द्रीय विषय यह हैं:—(१) देश-रक्षा, भारतीय सेना तथा हवाई जहाज, (२) विदेशी, तथा विदेशियों से सम्बन्ध (३) देशी राज्यों से सम्बन्ध, (४) राजनैतिक खर्च, (५) बड़े बन्दरगाह, (६) डाक, तार, टेलीफ़ोन और बेतार के तार, (७) आयात-निर्यात-कर, नमक आर अखिल भारतवर्षीय आय के अन्य साधन, (८) सिक्का, नोट आदि, (९) भारतवर्ष का सरकारी ऋण,

(१०) पोस्ट आफ़िस सेविंग बैंक, (११) भारतीय हिसाब परीक्षक विभाग, (१२) दीवानी और फ़ौजदारी क़ानून तथा उनके कार्य-विधान, (१३) व्यापार, बैङ्क और बीमा कम्पनियों का नियंत्रण; (१४) तिजारती कम्पनियाँ और समितियाँ, (१५) अफ़ीम आदि पदार्थों की पैदावार, खपत, और निर्यात का नियंत्रण, (१६) कापी-राइट, (किताब आदि छापने का पूर्ण अधिकार), (१७) ब्रिटिश भारत में आना, अथवा यहाँ से विदेश जाना, (१८) केन्द्रीय पुलिस का संगठन, (१९) हथियार और युद्ध-सामग्री का नियंत्रण, (२०) मनुष्य-गणना, और आंकड़े या 'स्टेटिसटिक्स' (२१) अखिल भारतवर्षीय नौकरियाँ, (२२) प्रान्तों की सीमा, और (२३) मजदूरों सम्बन्धी नियन्त्रण।

भारत-सरकार के अधिकार—भारत-सरकार को नियमों का पालन करते हुए ब्रिटिश भारत के शासन और सेना प्रबन्ध के निरीक्षण, तथा नियंत्रण का अधिकार है। वह ब्रिटिश भारत की किसी सम्पत्ति को बेच सकती है। वह प्रबन्धकारिणी सभा के अधिवेशन का स्थान निश्चय करती है। कुछ विषयों में प्रान्तीय सरकारों को उसकी आज्ञाएँ माननी होती हैं। वह प्रान्तों की सीमा नियत या परिवर्तन कर सकती है। प्रान्तीय सरकारों के निवेदन पर यह ब्रिटिश भारत के किसी हिस्से की शान्ति और सुशासन के लिए नियम बना सकती है। वह हाईकोर्टों का अधिकार-क्षेत्र बदल सकती है, और दो साल तक के लिए जज नियत कर सकती है। वह एशिया के राज्यों से

सन्धि या समझौता कर सकती है, विदेशी राज्यों में वह अपनी सत्ता और अधिकारों का उपयोग कर सकती है। उसे अपने अधीन भू-भाग किसी राज्य को देने और उसके अधीन भू-भाग लेने का अधिकार है। (भारतीय व्यवस्थापक मण्डल, प्रान्तीय सरकारों, प्रान्तीय व्यवस्थापक सभाओं और देशी राज्यों के सम्बन्ध में उसके जो अधिकार हैं उनका विवेचन अन्यत्र प्रसङ्गानुसार किया जायगा।) सारांश यह है कि सम्राट् की प्रतिनिधि होने के कारण उसे उसकी ऐसी शक्तियाँ और अधिकार प्राप्त हैं, जो भारतीय प्रचलित व्यवस्था के विरुद्ध न हों।

भारत-सरकार के उत्तरदायित्व का प्रश्न—भारत-सरकार अपने कार्यों के लिए ब्रिटिश पार्लिमेंट के प्रति उत्तरदायी है (भारतीय जनता के प्रति नहीं)। अगर गवर्नर-जनरल या उसकी प्रबन्धकारिणी सभा के सदस्य इंगलैंड की सरकार से किसी बात में सहमत न हों तो या तो उन्हें अपने मत को दबाना पड़ता है, अथवा त्यागपत्र देना होता है। यह माना जाता है कि भारत-सरकार के भारतवर्ष में किये हुए कार्यों के लिए ब्रिटिश पार्लिमेंट ब्रिटिश जनता के प्रति उत्तरदायी है। इसलिए ब्रिटिश पार्लिमेंट भारत-मन्त्री के द्वारा भारत-सरकार पर नियंत्रण रखती है, और उसकी ओर से भारत मन्त्री समय-समय पर भारत-सरकार को आदेश करते रहते हैं, तथा पार्लिमेंट के सदस्य भारत-मन्त्री से किसी विषय में जवाब माँग सकते हैं। यही कारण है कि भारत-मन्त्री ब्रिटिश पार्लिमेंट से, और भारत-सरकार भारत-मन्त्री से कोई बात छिपा नहीं सकती।

सन् १९४२ में जब कि महात्मा गांधी जेल में थे, ब्रिटिश पार्लिमेंट को यह नहीं बताया गया कि महात्मा जी ने भारत-सरकार के गृह विभाग को जो पत्र भेजा था, उसमें क्या लिखा था। मि० एमरी (भारत-मंत्री) के कथनानुसार यह निर्णय भारत-सरकार ने किया था कि ब्रिटिश पार्लिमेंट और ब्रिटिश जनता को म० गांधी के विचारों की सूचना न दी जाय। तो क्या यह बात भारत-सरकार पर निर्भर है कि वह भारत-मंत्री को कोई बात ब्रिटिश पार्लिमेंट को सूचित करने का अवसर दे या न दे। क्या वह भारत-मंत्री के द्वारा पार्लिमेंट के प्रति अपने सब कार्यों के लिए उत्तरदायी नहीं है। मालूम होता है, वह उस सीमा तक अनुत्तरदायी हो सकती है, जहाँ तक भारत-मंत्री और ब्रिटिश पार्लिमेंट इस बात को सहन कर सकें।

लोकसत्ता के युग में भारत-सरकार का ब्रिटिश पार्लिमेंट के प्रति उत्तरदायी होना कुछ अर्थ नहीं रखता, उसे तो भारतीय व्यवस्थापक मण्डल के द्वारा भारतीय जनता के प्रति उत्तरदायी होना चाहिए। वर्तमान दशा में गवर्नर-जनरल और उसकी कौंसिल पर भारतीय व्यवस्थापक मण्डल का थोड़ा-बहुत नैतिक प्रभाव भले ही पड़े, वैधानिक दृष्टि से उन पर उसका कोई नियंत्रण नहीं है। व्यवस्थापक मण्डल उनके व्यवहार से चाहे जितना असन्तुष्ट हो, गवर्नर-जनरल तथा उसकी कौंसिल के सदस्य अपने पदों पर बने ही रहेंगे, और यहाँ के खजाने से अपना पूरा वेतन तथा भत्ता आदि भी लेने के अधिकारी होंगे; उसमें कुछ भी कमी नहीं हो सकती। उन्हें उनके पद से हटाने का अधिकार सम्राट् और ब्रिटिश पार्लिमेंट को है, इसलिए यह स्वाभाविक ही है कि वे भारतीय जनता की उपेक्षा कर ब्रिटिश अधिकारियों के विश्वास-

पात्र बने रहने का प्रयत्न करें। भारतवर्ष के राष्ट्रीय आन्दोलन का उद्देश्य इस चिन्तनीय स्थिति को बदल देना और भारत-सरकार को पूर्णतया भारतीय व्यवस्थापक मण्डल के प्रति उत्तरदायी बनाना है।



पाँचवाँ परिच्छेद

भारतीय व्यवस्थापक मंडल



पिछले परिच्छेद में भारतवर्ष की केन्द्रीय सरकार के विषय में लिखा गया है, अब यहाँ के केन्द्रीय कानून बनानेवाली संस्था (भारतीय व्यवस्थापक मंडल) के सम्बन्ध में विचार किया जाता है। स्मरण रहे कि सन् १९३५ के विधान के अनुसार इसके संगठन में जो परिवर्तन करने का निश्चय किया गया था, वे यहाँ संघ स्थापित न होने के कारण अमल में नहीं आये।

साधारण परिचय—भारतीय व्यवस्थापक मंडल कोई एक ही सभा नहीं है, इसकी दो सभाएँ हैं, (१) भारतीय व्यवस्थापक सभा या 'लेजिस्लेटिव एसेम्बली' और (२) राजपरिषद् या 'कौन्सिल-आफ़ स्टेट'। दोनों को मिलाकर भारतीय व्यवस्थापक मंडल अर्थात् 'इण्डियन लेजिस्लेचर' कहते हैं। सिवाय कुछ ख़ास हालतों के कोई क़ानून पास हुआ नहीं समझा जाता, जब तक उसे दोनों सभाएँ स्वीकार न कर लें। दोनों सभाएँ कुछ सदस्यों का स्थान ख़ाली रहने पर भी अपना कार्य कर सकती हैं। किसी

सरकारी पदाधिकारी को निर्वाचित नहीं किया जा सकता। अगर कोई गैर-सरकारी सदस्य सरकारी नौकरी कर ले तो उसकी जगह खाली हो जाती है। अगर किसी सभा का कोई निर्वाचित सदस्य दूसरी सभा का सदस्य होजाय तो पहली सभा में उसकी जगह खाली हो जाती है। अगर किसी व्यक्ति का दोनों सभाओं में निर्वाचन होजाय तो वह किसी सभा में सम्मिलित होने से पूर्व, लिखकर वह सूचित करेगा कि वह कौनसी एक सभा का सदस्य रहना चाहता है; ऐसा होने पर दूसरी सभा में उसकी जगह खाली हो जायगी।

गवर्नर-जनरल की प्रबन्धकारिणी सभा का हर एक सदस्य दोनों सभाओं में से किसी एक सभा का सदस्य नामजद किया जाता है, उसे दूसरी में बैठने और बोलने का अधिकार रहता है, लेकिन वह दोनों सभाओं का सदस्य नहीं हो सकता। इन सभाओं का संगठन जानने से पूर्व मुख्य-मुख्य निर्वाचन-नियम जान लेना आवश्यक है।

निर्वाचक-संघ— निर्वाचन के सुभीते के लिए प्रत्येक प्रान्त, जिला या नगर सरकार द्वारा कई भागों या क्षेत्रों में विभक्त किया गया है, प्रत्येक क्षेत्र के निर्वाचक-समूह को निर्वाचक-संघ कहते हैं। प्रत्येक निर्वाचक-संघ अपनी ओर से प्रायः एक-एक (कहीं-कहीं एक से अधिक) प्रतिनिधि चुनता है।

भारतवर्ष में दो प्रकार के निर्वाचक-संघ हैं, साधारण और विशेष। भारतीय व्यवस्थापक सभा और प्रान्तीय व्यवस्थापक सभाओं (तथा कुछ स्थानों में म्यूनिसपैलटियों और जिला-

बोर्डों) के लिए साधारण निर्वाचक संघ, जाति-गत निर्वाचक-सङ्घों में विभाजित किये गये हैं, जैसे मुसलमानों का निर्वाचक-सङ्घ, गैर-मुसलमानों का निर्वाचक सङ्घ, इत्यादि।* जातिगत निर्वाचक-सङ्घ, प्रायः नगरों और ग्रामों में विभक्त किये गये हैं, जैसे मुसलमानों का ग्राम-निर्वाचक-सङ्घ, इत्यादि।

विशेष निर्वाचक सङ्घों में ज़मींदार, विश्वविद्यालय, व्यापारी, खान, नील और खेती, तथा उद्योग और वाणिज्य वाले निर्वाचक होते हैं।

कौन-कौन व्यक्ति निर्वाचक नहीं हो सकते ?—निम्न-लिखित व्यक्ति निर्वाचक नहीं हो सकते :—

१—जो ब्रिटिश प्रजा न हों। [देशी राज्यों के नरेश और प्रजा निर्वाचक हो सकते हैं।]

२—जो अदालत से पागल ठहराये गये हों।

३—जो इक्कीस वर्ष से कम आयु के हों।

४—जिन्हें सरकारी अफ़सर के विरुद्ध किसी अपराध में छः मास से अधिक दंड दिया गया हो।

५—जो निर्वाचन-कमिश्नरों द्वारा निर्वाचन के समय धमकी या रिश्वत आदि दूषित कार्य करने के अपराधी ठहराये गये हों।

---

* किसी जाति-गत निर्वाचक-संघ से वे ही व्यक्ति निर्वाचक हो सकते हैं, जो उस जाति के हों, जिस जाति का निर्वाचक-संघ है। यह प्रथा साम्प्रदायिक वैमनस्य बढ़ानेवाली, तथा राष्ट्र-निर्माण के लिए घातक है।

भारतीय व्यवस्थापक सभा—पहले इस सभा के सदस्यों की कुल संख्या १४५ थी; बर्मा के भारत से अलग होजाने पर उसके ५ सदस्य कम हो गये; इस प्रकार अब १४० हैं। इनमें ३९ नामजद हैं।* नामजद सदस्यों में २५ से अधिक सरकारी नहीं हो सकते। सदस्यों की कुल संख्या घट-बढ़ सकती है, और निर्वाचित तथा नामजद सदस्यों का परस्पर में अनुपात भी घट-बढ़ सकता है, परन्तु कम से कम ⅚ सदस्य निर्वाचित होने चाहिएँ, और नामजद सदस्यों में कम-से-कम एक-तिहाई गैर-सरकारी होने चाहिएँ। इनका विशेष ब्योरा अगले पृष्ठ में दिया जाता है।

व्यवस्थापक सभा की आयु तीन वर्ष है, परन्तु गवर्नर-जनरल का अधिकार है कि वह इसका समय आवश्यकतानुसार घटा-बढ़ा सके।

जिस तरह ब्रिटिश पार्लिमेंट के मेम्बरों को एम० पी० कहा जाता है, भारतीय व्यवस्थापक सभा के सदस्यों को एम० एल० ए० का पद रहता है। यह "मेम्बर लेजिस्लेटिव एसेम्बली" का संक्षेप है। इन्हें राज-परिषद के सदस्यों की भांति ('आनरेबल') की पदवी नहीं दी जाती।

निर्वाचक की योग्यता—जिन व्यक्तियों में निर्वाचक होने की अयोग्यताएँ न हों, और निम्नलिखित (पृष्ठ ४८ में दी हुई) योग्यताएँ हों, वे भारतीय व्यवस्थापक सभा के साधारण निर्वाचक संघ में निर्वाचक हो सकते हैं—

*यह नामजदगी बहुत चिन्तनीय है, और इस सभा के संगठन का स्पष्ट बिकार है

भारतीय व्यवस्थापक सभा का संगठन

सरकार या प्रान्त	निर्वाचित							नामज़द			कुल जोड़
	गैर-मुसलिम	मुसलिम	सिक्ख	योरपियन	ज़मींदार	व्यापारी मण्डल	जोड़	सरकारी	गैर-सरकारी	जोड़	
भारतसरकार	—	—	—	—	—	—	—	१२	—	१२	१२
मदरास	१०	३	—	१	१	१	१६	२	२	४	२०
बम्बई	७	४	—	२	१	२	१६	२	४	६	२२
बंगाल	६	६	—	३	१	१	१७	२	३	५	२२
संयुक्त प्रांत	८	६	—	१	१	—	१६	२	१	३	१९
पंजाब	३	६	२	—	१	—	१२	१	१	२	१४
बिहार उड़ीसा	८	३	—	—	१	—	१२	१	१	२	१४
मध्यप्रान्त	३	१	—	—	१	—	५	१	—	१	६
आसाम	२	१	—	१	—	—	४	१	—	१	५
अजमेर	—	—	—	—	—	—	—	—	१	१	१
बरार	१ जनरल या साधारण						१	—	२	२	२
पश्चिमोत्तर सीमाप्रांत	,,	,,	,,	,,			१	—	—	—	१
देहली	,,	,,	,,	,,			१	—	—	—	१

१—जो निर्वाचक-संघ के क्षेत्र की सीमा के अन्दर रहनेवाले हों, और

२ (क)—जो निर्धारित या उससे अधिक मूल्य की ज़मीन के मालिक हों, या

(ख)—जिनके अधिकार में निर्धारित या उससे अधिक मूल्य की ज़मीन हो, या

(ग)—जो ऐसे मकान के मालिक हों, या ऐसे मकान में रहते हों, जिसका वार्षिक किराया निर्धारित रक़म या उससे अधिक हो, या

(घ)—जो ऐसे शहरों में, जहाँ म्युनिसपैलटियों द्वारा हैसियत-कर लिया जाता है, निर्धारित आय या उससे अधिक पर म्युनिसपैलटी को हैसियत-कर देते हों, या

(च)—जो भारत-सरकार को आय-कर देते हों।

निर्वाचक होने के लिए साम्पत्तिक योग्यता भिन्न-भिन्न प्रान्तों में पृथक्-पृथक् है, और राजपरिषद् के निर्वाचकों की अपेक्षा कम है, तथापि उसके कारण निर्वाचकों की संख्या असंतोषप्रद है।

जो व्यक्ति भारतीय व्यवस्थापक सभा (एवं राजपरिषद्) के लिए किसी निर्वाचक संघ से खड़ा होना चाहता है, उसे ५००) ज़मानत के रूप में जमा करने होते हैं। यदि उसके निर्वाचक-सङ्घ के तमाम मतों में से, उसके पक्ष में, आठवें हिस्से से कम आवें तो यह ज़मानत ज़ब्त हो जाती है।

सदस्य और सभापति—भारतीय व्यवस्थापक सभा के सभापति और उपसभापति, सभा के ऐसे सदस्य होते हैं, जिन्हें

यह चुनले, और गवर्नर-जनरल पसन्द कर ले। ये उस समय तक ही पदाधिकारी रहते हैं, जब तक वे इस सभा के सदस्य होते हैं। इनका तथा सदस्यों का वेतन सभा द्वारा स्वीकृत होता है। सदस्यों को राजभक्ति की शपथ लेना आवश्यक होता है।

राजपरिषद—राजपरिषद में ५८ सदस्य होते हैं। ३१ निर्वाचित, और सभापति को मिला कर २७ गवर्नर-जनरल द्वारा नामज़द। नामज़द सदस्यों में २० तक (अधिक नहीं) अधिकारियों में से हो सकते हैं। भिन्न-भिन्न प्रान्तों के निर्वाचित और नामज़द सदस्यों की संख्या भिन्न-भिन्न है। बरार प्रान्त का एक सदस्य होता तो निर्वाचित है, परन्तु यह प्रान्त विधान के अनुसार ब्रिटिश भारत में न गिना जाने के कारण इसका निर्वाचित सदस्य सरकार द्वारा नामज़द कर दिया जाता है। अतः वास्तव में निर्वाचित सदस्य ३२ और (सभापति सहित) नामज़द सदयस्य २६ होते हैं।* इनका विशेष ब्यौरा आगे की तालिका से स्पष्ट हो जायगा। (सन् १९३५ के विधान से पूर्व दो निर्वाचित सदस्य बर्मा के और होते थे।)

राजपरिषद् का सभापति उसके सदस्यों द्वारा निर्वाचित होकर गवर्नर-जनरल द्वारा नियुक्त किया जाता है। इस परिषद् के सदस्यों के नामों से पहले सम्मानार्थ 'माननीय ('आनरेबल') शब्द लगाया जाता है। परिषद् का निर्वाचन प्रायः पाँच वर्ष में होता है। गवर्नर-जनरल इस समय को आवश्यकतानुसार घटा-बढ़ा सकता है।

* भारतीय व्यवस्थापक मंडल में 'राजपरिषद' नामक दूसरी सभा के होने से क्या हानि है, वह आगे बताया जायगा; इसके इतने सदस्यों के नामज़द होने का दोष तो स्पष्ट ही है।

राजपरिषद् का संगठन

सरकार या प्रान्त	निर्वाचित						नामजद		
	जनरल	गैर मुसलिम	मुसलिम	सिक्ख	योरोपियन व्यापारी	कुल	सरकारी	गैर सरकारी	कुल
भारत सरकार	—	—	—	—	—	—	१२	—	१२
मदरास	—	४	१	—	—	५	१	१	२
बम्बई	—	३	२	—	१	६	१	१	२
बंगाल	—	३	२	—	१	६	१	१	२
संयुक्तप्रान्त	—	३	२	—	—	५	१	१	२
पंजाब	—	१	१½*	—	—	३½*	१	२	३
बिहार-उड़ीसा	—	२½*	१	—	—	३½*	१	—	१
मध्य प्रान्त बरार	२	—	—	—	—	२	—	—	—
आसाम	—	½†	½†	—	—	१	—	—	—
देहली	—	—	—	—	—	—	१	१	१

* एक निर्वाचन में पंजाब के मुसलिम निर्वाचकों को दो, और बिहार-उड़ीसा के गैर-मुसलिम निर्वाचकों को दो; और दूसरे निर्वाचन में पंजाब के मुसलिम निर्वाचकों को एक, और बिहार-उड़ीसा के गैर मुसलिम निर्वाचकों को तीन प्रतिनिधि चुनने का अधिकार होता है।

† एक निर्वाचन में गैर मुसलिम और एक निर्वाचन में मुसलिम निर्वाचकों को बारी-बारी से एक सदस्य चुनने का अधिकार है।

निर्वाचक की योग्यता—जिन व्यक्तियों में निर्वाचक होने की (पहले बतलाई हुई) अयोग्यताएँ न हों, तथा जिनमें निम्नलिखित योग्यताएँ हों, वे ही व्यक्ति निर्वाचक-सूची में अपना नाम दर्ज करा सकते हैं*:-

१—जो निर्वाचन-क्षेत्र की सीमा के अन्दर रहने वाले हों और,

२ (क) जिनके अधिकार में निर्धारित मूल्य की जमीन हो, या

(ख) जो निर्धारित आय पर आय-कर देते हों, या

(ग) जो किसी व्यवस्थापक सभा या परिषद् के सदस्य हों या रहे हों, या

(घ) जो किसी म्युनिसपैलिटी, या जिला-बोर्ड के निर्धारित पदाधिकारी हों, या रहे हों या

(च) जिन्हें किसी विश्वविद्यालय की निर्धारित योग्यता प्राप्त हो, या

(छ) जो किसी सहकारी बैंक के निर्धारित पदाधिकारी हों, या

(ज) जिन्हें सरकार द्वारा शमशुल-उलमा या महामहोपाध्याय की उपाधि मिली हो।

भिन्न-भिन्न प्रान्तों में निर्वाचक की योग्यता प्राप्त करने के लिए आय-कर या जमीन के लगान की सीमा अलग अलग है। कुछ प्रान्तों में मुसलमान निर्वाचकों के लिए आर्थिक योग्यता का परिमाण कुछ कम है। तथापि बड़े-बड़े जमींदारों और पूँजी-

---

*जिन व्यक्तियों का नाम सरकार द्वारा तैयार की हुई निर्वाचक-सूची में दर्ज होता है उन्हें ही किसी सभा के चुनाव में मत देने का अधिकार होता है, दूसरों को नहीं होता।

वालों को ही निर्वाचन अधिकार दिया गया है; इनकी संख्या देश में बहुत कम है।

सदस्य कौन हो सकता है?—राजपरिषद् के लिए वे ही व्यक्ति मेम्बरी के उम्मेदवार हो सकते हैं, या निर्वाचित या नामजद किये जा सकते हैं, जिनका नाम किसी निर्वाचक-संघ की सूची में दर्ज हो, बशर्ते कि—

१—वे ऐसे वकील न हों, जो किसी न्यायालय द्वारा वकालत करने के अधिकार से वंचित कर दिये गये हों।

२—वे ऐसे दिवालिए न हों, जो बरी न किये गये हों, अर्थात् जिनका पूरा भुगतान न हुआ हो।

३—उनकी आयु ३५ वर्ष से कम न हो

४—वे ऐसे व्यक्ति न हों, जिनको फौजदारी अदालत द्वारा एक वर्ष से अधिक कैद का या देश निकाले का दंड दिया जा चुका हो।

५—वे सरकारी नौकर न हों।

व्यवस्थापक मंडल का कार्यक्षेत्र—भारतीय व्यवस्थापक मंडल के तीन कार्य हैं:—(१) शासन कार्य की जाँच करने के लिए आवश्यक प्रश्न पूछना और प्रस्ताव करना, (२) कानून बनाना, और (३) सरकारी आय-व्यय निश्चित करना। स्मरण रहे कि यह मंडल कोई ऐसी संस्था नहीं है जो स्वतन्त्रता-पूर्वक कार्य कर सके। उसके अधिकारों की सीमा बहुत परिमित है, यह आगे स्पष्ट हो जायगा।

कार्य पद्धति—व्यवस्थापक मण्डल की दोनों सभाओं

के अधिवेशन साधारणतः दिन के ग्यारह से पाँच बजे तक होते हैं। आरम्भ के, पहिले घंटों में प्रश्नों के उत्तर दिये जाते हैं। सभाओं के अन्य कार्य के दो भाग होते हैं, सरकारी और गैर-सरकारी। गैर-सरकारी काम के लिए गवर्नर-जनरल द्वारा कुछ दिन निर्धारित कर दिये जाते हैं, इनमें गैर-सरकारी सदस्यों के प्रस्तावों पर ही विचार होता है, अन्य दिनों में सरकारी काम होता है। सेक्रेटरी विचारणीय विषयों की सूची तैयार करता उसी के अनुसार कार्य होता है, और सभापति की आज्ञा बिना, किसी नवीन विषय पर विचार नहीं किया जाता।

राजपरिषद् में १५, और व्यवस्थापक सभा में २५ सदस्यों की उपस्थिति के बिना कार्यारम्भ नहीं हो सकता। सदस्यों के के बैठने का क्रम सभापति निश्चय करता है। सभाओं की भाषा अंगरेजी रखी गई है; सभापति अंगरेज़ी न जानने वाले सदस्य को देशी भाषा में बोलने की अनुमति दे सकता है। प्रत्येक सदस्य सभापति को सम्बोधन करके बोलता है, और उसी के द्वारा प्रश्न कर सकता है। जहाँ तक कोई सदस्य सभाओं के नियमों की अवहेलना न करे, उसे भाषण करने की स्वतंत्रता है, और भाषण या मत देने के कारण, किसी सदस्य पर मुकद्दमा नहीं चलाया जा सकता। प्रत्येक विषय का निर्णय सभापति को छोड़ कर, सभा के सदस्यों के बहुमत से होता है; दोनों ओर समान मत होने से सभापति के मत से निपटारा हो जाता है। सभा में शान्ति रखना सभापति का कर्तव्य है। और, इस के लिए आवश्यकता होने पर वह किसी सदस्य को एक दिन, या अधिक

समय तक के लिए सभा में आना बन्द कर सकता है, अथवा अधिवेशन भी स्थगित कर सकता है।

प्रश्न—व्यवस्थापक मण्डल की सभाओं का कोई सदस्य निर्धारित नियमों का पालन करते हुए सार्वजनिक महत्व का प्रश्न पूछ सकता है। प्रश्न उन्हीं विषयों के हो सकते हैं, जिनके सम्बन्ध में प्रस्ताव उपस्थित किये जा सकते हैं। जब एक प्रश्न का उत्तर मिल चुके तो ऐसा पूरक प्रश्न पूछा जा सकता है, जिससे पूर्व प्रश्न के विषय के सम्बन्ध में अधिक प्रकाश पड़े। सभापति को अधिकार है कि कुछ दशाओं में वह किसी प्रश्न, उसके अंश या पूरक प्रश्न के पूछे जाने की अनुमति न दे। किसी सरकारी विभाग के सदस्य से वही प्रश्न किये जा सकते हैं, जिनसे सरकारी तौर पर उसका सम्बन्ध हो; ऐसे प्रश्न पूछे जाने की सूचना कम-से-कम दस दिन पहले देनी होती है।

प्रस्ताव—व्यवस्थापक मंडल के प्रस्ताव केवल सिफारिश के रूप में होते हैं, वे भारत-सरकार पर बाध्य नहीं होते। इस संस्था में निम्नलिखित विषयों के प्रस्ताव उपस्थित नहीं हो सकते:—

ब्रिटिश सरकार, गवर्नर-जनरल या कौंसिल-युक्त गवर्नर-जनरल का विदेशी राज्यों या भारत के देशी राज्यों से सम्बन्ध, देशी राज्यों का शासन, किसी देशी नरेश सम्बन्धी कोई विषय और ऐसे विषय जो सम्राट् के अधिकारगत किसी अदालत में पेश हों।

निम्नलिखित विषयों के लिए गवर्नर-जनरल की पूर्व

स्वीकृति बिना, कोई प्रस्ताव उपस्थित नहीं किया जा सकता:— धार्मिक विषय या रीतियाँ, जल स्थल या वायुसेना, विदेशी राज्यों या भारत के देशी राज्यों से सरकार का सम्बन्ध, प्रान्तीय विषय का नियन्त्रण, प्रान्तीय व्यवस्थापक सभाओं का कोई कानून रद्द या संशोधन करना, गवर्नर-जनरल के बनाये किसी एक्ट या आर्डिनेंस को रद्द या संशोधन करना।

भारतीय व्यवस्थापक सभा या राजपरिषद् में प्रस्ताव दो प्रकार के होते हैं, (१) किसी आवश्यक विषय पर वादानुवाद करने के लिए सभा के साधारण कार्य को स्थगित करने के, और (२) भारत-सरकार से किसी कार्य के करने की सिफारिश के। पहले प्रकार का प्रस्ताव, सभा के अधिवेशन में प्रश्नोत्तर के बाद ही सेक्रेटरी को सूचना देकर, किया जा सकता है। सभापति इस प्रस्ताव को पढ़कर सुना देता है। यदि किसी सदस्य को, प्रस्ताव करने की अनुमति देने में आपत्ति हो तो सभापति कहता है कि अनुमति देने के पक्ष वाले सदस्य खड़े हो जायँ। यदि राज-परिषद् में १५, या व्यवस्थापक सभा में २५ सदस्य खड़े हो जायँ तो सभापति यह सूचित कर देता है कि अनुमति है, और ४ बजे या इससे पहले, प्रस्ताव पर विचार होगा।

दूसरे प्रकार के प्रस्ताव के लिए, प्राय: १५ दिन और कुछ दशाओं में इससे अधिक समय पहले, सूचना देनी होती है। प्रस्ताव उपस्थित किया जा सकता है या नहीं, इसका निर्णय सभापति करता है। अधिवेशन से दो दिन पहले एक कागज पर १, २, ३ आदि संख्याएँ लिखकर उसे कार्यालय में रख दिया

G. H. 405

जाता है। जिन सदस्यों के प्रस्ताव उपस्थित किये जा सकने का निर्णय सभापति द्वारा हो जाता है, वे उन संख्याओं के सामने अपना नाम लिख देते हैं। तीसरे दिन कागज के उतने टुकड़े लेकर उनपर क्रमशः १, २, ३ आदि संख्याएँ लिखी जाती हैं, और उन्हें एक बक्स में डाल दिया जाता है। इन प्रस्तावों पर विचार करने के लिए जो दिन नियत होते हैं, उन दिनों में जितने प्रस्ताव उपस्थित हो सकने की सम्भावना हो, उतने कागजों को, एक आदमी बक्स में से बिना विचारे, एक-एक करके निकालता है। जिस क्रम में कागज निकलते हैं, उसी क्रम से, नाम एक सूची में लिख दिये जाते हैं।* अधिवेशन में, इस सूची के क्रम के अनुसार ही प्रस्ताव उपस्थित किये जाते हैं। सभापति की आज्ञा बिना किसी अन्य प्रस्ताव पर विचार नहीं होता।

सभापति की अनुमति से प्रस्तावक अपना प्रस्ताव अन्य सदस्य से उपस्थित करा सकता है, और वह चाहे तो उसे वापिस भी ले सकता है। प्रस्तावक के अनुपस्थित होने पर उसका प्रस्ताव रद्द समझा जाता है। प्रस्ताव में संशोधन के लिए कोई भी सदस्य 'संशोधक प्रस्ताव' कर सकता है, पर इसके लिए भी साधरणतः दो दिन पहले सूचना देनी पड़ती है।

क़ानून—भारतीय व्यवस्थापक मंडल को क़ानून बनाने का कोई स्वतंत्र अधिकार नहीं है, कारण यह संस्था सर्वथा

*नामों का क्रम निश्चय करने के इस ढंग को 'बेलट-'पद्धति कहते हैं।

ब्रिटिश पार्लिमेंट के अधीन है। जब तक पार्लिमेण्ट के एक्ट से स्पष्टतया ऐसा करने का अधिकार प्राप्त न हो, भारतीय व्यवस्थापक मण्डल ऐसा क़ानून नहीं बना सकता, जो पार्लिमेंट के, भारतवर्ष की शासनपद्धति सम्बन्धी, किसी एक्ट या अधिकार पर, अथवा सम्राट् के आदेश पर प्रभाव डाले या उसे संशोधित करे। इस बात को ध्यान में रखते हुए वह निम्नलिखित विषयों के सम्बन्ध में क़ानून बना या बदल सकता है—(क) ब्रिटिश भारत के सब आदमियों, अदालतों, स्थानों और ऐसे विषयों के लिए जो प्रान्तीय नहीं है। (ख) भारतवर्ष की रियासतों में या विदेशों में रहनेवाली भारतीय जनता के लिए, जो ब्रिटिश भारत में या बाहर (किसी अन्य देश में) हो। चीफ़-कमिश्नर के प्रान्तों के लिए भी क़ानून इसी संस्था द्वारा बनाये जाते हैं।

क़ानून किस प्रकार बनते हैं?—जब किसी सभा का कोई सदस्य किसी क़ानूनी मसविदे (बिल) को पेश करना चाहता है तो वह नियमानुसार उसकी सूचना देता है। यदि उसके पेश करने के लिए, नियम के अनुसार, पहले ही गवर्नर-जनरल की अनुमति लेने की आवश्यकता हो, तो वह माँगी जाती है। अनुमति मिल जाने पर, निश्चित किये हुए दिन मसविदा सभा में पेश किया जाता है। उस समय पूरे मसविदे के सिद्धान्तों पर विचार होता है। यदि आवश्यकता हो तो मसविदा साधारणतया उसी सभा को (जिसका सदस्य मसविदा पेश करता हो), या दोनों सभाओं की, सिलेक्ट

कमेटी* में विचारार्थ भेजा जाता है। यह कमेटी उसके सम्बन्ध में संशोधन, परिवर्तन, या परिवर्द्धन आदि करके अपनी रिपोर्ट देती है। पश्चात् बिल के वाक्यांशों पर एक-एक करके विचार किया जाता है और वे आवश्यक सुधार सहित पास किये जाते हैं। फिर सम्पूर्ण मसविदा, स्वीकृत संशोधनों सहित, पास करने का प्रस्ताव उपस्थित किया जाता है। यह प्रस्ताव पास हो जाने पर, मसविदा दूसरी सभा में भेजा जाता है। वहाँ पर फिर इसी क्रम के अनुसार विचार होता है। यदि मसविदा यहाँ बिना संशोधन के पास हो जाय तो उसे गवर्नर-जनरल की स्वीकृति के लिए भेज दिया जाता है, और स्वीकृति मिल जाने पर वह क़ानून बन जाता है। अगर मसविदा दूसरी सभा में संशोधनों सहित पास हो तो उसे इस निवेदन सहित लौटाया जाता है कि पहली सभा उन संशोधनों पर सहमत हो जाय। संशोधनों पर फिर वही कारवाई—सूचना देने, विचार करने, स्वीकृति का समाचार भेजने आदि की—की जाती है। अगर अन्त में मसविदा इस सूचना से लौटाया जाय कि दूसरी सभा

* इसमें सरकार का क़ानून-सदस्य, मसविदे से सम्बन्ध रखनेवाले विभाग का सदस्य मसविदे का पेश करनेवाला, तथा तीन या अधिक अन्य सदस्य होते हैं।

हिन्दू और मुसलमानों के धार्मिक विचारों से सम्बन्ध रखनेवाले क़ानूनों के मसविदों पर विचार करने के लिए पृथक् पृथक् स्थायी समितियाँ हैं। इन समितियों में, अधिकांश में उस जाति के ही सुधारक तथा कट्टर सदस्य होते हैं। उनके अतिरिक्त इनमें उस-उस जाति सम्बन्धी क़ानून के विशेषज्ञ भी सम्मिलित किये जाते हैं।

ऐसे संशोधनों पर अनुरोध करती है, जिन्हें पहली सभा मानने को तैयार नहीं हैं, तो वह सभा चाहे तो (१) मसविदे को रोक दे, या (२) अपने सहमत न होने की रिपोर्ट गवर्नर-जनरल के पास छः मास तक भेज दे। दूसरी परिस्थिति में, मसविदा और संशोधन दोनों सभाओं के ऐसे संयुक्त अधिवेशन में पेश होते हैं जो गवर्नर-जनरल अपनी इच्छानुसार करे। इसका अध्यक्ष राज-परिषद् का सभापति होता है। मसविदे और विचारणीय संशोधनों पर विचार या वादानुवाद होता है; जिन संशोधनों के पक्ष में बहुमत होता है, वे स्वीकृत समझे जाते हैं। इस प्रकार स्वीकृत संशोधनों सहित यह मसविदा दोनों सभाओं से पास हुआ समझा जाता है।

राजपरिषद् से हानि—राजपरिषद् ने समय-समय पर भारतीय व्यवस्थापक सभा द्वारा स्वीकृत क़ानूनी मसविदे अस्वीकार किये, तथा, ऐसे प्रस्ताव पास किये, जिनसे भारतीय व्यवस्थापक सभा का घोर विरोध था। भारतीय व्यवस्थापक सभा राजपरिषद् की अपेक्षा, कहीं अधिक निर्वाचकों की प्रतिनिधि-सभा है। इसलिए राजपरिषद् का उक्त कार्य सर्वसाधारण के हितों का घातक है। राजपरिषद् में कितने ही सदस्य तो नामज़द ही हैं। निर्वाचित सदस्यों में भी अधिकांश ऐसे व्यक्ति होते हैं, जो लोकमत की परवाह नहीं करते; ऐसा होना स्वाभाविक ही है, कारण कि उनके चुननेवाले प्रायः रईस, ज़मींदार, धनी, जागीरदार आदि हैं, और वे प्रायः ऐसे ही आदमी को चुनते हैं, जो सरकार की ओर झुकनेवाले

हों। अधिकारी इस परिषद् की आड़ में अपनी मनमानी कार्रवाई कर सकते हैं। इस प्रकार इससे होनेवाली हानि स्पष्ट है।

गवर्नर-जनरल के व्यवस्था सम्बन्धी अधिकार— गवर्नर-जनरल को यह अधिकार है कि वह राजपरिषद् के सदस्यों में से किसी को सभापति नियुक्त कर दे, अथवा ख़ास हालतों में, किसी दूसरे सज्जन को सभापति का कार्य करने के लिए नियत करे। वह राजपरिषद् तथा भारतीय व्यवस्थापक सभा के सम्मुख भाषण कर सकता है, और इस काम के लिए उक्त सभाओं का अधिवेशन करा सकता है। कई विषयों के मसविदे उसकी अनुमति बिना किसी सभा में पेश नहीं हो सकते। जिन प्रस्तावों के उपस्थित किये जाने के लिए, उसकी अनुमति की आवश्यकता नहीं है, उनमें से भी किसी प्रस्ताव या उसके किसी अंश का उपस्थित किया जाना, वह सार्वजनिक हित के आधार पर अस्वीकार कर सकता है। दोनों सभाओं में पास होने पर भी मसविदा उसकी स्वीकृति बिना क़ानून नहीं बनता। उसे यह अधिकार है कि वह दोनों सभाओं में पास हुए मसविदे को स्वीकार करे, अस्वीकार करे, या सम्राट् की स्वीकृति के लिए रख छोड़े। अन्तिम दशा में, मसविदे पर सम्राट् की स्वीकृति मिलने से ही, वह क़ानून बन सकता है।

जब कोई सभा किसी क़ानून के मसविदे के उपस्थित किये जाने की अनुमति न दे, या उसे गवर्नर-जनरल की इच्छानुसार पास न करे तो यदि गवर्नर-जनरल चाहे तो उसे यह तसदीक़

करने का अधिकार है कि देश की शान्ति, सुरक्षा या हित की दृष्टि से इस मसविदे का पास होना आवश्यक है। उसके ऐसा तसदीक़ कर देने पर, वह मसविदा क़ानून बन जाता है, चाहे कोई सभा उसे स्वीकार न करे। ऐसा हर एक क़ानून गवर्नर-जनरल का बनाया हुआ सूचित किया जाता है, और पार्लिमेंट की दोनों सभाओं के सामने पेश होता है। और, जब तक सम्राट् की स्वीकृति न मिले, वह व्यवहार में नहीं लाया जाता। जब गवर्नर-जनरल यह समझे कि उक्त क़ानून को व्यवहार में लाने की अत्यन्त आवश्यकता है तो उसके ऐसा आदेश करने पर, वह अमल में आजाता है; केवल यह शर्त है कि सम्राट् ऐसे क़ानून को नामंजूर कर सकता है। गवर्नर-जनरल को यह भी अधिकार है कि सूचना देकर और यह तसदीक़ करके कि यह मसविदा देश की रक्षा, शान्ति या हित के विरुद्ध है, किसी ऐसे मसविदे के सम्बन्ध में होनेवाली कार्रवाई को रोक दे, जो किसी सभा में पेश हो चुका हो, या होनेवाला हो।

भारतीय आय-व्यय का विचार—भारत-सरकार के अनुमानित आय व्यय का विवरण ('बजट') प्रति वर्ष भारतीय व्यवस्थापक मंडल के सामने रखा जाता है। गवर्नर-जनरल की सिफ़ारिश बिना, किसी काम में रुपया लगाने का प्रस्ताव नहीं किया जा सकता। विशेषतया निम्नलिखित व्यय की मदों के लिए कौंसिल-युक्त गवर्नर जनरल के प्रस्ताव व्यवस्थापक सभा के मत (वोट) के लिए नहीं रखे जाते, न कोई सभा उन पर वादानुवाद कर सकती है, जब तक गवर्नर-जनरल इसके लिए

आज्ञा न दे दे :—

(१) ऋण का सूद । (२) ऐसा ख़र्च जिसकी रक़म क़ानून से निर्धारित हो। (३) उन लोगों की वेतन और भत्ते या पेन्शन, जो सम्राट् द्वारा, या सम्राट् की स्वीकृति से, नियुक्त किये गये हों। चीफ़-कमिश्नरों या जुडिशल कमिश्नरों के वेतन (४) वह रक़म जो सम्राट् को देशी राज्यों सम्बन्धी ख़र्च के उपलक्ष्य में दी जानेवाली हो। (५) किसी प्रान्त के 'पृथक् किये हुए' (एक्सक्लूडेड) क्षेत्रों का शासन सम्बन्धी ख़र्च। (६) ऐसी रक़म जो गवर्नर-जनरल उन कार्यों में ख़र्च करे, जिन्हें उस को अपने विवेक से करना आवश्यक हो। (७) वह ख़र्च जिसे कौंसिल-युक्त गवर्नर-जनरल ने (क) धार्मिक, (ख) राजनैतिक, या (ग) रक्षा अर्थात् सेना सम्बन्धी ठहराया हो।

इन मदों को छोड़कर व्यय के अन्य विषयों के ख़र्च के लिए कौंसिल-युक्त गवर्नर-जनरल के अन्य प्रस्ताव भारतीय व्यवस्थापक सभा के मत के वास्ते, माँग के स्वरूप में रखे जाते हैं। इस सभा को अधिकार है कि वह किसी माँग को स्वीकार करे, या, न करे, अथवा घटाकर स्वीकार करे। परन्तु कौंसिल-युक्त गवर्नर-जनरल सभा के ऐसे निश्चय को रद्द कर सकता है। विशेष दशाओं में, गवर्नर-जनरल ऐसे ख़र्च के लिए स्वीकृति दे सकता है, जो उसकी सम्मति में देश की रक्षा या शान्ति के लिए आवश्यक हो।

भारतीय व्यवस्थापक मंडल के अधिकारों की न्यूनता—पहले कहा जा चुका है कि भारतवर्ष की शासनपद्धति निश्चित करने या उसमें कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन या सुधार करने

का अधिकार ब्रिटिश पार्लिमेंट को है। इससे स्पष्ट है कि भारतीय व्यवस्थापक मंडल कोई ऐसी संस्था नहीं है, जो स्वतंत्रतापूर्वक क़ानून बना सके। उसके अधिकारों की सीमा बहुत परिमित है। वह केवल उतना ही कार्य कर सकता है, जितना पार्लिमेंट उसके लिए निर्धारित करे। उसके प्रस्ताव करने या क़ानून बनाने के सम्बन्ध में क्या क्या प्रतिबंध हैं यह ऊपर बताया जा चुका है। भारत-सरकार उसके स्वीकृत प्रस्तावों के अनुसार कार्य करने के लिए बाध्य नहीं है। भारतीय व्यवस्थापक मंडल द्वारा स्वीकृत प्रस्तावों को क़ानून का स्वरूप तभी मिलता है, जब गवनर-जनरल उसे स्वीकार कर ले। गवर्नर-जनरल अथवा सम्राट् उसके द्वारा पास किये हुए किसी भी क़ानून के मसविदे को रद्द कर सकता है। व्यवस्थापक मंडल को भारतवर्ष के आय-व्यय पर भी बहुत कम अधिकार है। इस विषय में भी गवनर-जनरल की इच्छा सर्वोपरि है। इस प्रकार भारतीय जनता के प्रतिनिधियों की परवशता की बात पग-पग पर सामने आती है। आवश्यकता है कि भारतीय व्यवस्थापक मंडल को क़ानून बनाने आदि की समस्त तथा अन्तिम सत्ता प्राप्त हो, इसमें ब्रिटिश पार्लिमेंट आदि का नियंत्रण या हस्तक्षेप न हो, और भारत-सरकार इसके बनाये क़ानूनों के अनुसार कार्य करने को बाध्य हो।

छठा परिच्छेद

संघ-न्यायालय

[सन् १९३५ के विधान के अनुसार, यहाँ अभी संघ की स्थापना नहीं हुई है। तथापि संघ न्यायालय, रिजर्व बैङ्क और संघीय रेलवे विभाग स्थापित होकर कुछ कार्य करने लग गये हैं। इनमें से संघ-न्यायालय के सम्बन्ध में यहाँ लिखा जाता है, अन्य दो संस्थाओं के विषय में अगले परिच्छेद में कहा जायगा।]

संघ का अर्थ तीसरे परिच्छेद में बताया जा चुका है। संघ-शासन के अमल में आने के लिए संघ-न्यायालय का होना अत्यन्त आवश्यक है। जब कभी केन्द्रीय सरकार का किसी प्रान्तीय सरकार से, अथवा दो प्रान्तों का परस्पर में, किसी विषय में मतभेद हो, या शासनविधान की किसी धारा का अलग-अलग अर्थ लगाया जाता हो, तो उसका निर्णय संघ-न्यायालय द्वारा होता है।

भारतीय संघ-न्यायालय का संगठन—भारतवर्ष में संघ-न्यायालय की स्थापना सन् १९३७ में हुई। यह देहली में है। इसके प्रधान जज को 'भारतवर्ष का चीफ़-जस्टिस' कहते हैं। उसके अतिरिक्त इसमें जजों की संख्या आवश्यकतानुसार छः तक हो सकती है।* जजों की नियुक्ति सम्राट् द्वारा की जाती है। प्रत्येक जज पैंसठ वर्ष की आयु तक अपने पद पर रहता है। हाँ, वह गवर्नर-जनरल को त्यागपत्र देकर अपना पद छोड़

---

* अभी प्रधान जज के अतिरिक्त केवल दो ही जज रहते हैं।

सकता है, और दुराचार या मानसिक अथवा शारीरिक निर्बलता के आधार पर सम्राट् उसे अपने पद से हटा सकता है, जब कि प्रिवी कौंसिल की जुडीशल कमेटी की भी ऐसी सम्मति हो। जज अथवा चीफ़ जस्टिस के पद पर नियुक्त होने के लिए किसी व्यक्ति में निर्धारित योग्यता होना आवश्यक है। जजों का वेतन, भत्ता और मार्ग-व्यय, छुट्टी के समय का वेतन और पेन्शन आदि सपरिषद् सम्राट् समय-समय पर निर्धारित करता है; किसी जज की नियुक्ति हो जाने पर उसके वेतन या छुट्टी अथवा पेन्शन आदि के अधिकार में कमी नहीं की जाती।

इसका अधिकार-क्षेत्र--संघ-न्यायालय के दो भाग हैं, आरिजिनल और अपील भाग। 'आरिजिनल' भाग में नये मुकद्मों का विचार होता है। केन्द्रीय सरकार, प्रांतों और देशी राज्यों का परस्पर में क़ानूनी अधिकार सम्बन्धी मतभेद होने पर उसका फ़ैसला केवल सङ्घ-न्यायालय में होता है; और यह न्यायालय उसका विचार अपने 'आरिजिनल' भाग में करता है। देशी राज्य से सम्बन्ध रखनेवाले विशेषतया उसी मतभेद का विचार होता है, जिसका सम्बन्ध (क) भारतीय शासन-विधान की व्याख्या से, या इस विधान के अन्तर्गत दी हुई सम्राट् की किसी आज्ञा से हो, या (ख) इस बात से हो कि केन्द्रीय व्यवस्थापक मंडल का कोई क़ानून किसी देशी राज्य में कहाँ तक लागू हो सकता है। इस प्रकार नये मुकद्मों का विचार उसी दशा में होता है, जब वे व्यक्तियों के न होकर सरकारों के हों।

संघ न्यायालय में ब्रिटिश भारत के हाईकोर्टों के ऐसे फ़ैसले या अंतिम आज्ञा की अपील हो सकती है, जिस के विषय में हाईकोर्ट यह तसदीक कर दे कि उसमें शासन-विधान की व्याख्या से, या विधान के अन्तर्गत सपरिषद् सम्राट् की किसी आज्ञा से, सम्बन्धित कोई महत्वपूर्ण क़ानूनी प्रश्न आता है। केन्द्रीय व्यवस्थापक मंडल क़ानून बनाकर संघ-न्यायालय को निर्धारित प्रकार के, साधारणतया पन्द्रह हज़ार रुपये या अधिक के, दीवानी दावों की अपील सुनने का अधिकार दे सकता है। वह इस बात की भी व्यवस्था कर सकता है कि ब्रिटिश भारत के हाईकोर्टों के सब या कुछ दीवानी मामलों की अपील सीधे प्रिवी कौंसिल में न हो।

यदि गवर्नर-जनरल किसी सार्वजनिक महत्व के क़ानून के प्रश्न पर सङ्घ-न्यायालय की सम्मति लेना चाहे तो यह न्यायालय उसके सम्बन्ध में आवश्यक बातें जान लेने पर अपनी रिपोर्ट देता है।* यह न्यायालय गवर्नर-जनरल की स्वीकृति से समय-समय पर अपनी कार्य-पद्धति के नियम बना सकता है, जिनमें यह बातें भी सम्मिलित हैं :— इस न्यायालय में कैसे वकील आदि पैरवी कर सकते हैं, कितने समय में यहाँ अपील दाख़िल की जानी चाहिए, मुकदमे की कार्रवाई में क्या-क्या ख़र्च हो, क्या फ़ीस लगे, किस प्रकार व्यर्थ अपीलों का तुरन्त निपटारा कर दिया जाय, और किसी विषय के विचारार्थ

* गवर्नरों या प्रान्तीय सरकारों को संघ-न्यायालय की सलाह की आवश्यकता हो तो वे गवर्नर-जनरल की आज्ञा द्वारा ही, उसे प्राप्त कर सकती हैं।

कम-से-कम कितने जज बैठें, जो तीन से कम न हों। इस न्यायालय का सब काम अँगरेज़ी में होता है। न्यायालय का सब ख़र्च केन्द्रीय आय में से होता है, और इसकी फ़ीस आदि की आमदनी केन्द्रीय आय में सम्मिलित कर दी जाती है।

संघ-न्यायालय के फ़ैसले की अपील प्रिवी कौंसिल * (गुप्त सभा) में हो सकती है। जिन मामलों का संघ-न्यायालय अपने आरिजिनल भाग में फ़ैसला कर सकता है, उनकी अपील संघ-न्यायालय की अनुमति के बिना ही हो सकती है। अन्य विषयों के फ़ैसलों की अपील होने के लिए संघ-न्यायालय को या सपरिषद् सम्राट् की अनुमति मिलना आवश्यक है। सङ्घ-न्यायालय द्वारा (तथा प्रिवी कौंसिल के फैसलों से) सूचित किया हुआ क़ानून प्रसङ्गानुसार ब्रिटिश भारत के सब न्यायालयों में मान्य होता है।

यह स्पष्ट है कि सङ्घ-न्यायालय के अधिकारों में दो बातें विचारणीय हैं—प्रथम यह कि यह न्यायालय केवल विधान सम्बन्धी विचार नहीं करता, इसमें दीवानी मामलों का भी फ़ैसला होता है। दूसरी बात यह है कि यह सर्वोच्च स्वतंत्र न्यायालय नहीं है। इसके फ़ैसलों की अपील इंगलैंड की प्रिवी कौंसिल* में हो सकती है। अन्य देशों में सङ्घ शासन-विधानों के अनुसार बने हुए न्यायालय सर्वोच्च माने जाते हैं, उनके फ़ैसलों की किसी

* इसका उल्लेख दूसरे परिच्छेद में किया जा चुका है। इसमें, कुछ दशाओं में भारतवर्ष के हाईकोर्टों तथा संघ-न्यायालय के फैसलों की अपील हो सकती है। इसमें फौजदारी के मुकदमें कम जाते हैं, दीवानी मुकदमों की अपील भी तभी होती है, जब वे निर्धारित रकम से ऊपर के हों। दस हज़ार रुपये से कम के मुकदमों की तो उसमें अपील हो ही नहीं सकती।

भी स्वदेशी या विदेशी अदालत में अपील नहीं हो सकती। परन्तु भारतवर्ष में सङ्घ-न्यायालय को यह गौरव प्राप्त नहीं है। यह तो ब्रिटिश पार्लिमेंट द्वारा बनायी हुई, और उसके ही द्वारा अधिकार-प्राप्त संस्था है, जो उसकी संरक्षकता में कार्य करती है। इस प्रकार भारतवर्ष का यह न्यायालय अन्तिम या सर्वोच्च न्यायालय नहीं है, जैसा कि इसे होना चाहिए।

विधान सम्बन्धी एक महत्वपूर्ण निर्णय—सङ्घ-न्यायालय का विधान सम्बन्धी कार्य एक उदाहरण से स्पष्ट हो जायगा। सन् १९३५ के विधान से प्रान्तीय सरकारों के अधिकार तो बढ़ गये परन्तु उनकी आर्थिक स्थिति जैसी चाहिए, न हुई। कर-निर्धारण के प्रमुख विषय केन्द्रीय सरकार के हाथ में है। प्रान्तों की आय इतनी कम है कि उसे बढ़ाये बिना जनता की दशा सुधारना सम्भव नहीं। कांग्रेसी सरकारों को अपनी आय की कमी और भी अधिक प्रतीत हुई; कारण, उन्होंने म० गांधी की प्रेरणा से शराब आदि मादक द्रव्यों का अनैतिक व्यापार क्रमशः बन्द कर देने का निश्चय किया था। इस प्रकार इस बात की अत्यन्त आवश्यकता अनुभव हुई कि प्रान्तों की आय बढ़ाने के प्रयत्न किये जायँ; कर लगाने के नये क्षेत्र निकाले जायं। इस दृष्टि से मध्यप्रान्त की सरकार ने पेट्रोल पर कर लगाने के लिए व्यवस्थापक सभा में क़ानून का मसविदा उपस्थित किया। विरोधी दल के सदस्यों का मत था कि यह कर केन्द्रीय विषयों में आता है, प्रान्तीय सरकार को यह कर लगाने का अधिकार नहीं है। अस्तु, प्रान्तीय व्यवस्थापक सभा में मंत्रिमंडल का यह

कर लगाने का प्रस्ताव पास हो गया। पर केन्द्रीय सरकार इस विषय में सहमत न थी, उसने इस विषय का निर्णय कराने के लिए संघ-न्यायालय में मामला चलाया। अन्य प्रान्तों ने भी इस मामले में बहुत दिलचस्पी ली; कारण, यह केन्द्रीय सरकार और प्रान्तीय सरकारों के कर लगाने के क्षेत्र का निर्णय करनेवाला महत्वपूर्ण मामला था। दिसम्बर १९३८ में सङ्घ-न्यायालय ने मध्यप्रान्त की सरकार के पक्ष में फैसला दिया। इस निर्णय का देश में खूब स्वागत हुआ, इसमें प्रान्तों को ऐसे पदार्थों पर कर लगाये जाने में क़ानूनी सन्देह न रहा और प्रान्तीय सरकारों के लिए,अपनी आमदनी बढ़ाने का (और उसके द्वारा लोकहित के कार्य करने का) एक नया मार्ग खुल गया। इससे स्पष्ट है कि सङ्घ-न्यायालय का निर्णय कैसा महत्वपूर्ण होता है।

संघ-न्यायालय का प्रशंसनीय कार्य— संघ-न्यायालय की वर्तमान स्थिति के कारण यह आशंका की गयी थी कि यह न्यायालय गवर्नर-जनरल के आर्डिनेंस या कानून का विरोध करने, भारत-सरकार की इच्छा के विरुद्ध निर्णय देने और भारतीय नागरिकों के मूल अधिकारों की रक्षा करने में समर्थ न होगा। परन्तु अपने थोड़े से जीवन में ही संघ-न्यायालय ने अपनी निर्भीकता, साहस और स्वतंत्रता का परिचय देकर उपर्युक्त आशंका को दूर कर दिया है। उसने निम्नलिखित कार्य से जनता की श्रद्धा और विश्वास उपार्जन कर लिया है। दूसरा योरपीय महायुद्ध जारी होने पर पिछले दिनों यहाँ भारत-रक्षा-कानून इस उद्देश्य से बनाया गया था कि अगर भारत पर

आक्रमण हो, और उस आक्रमण से ऐसी स्थिति पैदा होजाय जो शान्ति-काल के कानून से न संभाली जाय तो इस कानून का उपयोग किया जाय। इस कानून की धारा २६ के अनुसार म० गांधी तथा अन्य सहस्रों भारतीय बिना मुकद्मा चलाये अनिश्चित काल के लिए नजरबन्द किये गये। परन्तु संघ-न्यायालय ने इसे नाजायज (अवैध) ठहरा दिया। उसने निर्णय दिया कि इस कानून की यह धारा ऐसे अबाधित अधिकारों को उपयोग में लाने का अधिकार नहीं देती; जैसा कि प्रबन्धकारिणी ने किया है, और इस धारा का अर्थ यह कभी नहीं हो सकता कि किसी नागरिक को उचित वारंट के बिना गिरफ्तार किया जाय।

संघ-न्यायालय के इस निर्णय से राजनैतिक हल्कों में चहुँ ओर आशा की किरण दिखायी देने लगी। परन्तु भारत-सरकार पर इस का क्या प्रभाव पड़ा? क्या उसने अपनी गलती स्वीकार की, भारत-रक्षा-कानून को अवैध धारा के अनुसार गिरफ्तार किये हुए व्यक्तियों को रिहा कर दिया? नहीं। उसने यह न करके तथा एक नया आर्डिनेन्स जारी करके कानून में परिवर्तन कर दिया। इसके फलस्वरूप कानूनन किसी व्यक्ति की गिरफ्तारी या नजरबन्दी की जा सकती है, जिसे अधिकारी युक्तियुक्त कारणों से उचित समझते हों। आर्डिनेन्स में यह भी कहा गया कि भारत-रक्षा-कानून की धारा २६ के अनुसार अब तक कीगयी कार्यवाही गैर-कानूनी नहीं समझी जायगी। भारत-सरकार के इस कार्य ने भारतवर्ष की सबसे ऊची अदालत के निर्णय को व्यवहार में निरर्थक कर दिया।



सातवाँ परिच्छेद

रिजर्व बैंक और संघीय रेलवे अथारिटी

संघ सम्बन्धी तीन संस्थाओं में से संघ-न्यायालय के विषय में पिछले परिच्छेद में लिखा जा चुका है; अब रिजर्व बैंक और संघीय रेलवे अथारिटी के विषय में विचार करते हैं।

(१)

रिजर्व बैंक

रिजर्व बैंक की स्थापना यहाँ सन १९३५ ई० में हुई। इसके लिए कानून सन् १९३४ में बनाया गया था। यह स्टेट बैंक न होकर शेयरहोल्डरों अर्थात् हिस्सेदारों का बैंक है।

बैंक का कार्य—यह बैंक विशेषतया निम्नलिखित कार्य करता है:—आवश्यकतानुसार नोट जारी करना, सरकार का लेन-देन सम्बन्धी कार्य करते हुए ब्रिटिश भारत की आर्थिक स्थिरता बनाये रखना, मुद्रा और साख सम्बन्धी नीति निर्धारित करना। यह 'बैंकों का बैंक' है, अर्थात् इसमें अन्य बैंकों का रुपया रहता है, जिससे आवश्यकता उपस्थित होने पर यह उनकी सहायता कर सके, और देश में आर्थिक संकट न होने पाये। अब सरकार का मुद्रा-विभाग पृथक् नहीं है, उसका काम यही बैंक करता है। सरकार का जो रुपया इङ्गलैंड आदि देशों में भेजना होता है, वह भी इसी बैंक के द्वारा भेजा जाता है।

इस बैंक का कृषि-साख सम्बन्धी एक विशेष विभाग है। इसमें कृषि-साख के कुछ विशेषज्ञ रहते हैं, ये इस विषय की आवश्यक जानकारी प्राप्त करते हैं, और गवर्नर-जनरल, गवर्नरों, और प्रान्तीय सहकारी बैंकों के अधिकारियों को, तथा महाजनी सम्बन्धी संस्थाओं को आवश्यक परामर्श और सहायता देते हैं।

बैंक के हिस्सेदार, कार्यालय आदि—बैंक की हिस्सा-पूँजी पाँच करोड़ रुपये है। एक एक हिस्सा सौ-सौ रुपये का है, पाँच हिस्से लेनेवाले को एक मत का अधिकार होता है, और एक हिस्सेदार के अधिक-से-अधिक दस मत हो सकते हैं। हिस्सेदारों के लिए भारतवर्ष और बर्मा को पांच क्षेत्रों में विभक्त किया गया है- जिनके केन्द्रीय स्थान बम्बई, कलकत्ता, देहली, मदरास और रंगून हैं। इन पाँच स्थानों में रिज़र्व बैंक के कार्यालय हैं; प्रत्येक कार्यालय में उसके क्षेत्र के हिस्सेदारों का रजिस्टर रहता है। इसके अतिरिक्त, बैंक की एक शाखा लन्दन में खोली गयी है। भारतवर्ष और बर्मा में उपयुक्त पाँच स्थानों, तथा विदेशों में लन्दन के अतिरिक्त, किसी अन्य स्थान में इस बैंक की शाखा या एजंसी गवर्नर-जनरल की पूर्व स्वीकृति से ही स्थापित की जा सकती है।

सेंट्रल बोर्ड, गवर्नर-जनरल के अधिकार—बैंक का निरीक्षण और संचालन 'सेंट्रल बोर्ड' नामक कमेटी द्वारा होता है। इसमें निम्नलिखित डाइरेक्टर होते हैं:—(क) एक गवर्नर और दो डिप्टी-गवर्नर; इनकी नियुक्ति बोर्ड की सिफ़ारिश होने पर गवर्नर-जनरल करता है; ये अधिक-से-

अधिक पाँच वर्ष तक अपने पद पर रहते हैं। (ख) चार डाइरेक्टर, जिन्हें गवर्नर-जनरल नामज़द करता है। और (ग) आठ डाइरेक्टर, जा भिन्न-भिन्न क्षेत्रों के हिस्सेदारों द्वारा इस हिसाब से चुने जाते हैं;-बम्बई २,कलकत्ता २,देहली २,मदरास १, रंगून १। बोर्ड के गवर्नर और डिप्टी-गवर्नर के वेतन, भत्ता और कार्य-काल का निश्चय गवर्नर-जनरल करता है। हिस्सेदारों का प्रतिनिधित्व करनेवाले पूर्वोक्त आठ डाइरेक्टरों को प्रथम बार गवर्नर-जनरल ने नामज़द किया। पीछे इनमें से दो-दो का निर्वाचन प्रति वर्ष निर्धारित रीति से होने पर आठों नामज़द डाइरेक्टरों की जगह निर्वाचित डाइरेक्टर हो गये। आवश्यकता होने पर गवर्नर-जनरल सेंट्रल बोर्ड को तोड़कर उसके सम्बन्ध में उचित कारवाई कर सकता है, तथा बैंक का हिसाब चुकता करके उसे बन्द कर सकता है।

लोकल बोर्ड—बम्बई, कलकत्ता, देहली, मदरास और रंगून में से प्रत्येक स्थान में एक-एक लोकल बोर्ड स्थानीय कार्य संचालन करने के लिए रहता है। इस बोर्ड के सदस्यों में से पाँच उस क्षेत्र के हिस्सेदारों में से, उनके द्वारा ही निर्वाचित होते हैं, और कम-से-कम तीन सदस्य उस क्षेत्र के हिस्सेदारों में से सेंट्रल द्वारा नामज़द होते हैं।

विशेष वक्तव्य—रिज़र्व बैङ्क के संगठन में भारतीय हितों को सुरक्षित रखने तथा उस पर भारतीयों का नियंत्रण रहने की व्यवस्था नहीं की गयी है। हिस्सेदारों या डाइरेक्टरों के सम्बन्ध में भी ऐसा नियम नहीं है कि उनमें से अधिकांश भारतीय ही हों।

फिर, विधान में यह व्यवस्था की गयी है कि इस बैङ्क के संगठन तथा कार्य सम्बन्धी मसविदा गवर्नर-जनरल की पूर्व स्वीकृति बिना सङ्घीय व्यवस्थापक मंडल की किसी सभा में उपस्थित नहीं किया जा सकेगा।

इस प्रकार इस बैङ्क के संगठन आदि में भारतीयों का नियंत्रण तथा प्रत्यक्ष प्रतिनिधित्व यथेष्ट नहीं है। केन्द्रीय सरकार का अर्थमन्त्री मुद्रा और विनिमय आदि (जो इस बैङ्क के कार्य हैं) के सम्बन्ध में कोई स्वतंत्र नीति नहीं रख सकेगा; ये विषय 'राजनैतिक प्रभाव' से मुक्त रखे गये हैं। इसका अर्थ यह है कि इन महत्वपूर्ण आर्थिक विषयों में लोकमत की माँग की उपेक्षा की जा सकती है। इस पर भी इस बैङ्क की स्थापना उस विधान को अमल में लाने के लिए आवश्यक समझी गयी है, जिसका उद्देश्य यहाँ केन्द्र में उत्तरदायित्व स्थापित करना घोषित किया गया है!

(२)

संघीय रेलवे अथारिटी

नये विधान से भारतवर्ष में रेल बनाने और चलाने के कार्य के लिए नयी व्यवस्था की गयी है। अब यह कार्य सात सदस्यों की 'संघीय रेलवे अथारिटी' नामक संस्था करती है। 'अथारिटी' कहने से भी इसी संस्था का बोध होता है। आवश्यकता होने पर इस संस्था को रुपया केन्द्रीय सरकार देती है। अपनी आय के जिस रुपये की इसे तत्काल आवश्यकता नहीं होती, वह रिज़र्व-बैंक में जमा कर दिया जाता है। बचत का रुपया केन्द्रीय

सरकार द्वारा केन्द्रीय सरकार और अथारिटी में विभक्त होता है।

अथारिटी के सदस्यों की नियुक्ति गवर्नर-जनरल करता है; कम-से-कम तीन सदस्यों, और सभापति की नियुक्ति वह अपने विवेक से करता है। इसके अतिरिक्त, वह अपने प्रतिनिधि-रूप से एक या अधिक व्यक्तियों को 'अथारिटी' की सभा में भेज सकता है; ये उसमें भाषण दे सकते हैं, परन्तु मत नहीं दे सकते। रेलवे प्रबन्ध सम्बन्धी प्रधान कर्मचारी 'चीफ रेलवे कमिश्नर' की नियुक्ति गवर्नर-जनरल, 'अथारिटी' की सलाह लेकर अपने विवेक से करता है। 'अथारिटी' को समय-समय पर परामर्श देने के लिए एक आर्थिक कमिश्नर गवर्नर-जनरल द्वारा नियुक्त होता है। इन दोनों अधिकारियों को अथारिटी की सभा में उपस्थित होने का अधिकार होता है। गवर्नर-जनरल 'अथारिटी' से परामर्श करके, अपने विवेक से, रेलवे कम्पनियों के डाइरेक्टर और डिप्टी-डाइरेक्टरों की नियुक्ति करता है, तथा ऐसे नियम बनाता और हिदायतें देता है, जिनसे अथारिटी और केन्द्रीय सरकार के पारस्परिक व्यवहार सम्बन्धी कार्यों का सुविधा-पूर्वक सञ्चालन हो।

माल-भाड़ा कमेटी—यह कमेटी समय-समय पर गवर्नर-जनरल द्वारा नियुक्त होती है; और, अथारिटी को माल-भाड़े सम्बन्धी उन बातों में परामर्श देती है, जिनके विषय में यात्रियों तथा माल भेजनेवालों का अथारिटी से विरोध हो, और जिन्हें गवर्नर-जनरल इस कमेटी के सामने रखे।

किसी रेलवे के माल-भाड़े की दर निश्चित करने के सम्बन्ध में कोई कानून का मसविदा या संशोधन भारतीय व्यवस्थापक मंडल की किसी सभा में गवर्नर-जनरल की सिफारिश बिना उपस्थित नहीं किया जा सकता।

रेलवे न्यायालय—केन्द्रीय सरकार या देशी राज्यों की एक-दूसरे के विरुद्ध की हुई, माल उतारने-चढ़ाने या किराये-भाड़े आदि की शिकायतों का विचार रेलवे न्यायालय (ट्रिब्यूनल) में होता है। अथारिटी के द्वारा की जानेवाली किसी की हानि-पूर्ति का विचार भी इसी न्यायालय में होता है। इसकी फीस आदि से जो आय होती है, उसका रुपया केन्द्रीय सरकार को मिलता है, जो इसके प्रबन्ध आदि के लिए सब आवश्यक खर्च करती है। इस न्यायालय में एक सभापति और दो अन्य सदस्य होते है। इनका चुनाव गवर्नर-जनरल अपने विवेक से (प्रबन्धकारिणी की सलाह के बिना ही) करता है। ये ऐसे व्यक्ति होते हैं, जिन्हें रेलों के प्रबन्ध और कार्य का अनुभव हो।

सन् १९३५ ई० के विधान से पूर्व रेलवे विभाग भारत-सरकार के विभागों में से ही एक विभाग था। नये विधान के अनुसार सङ्घीय रेलवे 'अथारिटी' सरकार के अन्य विभागों से पृथक् और स्वतंत्र हो जाने के कारण, उस पर केन्द्रीय व्यवस्थापक मंडल का कुछ नियंत्रण न रहा। इससे उसके दोष दूर होने की सम्भावना स्वभावतः कम हो गयी है। अथारिटी के सदस्य प्रायः गवर्नर-जनरल के प्रति उत्तरदायी होंगे। निदान सार्वजनिक नियंत्रण और निरीक्षण की दृष्टि से रेलवे सम्बन्धी

नवीन व्यवस्था, पहले की अपेक्षा कुछ सुधरी हुई होने के बजाय, अधिक असन्तोषप्रद ही है। रेलों के सम्बन्ध में अनेक शिकायतें हैं—तीसरे दर्जे के यात्रियों का कष्ट, किराये की दर अधिक होना, रेल का सामान खरीदने में अंगरेजी कारखानों के साथ रियायतें, और नौकरियों में अगरेजों और एंग्लोइंडयनों का पक्षपात, आदि। इनके दूर होने की सम्भावना अब और भी कम हो गयी है। आवश्यकता है कि अथारिटी अन्य सरकारी विभागों की तरह भारतीय व्यवस्थापक मंडल के नियंत्रण में रहे।



आठवाँ परिच्छेद

प्रान्तीय सरकार

(१)

गवर्नर

[अब प्रान्तीय शासन का विषय लिया जाता है. यह सन् १९३५ ई० के विधान के अनुसार है, जिसका उद्देश्य प्रान्तीय स्वराज्य की स्थापना बताया गया था। यह उद्देश्य कहाँ तक पूरा हुआ ? प्रान्तीय सरकार के दो अंग होते हैं—गवर्नर, और मंत्रिमंडल। इस परिच्छेद में गवर्नर का विचार करके देखें।]

प्रान्तों का वर्गीकरण—ब्रिटिश भारत के प्रान्तों की संख्या समय-समय पर बदलती रही है। अब सन् १९३५ ई० के विधान के अनुसार यह संख्या १७ है। इन प्रान्तों के दो भेद हैं—(क) गवर्नरों के प्रान्त, और (ख) चीफ कमिश्नरों के

प्रान्त। यहाँ गवर्नरों के प्रान्तों के सम्बन्ध में ही विचार करना है। ये प्रान्त निम्नलिखित हैं :—१ मद्रास। २—बम्बई। ३—बंगाल। ४—संयुक्तप्रान्त। ५—पंजाब। ६—बिहार। ७—मध्य-प्रान्त और बरार। ८—आसाम। ९—पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त। १०—उड़ीसा। ११—सिन्ध।

सन् १९३५ के विधान के अनुसार गवर्नरों के प्रान्तों में बर्मा नहीं रहा, और तीन प्रान्त इस सूची में नये बढ़ाये गये हैं :—(१) पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त, (२) उड़ीसा, और (३) सिन्ध। इनमें से पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त की गणना पहले चीफ-कमिश्नरों के प्रान्तों में होती थी; उड़ीसा, बिहार के साथ था; तथा सिन्ध, बम्बई के साथ मिला हुआ था।

ब्रिटिश सरकार ने इस बात का कुछ विचार न करके कि अदन में भारतवर्ष के ख़ज़ाने से बहुत द्रव्य व्यय हुआ है तथा यहाँ भारतवासियों का व्यापार में लाखों रुपया लगा हुआ है, इसे भारत से (बम्बई प्रान्त से) पृथक् कर दिया।

बरार के सम्बन्ध में निज़ाम हैदराबाद और भारत-सरकार की एक संधि हो गयी है। इससे पहले निज़ाम को बरार के उपलक्ष्य में प्रति वर्ष २५ लाख रुपये मिलते थे, वे अब भी मिलते रहेंगे। बरार पर निज़ाम का प्रभुत्व मान लिया गया है। बरार में ब्रिटिश पताका ('यूनियन जैक') के साथ निज़ाम का झण्डा भी फहराएगा, और हैदराबाद के युवराज को 'प्रिंस आफ़-बरार' की उपाधि रहेगी। इसके अतिरिक्त, मध्यप्रान्त और बरार का गवर्नर नियुक्त किये जाने के समय ब्रिटिश सरकार निज़ाम हैदराबाद का भी परामर्श लिया करेगी; और निज़ाम को अपना एक एजंट मध्यप्रान्त की राजधानी में रखने का अधिकार होगा। इस संधि की शर्तों से निज़ाम को सन्तोष हुआ है।

पर, बरार की जनता को ? 'प्रान्तीय स्वराज्य', 'उत्तरदायी शासन', और 'स्वभाग्य-निर्णय' के युग में जनता को पूछा तक नहीं गया।

नये प्रान्तों का निर्माण, तथा सीमा-परिवर्तन—कोई प्रान्त (चाहे वह गवर्नर का प्रान्त हो, या चीफ-कमिश्नर का) निर्माण करने, या उसका क्षेत्र घटाने या बढ़ाने, अथवा किसी प्रान्त की सीमा बदलने का अधिकार सम्राट् को है। वह यह कार्य 'आर्डर-इन-कौंसिल' (सपरिषद सम्राट् की आज्ञा)* से करता है। इस विषय में वह आवश्यक है कि ऐसी आज्ञा का मसविदा पार्लिमेंट में उपस्थित किये जाने से पूर्व, भारत-मंत्री भारतवर्ष की केन्द्रीय सरकार, और व्यवस्थापक मंडल का, तथा जिस प्रान्त पर उक्त कार्य का प्रभाव पड़े, वहाँ की सरकार तथा वहाँ के व्यवस्थापक मंडल का, मत मालूम करने का वह सब कार्य करे, जिसके लिए सम्राट् का आदेश हो।

प्रान्तीय स्वराज्य की भावना के आविर्भाव के साथ, भारतवर्ष में भाषा, संस्कृति या रहनसहन आदि के विचार से प्रान्तों के पुनः विभाजन तथा नये प्रान्तों की सृष्टि की आवश्यकता बढ़ती जा रही है। † जब तक कि देश-हित की उपेक्षा न की जाय, ऐसी माँग की पूर्ति होना उचित ही है। हाँ, यह स्मरण रखने की बात है कि किसी प्रान्त के निवासियों का पृथक्करण सद्भावना पूर्वक ही होना चाहिए। पुनः एक स्वतंत्र प्रान्त की

---

* इसके सम्बन्ध में दूसरे परिच्छेद में लिखा जा चुका है। भारतवर्ष सम्बन्धी सब आज्ञाएँ भारत-मंत्री की सलाह से जारी की जाती है।

† मदरास से आन्ध्र प्रान्त को अलग करने की माँग है, और मध्यप्रान्त और बरार के प्रान्त को महाकौशल और विदर्भ प्रान्तों मे विभक्त करने का प्रस्ताव है।

सरकार को गवर्नर, मंत्री, हाईकोर्ट, व्यवस्थापक सभा, विश्व-विद्यालय आदि सभी बातों की व्यवस्था करनी होती है। ये सब कार्य व्यय-साध्य हैं। आवश्यकता है कि नवीन प्रान्तों की सृष्टि के साथ शासन-व्यय का परिमाण कम किया जाय; तथा सरकारी आय अधिकतर राष्ट्रोत्थानकारी कार्यों में लगायी जाय, जिससे जनता की आर्थिक और नैतिक दशा में सुधार हो।

प्रान्तों का शासन; गवर्नरों की नियुक्ति, वेतन और पद—गवर्नरों के प्रान्तों के शासन में गवर्नरों का पद मुख्य है। उन्हीं पर प्रान्तों के शासन, शान्ति सुव्यवस्था तथा विविध प्रकार की उन्नति का दायित्व है। इनकी नियुक्ति सम्राट् द्वारा होती है। इन्हें उसके कुछ निर्धारित अधिकार प्राप्त होते हैं, ये उसी की ओर से काम करते हैं। इनके नाम सम्राट् एक आदेश पत्र जारी करता है। गवर्नर इस आदेश-पत्र के अनुसार कार्य करता है, परन्तु उसके किसी कार्य के औचित्य का प्रश्न इस आधार पर नहीं उठाया जा सकता कि वह कार्य आदेश-पत्र की सूचनाओं के अनुसार नहीं है। आदेश-पत्रों के सम्बन्ध में विशेष आगे लिखा जायगा।

गवर्नरों के प्रान्तों का शासन गवर्नरों के नाम से होता है। वे इस कार्य को अपने विविध अधीन कर्मचारियों द्वारा कराता है। प्रत्येक प्रान्त का शासन-क्षेत्र उन सब विषयों तक होता है, जिनके सम्बन्ध में प्रांतीय व्यवस्थापक मंडल को क़ानून बनाने का अधिकार होता है, (यह विषय-सूची आगे नवें परिच्छेद में दी गयी है)। सब प्रांतों के गवर्नरों का वार्षिक वेतन विधान

द्वारा निर्धारित है। ❀ वेतन के अतिरिक्त, उन्हें भत्ता आदि भी इतना काफी दिया जाता है, कि वे अपने पद का कार्य सुविधा और मान मर्यादा पूर्वक कर सकें अर्थात उनकी शान-शौकत भली भांति बनी रहे।

बङ्गाल, बम्बई और मद्रास के गवर्नर अन्य गवर्नरों से ऊंचे दर्जे के माने जाते हैं। ये इङ्गलैण्ड के राजनीतिज्ञों में से, भारत-मंत्री की सिफारिश से नियत किये जाते हैं। अन्य प्रान्तों के गवर्नर, गवर्नर-जनरल के परामर्श से नियत हो जाते हैं; अनेक बार सिविल सर्विस के कर्मचारियों में से ही स्थायी या स्थानापन्न गवर्नर बनाये जाते रहे हैं। अब प्रान्तीय स्वराज्य के साथ ऐसी बात असंगत और असह्य है। मंत्रियों की अधीनता में काम करनेवाला राजकर्मचारी, एक दम उनके ऊपर आ जाय, इसका अनौचित्य स्पष्ट ही है। विशेष ध्यान देने की बात यह है कि प्रान्तीय शासन का उत्तरदायित्व, साधारण स्थिति में, मंत्रियों पर है, अतः उनकी इच्छा के विरुद्ध किसी को गवर्नर नियुक्त करना प्रान्तीय स्वराज्य की भावना के विरुद्ध है, और सिविल सर्विस वालों की तो शिक्षा-दीक्षा तथा व्यवहार उन्हें इस पद के सर्वथा अयोग्य कर देती है। उनका दृष्टिकोण अनुदार होता है, वे 'जनता के आदमी' नहीं होते, वे शासनयन्त्र के पुर्जे का ही काम अच्छी तरह दे सकते हैं।

❀मदरास	१,२०,०००)	पंजाब	१,००,०००)	पश्चिमोत्तर—	
बम्बई	"	बिहार	"	सीमाप्रान्त	६६,०००)
बंगाल	"	मध्यप्रान्त-बरार	७२,०००)	उड़ीसा	"
संयुक्तप्रान्त	"	आसाम	"	सिंध	"

आदेश-पत्र— आदेश-पत्र (इन्स्ट्रूमेंट-आफ-इन्स्ट्रक्शन) का उल्लेख ऊपर हुआ है। यह सम्राट् की ओर से जारी किया जाता है। इसमें यह लिखा रहता है कि गवर्नर को अपने शासन-कार्य के संपादन में किन-किन सिद्धान्तों का ध्यान रखना चाहिए, और अपने अधिकारों का प्रयोग किस प्रकार करना चाहिए। गवर्नर अपने प्रांत में सम्राट्-प्रतिनिधि की हैसियत से कार्य करता है, आदेश-पत्र के द्वारा सम्राट् उसे अपने नियंत्रण में रख सकता है। ब्रिटिश सरकार चाहे तो शासन विधान में परिवर्तन किये बिना ही, आदेश-पत्रों के द्वारा प्रांतों में उत्तरदायी शासन का प्रयोग बढ़ा सकती है। उदाहरणार्थ सम्राट् यह आदेश कर सकता है कि गवनर अपने प्रांत के व्यवस्थापक मंडल और मंत्रिमंडल की इच्छानुसार ही कार्य करें। हाँ, नवीन शासन-विधान के अनुसार, प्रत्येक आदेश-पत्र को जारी करने के लिए पार्लिमेंट की दोनों सभाओं की स्वीकृति लेनी होती है, इससे यह कार्य पहले की तरह सरल नहीं रहा।

सब प्रान्तों के गवर्नरों के आदेश-पत्रों की मुख्य-मुख्य साधारण बातें प्रायः समान ही हैं। उनमें से कुछ निम्न लिखित हैं :—

(क) गवर्नर अपने प्रान्त के हाईकोर्ट के चीफ़ जस्टिस या अन्य जज के सामने राजभक्ति के अतिरिक्त, इस बात की शपथ ले कि वह अपने पद का कार्य ठीक तरह से संचालन करेगा, और निष्पक्षता तथा न्याय पूर्वक शासन करेगा।

(ख) गवर्नर प्रत्येक मंत्री को इस आशय की शपथ खिलावे

कि वह अपने पद का कार्य अच्छी तरह करेगा, और सरकारी रहस्यों को गुप्त रखेगा।

(ग) गवर्नर प्रत्येक वर्ग और धर्म के अनुयायियों, विशेषतया अल्पसंख्यक जातियों के हितों का ध्यान रखे, और सबका सहयोग प्राप्त करने का प्रयत्न करे।

गवर्नर के अधिकार, प्रान्तीय विषयों का प्रबन्ध—यद्यपि नवीन शासन-विधान का उद्देश्य प्रान्तीय स्वराज्य की स्थापना घोषित किया गया है, गवर्नर अनेक अधिकारों से सुसज्जित है। वे अधिकार तीन भागों में विभक्त किये जा सकते हैं :—(१) शासन सम्बन्धी अधिकार। (२) कानून-निर्माण सम्बन्धी अधिकार। (३) आर्थिक अधिकार।

यहाँ केवल शासन सम्बन्धी अधिकारों का ही विचार किया जाता है, (अन्य अधिकार प्रान्तीय व्यवस्थापक मडल की कार्य-पद्धति के अन्तर्गत बताये जायँगे)। कुछ प्रांतीय विषयों के सम्बन्ध में गवर्नर अपने विवेक या व्यक्तिगत निर्णय के अनुसार कार्य कर सकता है। उन्हें छोड़कर शेष विषयों में वह अपने मंत्रिमंडल की सहायता या परामर्श से काम करता है। किसी विषय में गवर्नर अपने विवेक या व्यक्तिगत निर्णय के अनुसार कार्य कर सकता है, या नहीं, इसके सम्बन्ध में स्वयं गवर्नर का किया हुआ फैसला ही अंतिम माना जाता है।

विशेषतया निम्नलिखित विषयों में गवर्नर अपने विवेक के अनुसार कार्रवाई कर सकता है, अर्थात् इनमें उसे अपने मंत्रिमंडल से परामर्श लेने की कोई आवश्यकता नहीं है—

(क) मंत्रियों की नियुक्ति, तथा बर्खास्तगी (ख) मंत्रि-मण्डल का सभापति होना। (ग) प्रान्तीय सरकार के कार्य-संचालन सम्बन्धी नियम बनाना। विशेषतया निम्न-लिखित विषयों में गवर्नर अपने व्यक्तिगत निर्णय के अनुसार कार्य कर सकता है, अर्थात् इन विषयों में गवर्नर मंत्रिमंडल से परामर्श लेगा, परन्तु उनसे सहमत न होने की दशा में वह अपने निर्णय के अनुसार कार्य कर सकता है:—(क) जिन विषयों में गवर्नर का विशेष उत्तरदायित्व है। (ख) पुलिस सम्बन्धी नियमों की व्यवस्था। (ग) आतङ्कवाद का दमन।

जो कार्य गवर्नर अपने विवेक या व्यक्तिगत निर्णय के अनुसार कर सकता है, उनके सम्बन्ध में वह गवर्नर-जनरल के नियन्त्रण में रहता है, और गवर्नर-जनरल द्वारा समय-समय पर दी हुई सूचनाओं के अनुसार व्यवहार करता है।* ये सूचनाएँ गवर्नर के नाम जारी किये हुए आदेश-पत्र के अनुसार ही होती हैं। गवर्नर के, उपर्युक्त व्यवस्था के विपरीत किये हुए कार्य के भी औचित्य का प्रश्न नहीं उठाया जा सकता, इससे गवर्नर की शक्ति का अनुमान किया जा सकता है।

गवर्नर का विशेष उत्तरदायित्व—गवर्नर निम्नलिखित विषयों के लिए विशेष रूप से उत्तरदायी होता है—यह उत्तर-दायित्व ब्रिटिश सरकार के प्रति है, भारतीय जनता अर्थात् उस

* गवर्नर-जनरल का यह नियन्त्रण उन कार्यों में से है, जो विधान के अनुसार, वह अपने विवेक से करता है, और जिनके सम्बन्ध में उस पर भारत-मंत्री का नियन्त्रण रहता है।

के प्रतिनिधियों के प्रति नहीं। जब कभी उसे अपने इस उत्तर-दायित्व पर आघात पहुँचता हुआ प्रतीत होता है, तो वह अपने व्यक्तिगत निर्णय के अनुसार (मन्त्रियों की सलाह के विरुद्ध भी) कार्य कर सकता है।

१—प्रान्त या उसके किसी भाग के शान्ति-भंग का निवारण।

चाहे जिस प्रकार से शान्ति-भंग की आशंका हो, गवर्नर उसके निवारणार्थ, किसी भी सरकारी विभाग को स्वेच्छानुसार आदेश कर सकता है।

२—अल्पसंख्यकों के उचित हितों की रक्षा।

यहाँ 'अल्पसंख्यकों' में मुसलमान, ईसाई, दलित जातियाँ (हरिजन), सिक्ख, एंग्लो इण्डियन आदि माने जाते हैं, और उनके 'उचित हितों' के नाम पर अनेक बुराइयाँ होती हैं। इस सम्बन्ध में राष्ट्र-संघ द्वारा निर्धारित पद्धति विचारणीय है, जिसे योरप के बहुत से राष्ट्रों ने मान्य किया है। उसके अनुसार अल्पसंख्यक समाज वह है जो (१) भाषा, जाति और सम्प्रदाय में बहुसंख्यक समाज से मूलतः भिन्न हो, और (२) उसकी जनसंख्या काफ़ी हो—२०, २५ प्रति सैकड़ा से कम न हो, और यह संख्या भी इस तरह बटी होनी चाहिए कि वह दिये जाने वाले 'संरक्षण' का उपयोग कर सके। फिर, संरक्षण भी संस्कृति, भाषा, धर्म, और जातिगत विशेषताओं के सम्बन्ध में ही दिया जाता है, निर्वाचन या प्रतिनिधित्व आदि राजनैतिक विषयों में नहीं। संख्या सम्बन्धी उपर्युक्त कसौटी पर पंजाब में सिक्ख और बिहार, संयुक्तप्रांत, मद्रास, और मध्यप्रांत में मुसलमान अल्पसंख्यक नहीं हैं। बंगाल और पंजाब में तो हिन्दू ही अल्पसंख्यक हैं। भारतवर्ष में अल्प-संख्यक समाज का प्रश्न इसी तरह हल होना चाहिए।

३—वर्तमान तथा भूत-पूर्व सरकारी कर्मचारियों (सिविलियनों, आई० सी० एस० आदि), और उनके आश्रितों के उन

अधिकारों और उचित हितों की रक्षा का ध्यान रखना, जो सन् १९३५ ई० के विधान के अनुसार उन्हें प्राप्त हैं।

गवर्नर को यह विशेषाधिकार प्राप्त होने से इन कर्मचारियों पर भारतीय मंत्रियों का प्रभाव या अधिकार कम रह जाना स्वाभाविक ही है।

४—प्रान्तीय क़ानूनों के सम्बन्ध में, इस बात की व्यवस्था करना कि व्यापारिक और जातिगत विषयों के भेद-भाव का, या पक्षपात-मूलक, क़ानून न बने।

भारतवर्ष में, ब्रिटिश साम्राज्यान्तर्गत अन्य देशों के निवासियों, विशेषतया अंगरेज़ों को कितनी व्यापारिक, औद्योगिक तथा अन्य सुविधाएँ और रियायतें प्राप्त हैं, यह सर्वविदित है। अब इस व्यवस्था के अनुसार भविष्य में भी उनमें कमी नहीं हो सकती, चाहे उनसे भारतीयों के व्यापार और उद्योग आदि सम्बन्धी हितों की कितनी ही उपेक्षा क्यों न हो।

५—अंशतः पृथक् ('एक्सक्लूडेड') घोषित किये हुए क्षेत्रों के शासन और शान्ति का प्रबन्ध।

भारत-मन्त्री द्वारा पार्लिमेंट में मसविदा उपस्थित किये जाने पर, सम्राट् की आज्ञा से किसी प्रान्त का कोई क्षेत्र पृथक् या अंशतः पृथक् घोषित किया जाता है। ब्रिटिश भारत के प्रान्तों में कितने ही क्षेत्र ऐसे हैं। इनमें अनेक स्थानों में असीम खनिज या अन्य प्रकार की सम्पत्ति और सुन्दर प्राकृतिक दृश्य हैं। पृथक् किये हुए क्षेत्रों का शासन-प्रबन्ध गवर्नर के हाथ में रहता है, और अंशतः पृथक् क्षेत्रों में, उसका विशेष उत्तरदायित्व होता है। इन क्षेत्रों में पुलिस आदि के अधिकारियों का ही प्रभुत्व होता है, नागरिकों के अधिकार अत्यल्प होते हैं; उन्हें अपने प्रान्त के बन्धुओं के साथ समानता से रहने और विकसित होने का अवसर नहीं दिया जाता।

६—देशी राज्यों के अधिकारों तथा उनके नरेशों के अधिकारों और मान-मर्यादा की रक्षा करना।

गवर्नर के इस उत्तरदायित्व के कारण ऐसी सम्भावना रहती है कि देशी नरेश भारतीय मंत्रियों (तथा भारतीय जनता) की उपेक्षा कर जैसे-बने गवर्नर के कृपा-पात्र बनने का प्रयत्न करें, और इस लिए भारतीय हितों की अवहेलना कर, यथा-सम्भव ब्रिटिश हितों की रक्षा करें।

७—गवर्नर-जनरल की, अपने विवेक से, क़ानून के अनुसार निकाली हुई आज्ञाओं और हिदायतों के पालन किये जाने की व्यवस्था करना।

उपर्युक्त उत्तरदायित्व तो सब गवर्नरों के हैं। कुछ गवर्नरों के, इनके अतिरिक्त अन्य उत्तरदायित्व भी हैं, उदाहरणवत, मध्य-प्रांत और बरार के गवर्नर पर इस विषय का भी उत्तरदायित्व है कि उस प्रांत से होने वाली आय का उचित अंश बरार में अथवा बरार के लिए खर्च हो। सिंध के गवर्नर पर सक्खर बाँध के उचित प्रबन्ध का भी विशेष उत्तरदायित्व है।

पुलिस सम्बन्धी नियमों की व्यवस्था—गवर्नर अपने व्यक्तिगत निर्णय के अनुसार मुल्की या फौजी पुलिस के सम्बन्ध में नियम बनाता है, उन्हें स्वीकार करता है, तथा उनमें संशोधन करता है, एवं आज्ञाएँ जारी करता है; अर्थात् इस विषय में उसे मंत्रियों के परामर्श के अनुसार कार्य करना आवश्यक नहीं है। पहले कहा जा चुका है कि गवर्नर शांति-भंग-निवारण तथा सरकारी कर्मचारियों के हितों की रक्षा के लिए उत्तरदायी है। उपर्युक्त व्यवस्था के अनुसार पुलिस-विभाग का नियंत्रण बहुत-कुछ उसके हाथ में रहता है।

आतङ्कवाद का दमन—यदि किसी प्रांत के गवर्नर को

यह प्रतीत हो कि प्रांत की शांति ऐसे हिंसात्मक कार्यों से खतरे में डाली जा रही है, जो गवर्नर की सम्मति में कानून द्वारा स्थापित सरकार को उलटनेवाले हैं, तो वह यह आदेश कर सकता है कि वह अमुक कार्य अपने हाथ में लेता है। फिर उसे उस कार्य को अपने विवेक से करने का अधिकार हो जायगा, और जब तक वह दूसरा आदेश जारी न करे, वह उक्त अधिकार का प्रयोग करता रहेगा। ऐसा आदेश जारी करते समय गवर्नर एक अफ़सर को यह अधिकार दे सकता है कि वह प्रान्तीय व्यवस्थापक मण्डल की सभा में भाषण दे, और उसकी कार्रवाई में भाग ले। यह अफ़सर व्यवस्थापक मंडल की दोनों या एक सभा में, दोनों सभाओं की संयुक्त बैठक में, तथा उनकी उस कमेटी में, जिसमें वह गवर्नर द्वारा मेम्बर नामजद किया गया हो, भाषण दे सकता है, और उनकी कार्रवाई में भाग ले सकता है; हाँ, उसे मत देने का अधिकार नहीं होता।

गवर्नर अपने विवेक के अनुसार इस बात के लिए नियम बनाता है कि उपर्युक्त अपराधों का पता मिलने के साधन या कागज़ात प्रान्त के किसी पुलिस-अफसर द्वारा पुलिस के किसी अन्य अफ़सर को, पुलिस इंस्पेक्टर-जनरल या कमिश्नर की आज्ञा के बिना न बताये जायँ, तथा सरकारी नौकरी करनेवाले किसी व्यक्ति द्वारा किसी अन्य व्यक्ति को गवर्नर की आज्ञा बिना न बताये जायँ। इसका अर्थ यह है कि आतंकवाद को दमन करने के लिए खुफिया पुलिस पर मंत्रियों का अधिकार नहीं; गवर्नर और पुलिस-इन्सपेक्टर-जनरल या कमिश्नर को ही

(जो मंत्रियों के अधीन कहे जाते हैं) गुप्त कागजात संबन्धी सब अधिकार हैं।

आतंकवाद के दमन के लिए दो बातें उपयोगी हुआ करती हैं, जनता का राजनैतिक असन्तोष हटाने वाले शासन-सुधार करना, तथा देश की आर्थिक उन्नति करते हुए घातक बेकारी को मिटाना। शासकों को मन-चाहे अधिकार देने से आतंकवाद मिटाने की आशा पूरी नहीं होती।

कार्य-संचालन सम्बन्धी नियम-निर्माण—प्रान्तीय सरकार का सब शासन-कार्य गवर्नर के नाम से सूचित किया जाता है। जो कार्य गवर्नर को अपने विवेक से करने की आवश्यकता नहीं होता, उसके सुविधा-पूर्वक सम्पादन के लिए तथा मंत्रियों को विविध कार्य सौंपने के लिए वह आवश्यक नियम बनाता है। इन नियमों में इस बात की व्यवस्था रहती है कि मन्त्री तथा सेक्रेटरी गवर्नर को प्रांतीय सरकार के कार्य सम्बन्धी ऐसी समस्त सूचना दें, जो नियमों में उल्लिखित हो, या जिसका दिया जाना गवर्नर आवश्यक समझे; विशेषतया, मन्त्री गवर्नर को, और सेक्रेटरी सम्बन्धित मंत्री एवं गवर्नर को, उस विषय की सूचना दें, जो गवर्नर के विचाराधीन हो, और जिसमें उसके विशेष उत्तरदायित्व का सम्बन्ध हो, या आनेवाला हो। इस प्रसङ्ग में गवर्नर अपने मंत्रियों का परामर्श लेने के बाद, अपने विवेक से कार्य करता है।

इससे स्पष्ट है कि गवर्नर का विविध विभागों के सेक्रेटरियों से जो सम्बन्ध होता है वह मंत्रियों के द्वारा न होकर सीधा भी हो सकता है। और, वह किसी भी विषय की जानकारी के लिए

उन्हें आदेश कर सकता है। इस प्रकार विधान के अनुसार, केवल कुछ विशेष विषयों में ही नहीं, साधारण रोज़मर्रा के शासन कार्य में भी गवर्नर का पूरा नियंत्रण और अधिकार हो सकता है।*

गवर्नर के अधिकारों की अधिकता—पूर्वोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि गवर्नर के शासन-विषयक विशेष अधिकार प्रायः अमर्यादित है (क़ानून-निर्माण तथा आय-व्यय सम्बन्धी अधिकारों का विचार आगे किया जायगा)। गवर्नर के, ब्रिटिश सरकार के अधीन और उसी के प्रति उत्तरदायी होते हुए, यह कहना दुस्साहस है कि नवीन विधान से प्रान्तीय स्वराज्य की स्थापना की गयी है।

प्रान्तीय स्वराज्य का अर्थ है पूर्ण उत्तरदायित्व की स्थापना, अर्थात् शासन-शक्ति का, जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियों के हाथ में आजाना; अथवा, गवर्नर का व्यवस्थापक मंडल के प्रति उत्तरदायी मंत्रियों के मतानुसार कार्य करना। यह बात इस विधान में नहीं है। पुनः प्रान्तों के शासन का सूत्र-संचालन पहले प्रायः भारत की केन्द्रीय सरकार द्वारा होता था; उसके द्वारा कुछ अधिकार प्रान्तीय सरकारों को दे दिये जाते थे। अब प्रान्तीय सरकारें केन्द्रीय सरकार के अधीन नहीं हैं, गवर्नरों के अधिकार बहुत बढ़ गये हैं। परन्तु सर्वसाधारण भारतीय जनता के

* गवर्नर-जनरल द्वारा ऐसा आश्वासन दिया जाने पर ही कि गवर्नर साधारण रोजमर्रा के शासन-प्रबन्ध में हस्तक्षेप न करेंगे, कांग्रेसी नेताओं ने अपने बहुमतवाले प्रान्तों में मंत्रिमंडल निर्माण किया था।

लिए तो स्थिति पूर्ववत ही है। पहले भी ब्रिटिश सरकार का ही शासन था, और अब भी उसी का है। यह उसी के नियुक्त किये हुए, तथा उसके प्रति उत्तरदायी गवर्नर की इच्छा और विवेक निर्भर है कि यहाँ जनता अपनी राजनैतिक स्वतन्त्रता का कहाँ तक उपयोग करे। यदि गवर्नर अपने विशेष अधिकारों का, जो कि असीम है, उपयोग न करें तो जनता को प्रान्तीय स्वराज्य की कुछ अंश में प्राप्ति हो सकती है। इसके विपरीत, यदि वे विशेषाधिकारों से काम लें, जैसा कि विधान के अनुसार वह ले सकते हैं, (और लेते हैं) तो यह विधान जनता को वर्तमान अवस्था से भी पीछे ले जानेवाला है।

विशेष वक्तव्य—ऊपर हमने गवर्नर के उन्हीं अधिकारों के विषय में लिखा है, जो उसे विधान के अमल में आते हुए भी प्राप्त होते हैं। परन्तु विशेष दशाओं में वह विधान को स्थगित करके शासन सम्बन्धी अन्य अधिकारों को भी ग्रहण कर सकता है। इसके सम्बन्ध में आवश्यक व्योरेवार बातें आगे ग्यारहवें परिच्छेद में कही जायँगी।

सन् १९३९ से, पुस्तक छपते समय (१९४३) तक, पाँच प्रान्तों (संयुक्तप्रान्त, बिहार, मध्यप्रान्त, बम्बई और मदरास) में विधान स्थगित है, और गवर्नर ही सब शासन कार्य चला रहे हैं।



नवाँ परिच्छेद

प्रान्तीय सरकार

(२)

मंत्रिमंडल

पिछले परिच्छेद में गवर्नर के विषय में लिखा गया है। गवर्नर अपने प्रान्त की सरकार का एक आवश्यक अंग है, परन्तु उत्तरदायी शासन की अवस्था में उसके अधिकार नाम-मात्र के होते हैं; वास्तविक सत्ता मंत्रियों के हाथ में रहती है। इस बात को कुछ और स्पष्ट करके हम भारतवर्ष के प्रान्तों के मंत्रियों के सम्बन्ध में विचार करेंगे।

मंत्री और उत्तरदायी शासन—सन् १९३५ ई० के विधान का उद्देश्य प्रान्तों में स्वराज्य या उत्तरदायी शासन स्थापित करना है। इसका व्यावहारिक अर्थ यह है, कि गवर्नर सब शासन-कार्य मंत्रियों के परामर्श के अनुसार करे, और मंत्री प्रांत की जनता के प्रतिनिधियों अर्थात् प्रांतीय व्यवस्थापक मंडल के प्रति उत्तरदायी हों। शासन सम्बन्धी कोई कार्य चाहे गवर्नर के नाम से ही हो, उत्तरदायी शासनपद्धति में वह उसे अपनी जिम्मेवरी पर नहीं करता। केवल दो विशेष दशाएँ ऐसी हैं, जब गवर्नर मंत्रियों के परामर्श के विरुद्ध अपने अधिकार का उपयोग करता है—(१) जब व्यवस्थापक मंडल यह प्रस्ताव

पास करदे कि उसका मंत्रियों में विश्वास नहीं है, और (२) जब गवर्नर को यह निश्चय होजाय कि यद्यपि व्यवस्थापक मंडल का मन्त्रियों में विश्वास है, पर स्वयं व्यवस्थापक मंडल लोकमत का सूचक नहीं है, अर्थात् वह ऐसा नहीं है, जिसका प्रान्त की जनता साथ देती हो।

पहली दशा में मंत्रियों को त्यागपत्र देना पड़ता है और उनकी जगह व्यवस्थापक मंडल के वे सदस्य नियुक्त किये जाते हैं, जिनका समर्थन व्यवस्थापक मंडल के बहुमत द्वारा होता हो। परन्तु यदि मंत्रियों को यह विश्वास हो कि जनता उनके साथ है तो वे गवर्नर को व्यवस्थापक मंडल भंग करके उसका नया निर्वाचन कराने के लिए कह सकते हैं। नये निर्वाचन से इस बात का फैसला हो जाता है कि मंत्रियों का कथन कहाँ तक ठीक है। यदि नये निर्वाचन के बाद व्यवस्थापक मंडल में मंत्रियों के समर्थकों का बहुमत हो तो इसका अर्थ यह है कि प्रान्त मंत्रियों के साथ है। ऐसी स्थिति में गवर्नर को अपने पुराने मंत्रियों के परामर्श के अनुसार कार्य करना होता है। यदि नये चुनाव के बाद व्यवस्थापक मण्डल में बहुमत मंत्रियों के समर्थकों का नहीं होता, वरन् उनके विरोधियों का होता है, तो इसका अर्थ यह है कि जनता मंत्रियों के साथ नहीं है। ऐसी परिस्थिति में पुराने मंत्रियों को त्यागपत्र देना होता है, और उनकी जगह ऐसे व्यक्ति मंत्री नियुक्त किये जाते हैं, जिनका व्यवस्थापक मंडल में बहुमत हो; और गवर्नर को इन नये मंत्रियों के परामर्श के अनुसार शासन-कार्य करना अनिवार्य हो जाता है।

दूसरी दशा में भी व्यवस्थापक मंडल भंग करके तथा नया निर्वाचन करके इस बात का निर्णय किया जाता है कि वास्तव में प्रान्त की जनता मंत्रियो का साथ देनेवाली है, या नहीं। निदान, उत्तरदायी शासन में गवर्नर को सदैव ऐसे मंत्रियों के परामर्श के अनुसार काम करना होता है, जिन्हे व्यवस्थापक मंडल के बहुमत का समर्थन प्राप्त हो; जिनका प्रान्त की जनता साथ देती हो। इससे स्पष्ट है कि उत्तरदायी शासनपद्धति में मंत्रियों का स्थान विशेष महत्वपूर्ण होता है।

मंत्रिमंडल का निर्माण—प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडल का निर्वाचन होजाने के बाद गवर्नर उस दल के नेता को मंत्रिमंडल बनाने का निमंत्रण देता है, जिसका व्यवस्थापक सभा में बहुमत हो। जब वह नेता मंत्रिमंडल बनाना स्वीकार कर लेता है तो उस से मंत्रियों के नाम देने के लिए कहा जाता है। मंत्रिमंडल बनानेवाला व्यक्ति प्रधान मंत्री (प्राइम-मिनिस्टर या प्रिमीयर) कहलाता है। मंत्रियों के काम का बटवारा किस प्रकार हो, इसका निर्णय गवर्नर प्रायः प्रधान मंत्री के परामर्श से करता है। वैसे विधान के अनुसार वह अपने विवेक से भी कर सकता है। जिस मंत्री को जो मुख्य कार्य सौंपा जाता है, उसे उसके अनुसार ही सम्बोधित किया जाता है, यथा—अर्थ-मंत्री, शिक्षा-मंत्री, आदि।

विधान के अनुसार किसी प्रान्त के मंत्रियों की संख्या निर्धारित नहीं है। यह आवश्यकतानुसार घट-बढ़ सकती है। मंत्रियों की नियुक्ति गवर्नर द्वारा, उसके विवेक के अनुसार होती है; अर्थात् इस कार्य में उसे किसी का परामर्श लेना आवश्यक

नहीं। साधारण प्रथा यही है कि गवर्नर उस दल के नेता के परामर्श के अनुसार ही मंत्रिमंडल बनाये, जिसका व्यवस्थापक सभा में बहुमत हो। जब इस प्रथा की अवहेलना की जाती है, और अल्पसंख्यक दल के नेता को मंत्रिमंडल बनाने का अवसर दिया जाता है तो वह मन्त्रिमण्डल स्थायी नहीं हो पाता, जब तक कि उसे सहयोग देनेवाले दलों की शक्ति पर्याप्त न हो, अर्थात् व्यवस्थापक सभा के इन सब दलों के सदस्य मिल कर बहुमत दल के सदस्यों से काफी अधिक न हों।

मन्त्री उन व्यक्तियों में से हो सकते हैं, जो प्रान्त के व्यवस्थापक मण्डल के सदस्य हों। अगर कोई मन्त्री लगातार छः महीने तक व्यवस्थापक मण्डल का सदस्य न हो तो उसे अपने पद से पृथक् होना पड़ता है। कभी-कभी ऐसा होता है कि प्रधान मन्त्री किसी ऐसे व्यक्ति को मंत्रिमण्डल में लेना चाहता है, जो व्यवस्थापक मण्डल का सदस्य निर्वाचित न हुआ हो। ऐसी दशा में उस व्यक्ति को मन्त्री तो बना लिया जाता है, परन्तु प्रधान मन्त्री अपने दल के किसी प्रमुख सदस्य से त्यागपत्र दिलवा कर उसकी जगह उस मन्त्री को निर्वाचित कराने का प्रयत्न करता है। यदि यह कार्य छः महीने तक न हो तो इस मन्त्री को त्यागपत्र दे देना होता है।

सम्मिलित या गंगा-जमुनी मंत्रिमण्डल—कभी कभी ऐसा होता है कि व्यवस्थापक सभा में किसी एक दल का स्पष्ट बहुमत नहीं होता। ऐसी दशा में, मंत्रिमण्डल का निर्माण करने के लिए गवर्नर उस दल के नेता को निमंत्रित करता है, जो दूसरे

दलों के सहयोग से (बहुमत प्राप्त करके) मन्त्रिमण्डल बना सके। इस प्रकार बनाये हुए मन्त्रिमण्डल को सम्मिलित मन्त्रिमण्डल या गंगा-जमुनी मन्त्रिमण्डल (कोअलिशन मिनिस्टरी) कहते हैं। ऐसे मन्त्रिमण्डल के सदस्यों के उद्देश्यों में भिन्नता होने के कारण उसकी प्रायः कोई स्थिर नीति नहीं रहती।

मंत्रिमंडल-निर्माण सम्बन्धी वैधानिक संकट—मंत्रिमण्डल के निर्माण सम्बन्धी एक और समस्या विचारणीय है। कल्पना करो, व्यवस्थापक सभा में एक दल का स्वतंत्र बहुमत है, अर्थात् उसके सदस्यों की संख्या अन्य सब दलों की संख्या के योग से अधिक है। गवर्नर इस बहुमत वाले दल के नेता को मंत्रिमण्डल बनाने के लिए आमंत्रित करता है, परन्तु यह नेता मंत्रिमण्डल बनाने से इनकार करता है। और, अल्प-संख्यक दलों के नेता भी या तो मंत्रिमण्डल बनाते ही नहीं, अथवा यदि बनाते हैं तो वे मंत्रिमंडल विशेष समय तक रहते नहीं। इस समस्या का हल कैसे हो ? इसके लिए विचार करना चाहिए कि बहुमत दल का नेता मंत्रिमण्डल बनाना अस्वीकार क्यों करता है। अवश्य ही, इसका कारण यह होगा कि उसकी दृष्टि में, और इसलिए अधिकांश जनता की दृष्टि में, शासन-विधान असंतोषप्रद है, ऐसी दशा में विधान को बदलना, और उसमें यथेष्ट सुधार करना ही एक मात्र सफल उपाय है।

मंत्रिमंडल से किसी मन्त्री का पृथक्करण—यदि प्रधान मंत्री किसी मंत्री को मन्त्रिमण्डल से पृथक् करना चाहे तो वह उसे त्यागपत्र देने की प्रेरणा करता है। यदि वह

इसमें सफल होजाय, अर्थात् वह मंत्री अस्तीफा दे दे तो मामला निपट जाता है। परन्तु यदि वह मन्त्री अपने पद का परित्याग न करे तो प्रधान मन्त्री अपना तथा अपने मन्त्रिमण्डल का त्यागपत्र देकर नया मंत्रिमण्डल ऐसा बनाता है; जिसमें उपर्युक्त मन्त्री न रहे।

मन्त्रिमण्डल का सभापतित्व—मन्त्रिमण्डल अपने कार्य के लिए संयुक्त रूप से उत्तरदायी माना जाता है, इस दृष्टि से उसका सभापति वास्तव में प्रधान मन्त्री होना चाहिए, जिससे प्रत्येक मन्त्री उसको मुख्य माने। परन्तु विधान के अनुसार गवर्नर, अपने विवेक से,सभापति होता है। इससे मंत्रिमण्डल में संयुक्त उत्तरदायित्व की भावना का उदय होने में बाधा उपस्थित होती है।

मंत्रियों का वेतन—मंत्रियों का वेतन प्रान्तीय व्यवस्थापक मण्डल समय-समय पर निर्धारित करता है, और जब तक वह निर्धारित न करे, गवर्नर उसका निश्चय करता है, परन्तु किसी मन्त्री का वेतन उसके कार्य-काल में बदला नहीं जाता। सन् १९३७-३९ में आठ प्रान्तों में कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल थे। इन प्रान्तों में मंत्रियों का वेतन पांच-पांचसौ रुपये मासिक था। अन्य प्रांतों में वेतन अधिक था, और है।* कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल बनने से पूर्व इन प्रान्तों में भी मन्त्रियों का वेतन बहुत अधिक था।

* कुछ लोगों की यह धारणा है कि कांग्रेसी प्रान्तों में यद्यपि मंत्रियों का वेतन कम था, उनका कुल खर्च बहुत अधिक होता था। परन्तु हिसाब लगाने से यह बात गलत साबित होती है।

मंत्रियों के अधिकार—सन् १९३५ का विधान, प्रांतीय शासन के सम्बन्ध में, गवर्नरों के अधिकारों से भरा हुआ है। उन्हीं के साथ मन्त्रियों के अधिकारों का कुछ उल्लेख मात्र है। यदि वास्तव में यहाँ प्रांतीय स्वराज्य की स्थापना की जाती, तो यह बात न होती; उस दशा में तो प्रांतीयशासन के सूत्र-सचालक और कर्ता-धर्ता सब कुछ मन्त्री ही होते, और गवर्नर उनकी बात पर मोहर लगानेवाला होता। परन्तु वर्तमान दशा में गवर्नर अनेक महत्वपूर्ण विषयों में मन्त्रियों का परामर्श मानने को बाध्य नहीं है। तथा गवर्नर को कार्य-सचालन सम्बन्धी नियम-निर्माण का जो अधिकार है, उसके अनुसार सरकारी (सिविलियन) सेक्रेटरियों को सीधे गवर्नर के पास पहुँचने का, और मन्त्रियों के कार्य में बाधक होने का अवसर मिलता है।

कई बड़े-बड़े सरकारी विभागों के प्रधान अधिकारी अखिल भारतीय सर्विस के होते हैं। इनकी भर्ती भारतमन्त्री द्वारा होने के कारण, मन्त्रियों का इन पर यथेष्ट नियंत्रण नहीं रहता।

पुनः शासन सम्बन्धी किसी विषय में आज्ञा चाहे गवर्नर दे, या मन्त्री अथवा सेक्रेटरी दे, वह आज्ञा प्रत्येक दशा में गवर्नर के नाम से ही दी जाती है। यदि मन्त्री अपने प्रांत की जनता की माँग का विचार करके, राजनैतिक बंदियों को मुक्त करने की, अथवा किसानों पर मालगुज़ारी का भार कम किये जाने की, आज्ञा देते हैं, तो वह आज्ञा गवर्नर के नाम से जारी होने के कारण, जनता को अपने मन्त्रियों के उपयोगी कार्यों का समुचित परिचय नहीं मिलता, उसकी दृष्टि में तो गवर्नर का ही महत्व

बना रहता है। इन बातों से, तथा गवर्नर के विविध अधिकारों से, मन्त्रियों के प्रभाव हीन होने में कुछ सन्देह नहीं रहता।

पार्लिमेंटरी सेक्रेटरी—कई प्रांतों में मन्त्रियों के सहायक नियुक्त है; इन्हें पार्लिमेंटरी सेक्रेटरी कहते हैं। ये मन्त्रियों को, उनके, विशेषतया व्यवस्था सम्बन्धी कार्यों में आवश्यकतानुसार सहायता देते हैं। इनके वेतन और भत्ता के लिए प्रति वर्ष प्रांतीय व्यवस्थापक सभा की स्वीकृति ली जाती है। क्योंकि इन पदों पर व्यवस्थापक सभा के सदस्यों की ही नियुक्ति की जाती है, इस लिए, विधान के अनुसार यह आवश्यक होता है कि व्यवस्थापक सभा यह क़ानून पास करे कि सरकारी कोष से वेतन पाने के कारण, कोई पार्लिमेंटरी सेक्रेटरी व्यवस्थापक सभा की सदस्यता से वंचित नहीं किया जायगा।

कुछ लोगों का कथन है कि, क्योंकि विधान में इनकी नियुक्ति तथा अधिकारों का उल्लेख नहीं है, अतः इनकी कोई वैधानिक स्थिति भी नहीं है। सम्भवतः इसी लिए सिविल सर्विस के स्थायी सेक्रेटरी इनके पास सीधे फ़ाइलें भेजने में संकोच करते हैं। व्यवस्थापक सभा के अधिवेशन के समय जब किसी विभाग सम्बन्धी कोई प्रश्न पूछा जाता है तो कुछ आदमी पार्लिमेंटरी सेक्रेटरियों द्वारा उसका जवाब दिया जाना अच्छा नहीं समझते। यदि किसी अखिल भारतीय समस्या पर विचार करने के लिए भारत-सरकार द्वारा कोई सभा करायी जाती है, और, उसमें किसी प्रांत का, उक्त समस्या से सम्बन्ध रखनेवाले विभाग का, मन्त्री उपस्थित नहीं हो सकता, तो बहुधा

उसमें पार्लिमेंटरी सेक्रेटरी की अवहेलना करके सिविलियन सेक्रेटरी को प्रांत का प्रतिनिधि बनाकर भेज दिया, जाता है। यह ठीक नहीं है। पार्लिमेंटरी सेक्रेटरी का पद उप-मन्त्री का समझा जाना चाहिए, और सिविलियन सेक्रेटरियों से, उनकी अधीनता में काम कराने की प्रथा डाली जानी चाहिए। अनेक उपयोगी बातें जो विधान में नहीं हुआ करतीं, प्रथाओं और नियमोपनियमों से बना ली जाया करती हैं।

एडवोकेट-जनरल—गवर्नरों के प्रांतों में से प्रत्येक में एक-एक एडवोकेट-जनरल रहता है। इस पद के लिए उस प्रांत का गवर्नर ऐसे व्यक्ति को नियुक्त करता है, जिसमें हाईकोर्ट का जज होने की योग्यता हो। उसका कर्तव्य प्रांतीय सरकार को क़ानूनी विषयों पर परामर्श देना, और हाईकोर्ट में सरकार की तरफ़ से वकालत करने आदि के ऐसे अन्य क़ानूनी कार्य करना होता है, जो गवर्नर समय-समय पर उसके लिए निर्धारित करे। वह उस समय तक अपने पद पर आरूढ़ रहता है, जब तक कि गवर्नर चाहे; और उसे उतना वेतनादि मिलता है, जितना गवर्नर निश्चय करे। गवर्नर यह कार्य अपने व्यक्तिगत निर्णय से कर सकता है, अर्थात इसमें वह मन्त्रियों का निर्णय मानने को बाध्य नहीं है।

इङ्गलैंड में इस प्रकार का अधिकारी ('अटार्नी जनरल') मंत्रिमण्डल का ही अंग समझा जाता है; उसकी नियुक्ति प्रधान मन्त्री द्वारा होती है, और मत्रिमण्डल के बदलने पर उसे भी त्यागपत्र देना पड़ता है। भारतवर्ष में, विधान से एडवोकेट-जनरल का पद ऐसा नहीं किया गया।

मन्त्रिमण्डल और गवर्नर; शासन-विधान का खोखलापन—नये विधान में कहने को प्रांतीय स्वराज्य की स्थापना की गयी है, परन्तु इसमें विशेष तत्व नहीं है। मन्त्रिमण्डल के अधिकारों में गवर्नर कितना हस्तक्षेप कर सकते हैं, और इसके फल-स्वरूप विधान का दावा कितना सारहीन है, इसके प्रमाणों की कमी नहीं है।

सन् १९४१ में सिंध के गवर्नर ने उस प्रान्त के शासन के रोजमर्रा के कामों में हस्तक्षेप किया और कुछ नियुक्तियाँ मन्त्रियों की उपेक्षा करके अपने विशेषधिकार से की। इस सम्बन्ध में वहाँ के प्रधान मन्त्री खान बहादुर अल्लाबख्श ने असेम्बली में अपने तथा गवर्नर के मत-भेद के सम्बन्ध में वक्तव्य दिया था। इसके बाद की बात है गवर्नर ने खान बहादुर अल्लाबख्श को उनके बहुमत प्राप्त होते हुए भी प्रधान मन्त्री के पद से बर्खास्त कर दिया, इसका प्रत्यक्ष कारण यही मालूम हुआ कि उन्होंने भारत के प्रति ब्रिटिश सरकार की तत्कालीन नीति के विरोध में, सरकार द्वारा प्रदान की गयी अपनी उपाधियों का परित्याग किया था, यद्यपि वे सरकार को युद्ध प्रयत्नों में सहयोग देने के लिए यथाशक्ति प्रयत्न शील थे। इसका स्पष्ट अर्थ यह हुआ कि चाहे किसी प्रान्त का प्रधान मन्त्री अपनी व्यवस्थापक सभा का कितना ही विश्वास-पात्र हो, और अपने पद की जिम्मेदारी कितनी ही योग्यता से पूरा करता हो, वह प्रान्त के गवर्नर का विश्वास खो देने पर अपने पद पर बिलकुल नहीं ठहर सकता। [बड़े दुख का विषय है कि किसी दुष्ट ने राष्ट्रीय विचार वाले तथा स्वाभिमानी अल्लाबख्श जी की हत्या कर डाली।]

सन् १९४३ ई० में प्रधान मंत्री के त्यागपत्र देने पर बंगाल में मंत्रिमंडल का अन्त होना कम चिन्तनीय नहीं है। वहाँ के मन्त्री श्री फजलुल हक ने असेम्बली में सविस्तर और ब्योरेवार वक्तव्य देते हुए गवर्नर पर स्पष्ट रूप से यह आरोप लगाया कि उसने शासन के रोजमर्रा के काम में हस्तक्षेप

किया, निरंकुशता का परिचय दिया, पक्षपात से काम लिया और आदेश पत्र का उल्लंघन किया। उन्होंने कहा कि यदि यह असेम्बली वास्तविक पार्लिमेंट होती तो ऐसा गवर्नर बहुत पहले अपने पद से हटा दिया जाता। सरकार की ओर से इन बातों का कोई उत्तर नहीं मिला। [पीछे यहाँ गवर्नर ने दूसरा मंत्रिमंडल बना दिया गया है।]

इस विषय में और भी बहुत कुछ कहा जा सकता है। पर ये उदाहरण भी इस बात को सिद्ध करने के लिए पर्याप्त हैं कि मंत्रिमंडलों के वैधानिक अधिकार बहुत कम हैं; शासन विधान का प्रान्तीय स्वराज्य सम्बन्धी दावा निस्सार है।

पिछले परिच्छेद में बताया जा चुका है कि इस समय पाँच प्रान्तों में विधान स्थगित है। इन प्रान्तों में मंत्रिमंडल कार्य नहीं कर रहे हैं। सब शासन कार्य का संचालन गवर्नरों द्वारा हो रहा है। इनके कुछ सलाहकार हैं, जो उन्हें आवश्यकतानुसार परामर्श देते हैं, परन्तु किसी भी प्रकार जनता के प्रति उत्तरदायी नहीं हैं।

दसवाँ परिच्छेद
प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडल



(१)
संगठन

प्रान्तीय व्यवस्थापक मण्डल की सभाएँ और उनकी अवधि—पहले बताया जा चुका है कि ब्रिटिश भारत के ग्यारह प्रान्त 'गवर्नर के प्रान्त' कहलाते हैं। इनके व्यवस्थापक मण्डलों

में सम्राट्-प्रतिनिधि गवर्नर के अतिरिक्त, छः प्रान्तों अर्थात् (१) मद्रास, (२) बम्बई, (३) बंगाल, (४) संयुक्तप्रान्त, (५) बिहार और (६) आसाम में दो-दो सभाएँ, और शेष पाँच प्रान्तों अर्थात् पंजाब, मध्यप्रान्त और बरार, पश्चिमोत्तर सीमा-प्रान्त, उड़ीसा और सिन्ध में एक-एक सभा है।* जिन छः प्रान्तों के व्यवस्थापक मण्डलों में दो-दो सभाएं हैं, उनकी उन सभाओं के नाम क्रमशः व्यवस्थापक सभा (लेजिस्लेटिव असेम्बली) और व्यवस्थापक परिषद् (लेजिस्लेटिव कौंसिल), हैं और, जहाँ एक ही सभा है, वह व्यवस्थापक सभा कहलाती है। किसी प्रान्त की व्यवस्थापक सभा (असेम्बली), अपनी प्रथम बैठक के निर्धारित दिन से, अधिक से अधिक पाँच वर्ष तक रहती है, इस समय के बाद भंग हो जाती है।† व्यवस्थापक परिषद् एक स्थायी संस्था होती है, जो कभी भंग नहीं होती इसके लगभग एक-तिहाई सदस्य निर्धारित नियमों के अनुसार तीन-तीन साल में बदलते रहेंगे। इस प्रकार प्रत्येक तीन साल के बाद इसके एक-तिहाई सदस्यों का नया चुनाव होगा। कौन-कौन से सदस्य पहले तीन साल बाद और कौन-कौन से पहले छः साल बाद इससे पृथक् होंगे, इसका निर्णय गवर्नर, अपने विवेक से करेगा।

सदस्य न होते हुए भी प्रत्येक मन्त्री तथा एडवोकेट-जनरल अपने प्रान्त की व्यवस्थापक सभा तथा व्यवस्थापक परिषद् की

*इन ग्यारह प्रान्तों में से इस समय केवल छः मे व्यवस्थापक मण्डल काम कर रहे हैं।

†पांच साल का समय व्यतीत हो जाने के कारण प्रान्तीय व्यवस्थापक सभाओं का नया संगठन गत वर्ष (१९४२) मे हो जाना चाहिए था; अभी तक नहीं किया गया, इसका कारण युद्ध का होना बताया गया है।

कार्रवाई में भाग ले सकता है। हाँ, वे अपना मत उसी सभा में दे सकते हैं, जिसके वे सदस्य होते हैं।

इन सभाओं के सम्बन्ध में अन्य बातें जानने से पहले यह ज्ञान प्राप्त कर लेना आवश्यक है कि कैसी-कैसी योग्यता के व्यक्ति इसके सदस्यों का निर्वाचन करते हैं, और सदस्य बन सकते हैं।

निर्वाचक—निर्वाचक-सूची में किसी व्यक्ति का नाम दर्ज नहीं किया जाता, जब तक कि वह इक्कीस वर्ष का न हो, और ब्रिटिश प्रजा न हो। जो व्यक्ति पागल हो, और न्यायालय से पागल ठहराया गया हो, वह निर्वाचक नहीं हो सकता।

सिक्ख, मुसलमान, एँग्लो-इण्डियन, योरपियन या भारतीय ईसाई निर्वाचक-संघों से क्रमशः इन्हीं जातियों के व्यक्ति निर्वाचक हो सकते हैं। ये व्यक्ति साधारण निर्वाचक संघ में मत नहीं दे सकते; हाँ, आसाम और उड़ीसा में स्त्रियों के लिए सुरक्षित जगहों के सदस्यों के निर्वाचन में मत दे सकते हैं।

साधारण निर्वाचन में कोई व्यक्ति एक से अधिक निर्वाचक-संघ में मत नहीं दे सकता। हाँ, निर्वाचक-संघ में मत देनेवाला व्यक्ति स्त्रियों के चुनाव के लिए विशेष रूप के बनाए हुए निर्वाचक संघ में मत दे सकता है।

निर्वाचन सम्बन्धी अपराध का दोषी, तथा देश निकाले, या क़ैद की सजा भुगतनेवाला व्यक्ति मत नहीं दे सकता।

स्त्रियों के मताधिकार के सम्बन्ध में यह व्यवस्था है कि जिस स्त्री का नाम उसके पति के देहान्त के समय, उसके पति की योग्यता के कारण निर्वाचक-सूची में दर्ज हो, उसका नाम उक्त सूची में तब तक दर्ज रहता है, जब तक कि वह फिर विवाह न करले, या उसमें कोई उपर्युक्त अयोग्यता न हो जाय। किसी आदमी को इस योग्यता के आधार पर एक ही स्त्री मताधिकारिणी हो सकती है।

सदस्यों की योग्यता—वही व्यक्ति प्रान्तीय व्यवस्थापक मण्डल की किसी सभा का सदस्य चुने जाने योग्य होता है, जिसका नाम निर्वाचक-संघ की सूची में दर्ज होता है, और (क) जो ब्रिटिश प्रजा हो, (ख) जो व्यवस्थापक सभा की मेम्बरी के लिए पच्चीस वर्ष और व्यवस्थापक परिषद की मेम्बरी के लिए तीस वर्ष से कम आयु का न हो, तथा (ग) जिसमें निर्धारित योग्यता हो।

कोई व्यक्ति प्रान्तीय व्यवस्थापक सभा या परिषद का सदस्य चुने जाने या होने के अयोग्य ठहराया जाता है, अगर—

(क)—वह कोई ऐसी सरकारी नौकरी करता हो, जो प्रान्तीय व्यस्थापक मण्डल के कानून के अनुसार, सदस्यता के लिए अयोग्यता मानी जाती हो।

[किसी प्रान्त का मन्त्री होने से कोई व्यक्ति सदस्य बनने के अयोग्य नहीं होता]।

(ख)—वह पागल हो; और किसी न्यायालय द्वारा पागल ठहराया गया हो।

(ग)— वह ऐसा दिवालया हो, जो बरी न किया गया हो।

(घ)—वह नवीन प्रान्तीय शासनपद्धति के अमल में आने से पूर्व या इसके पश्चात्, निर्वाचन सम्बन्धी निर्धारित अपराध का दोषी पाया गया हो, और इस बात को निर्धारित समय व्यतीत न हुआ हो।

(च)—वह नवीन प्रान्तीय शासनपद्धति के अमल में आने से पूर्व या इसके पश्चात्, ब्रिटिश भारत के, या किसी देशी राज्य के न्यायालय में किसी अन्यअपराध का अपराधी ठहराया गया हो, और उसे देशनिकाले या दो वर्ष से अधिक क़ैद की सज़ा मिली हो, और उसे मुक्त हुए पाँच वर्ष या ऐसा समय, जो गवर्नर उचित समझे, न व्यतीत हुआ हो।

(छ)—उसने, केन्द्रीय या प्रांतीय व्यवस्थापक मण्डल का सदस्य नामज़द हो, या किसी नामज़द व्यक्ति का निर्वाचन-एजन्ट होकर, निर्धारित समय के निर्वाचन-व्यय का हिसाब पेश न किया हो, और उस बात को पाँच वर्ष का समय व्यतीत न हुआ हो, या गवर्नर ने उसकी इस विषय सम्बन्धी अयोग्यता न हटाई हो।

कोई व्यक्ति किसी सभा का सदस्य चुने जाने के अयोग्य होगा, जब कि वह किसी फ़ौजदारी अपराध के लिए देशनिकाले या क़ैद का दंड भुगत रहा हो।

यदि कोई ऐसा व्यक्ति, सदस्य के रूप में, किसी सभा में बैठे और मत दे, जिसमें सदस्यता की योग्यता न हो, या जो सदस्य

होने के लिए अयोग्य ठहराया गया हो, तो जितने दिन वह बैठेगा और मत देगा, उस पर प्रति दिन पाँचसौ रुपये के हिसाब से दण्ड होगा।

सदस्यों के रियायती अधिकार—जहाँ तक कोई सदस्य इन सभाओं के नियमों की अवहेलना न करे, उसे इन में भाषण करने की स्वतन्त्रता है। किसी सदस्य पर, सभाओं या इनकी कमेटियों में भाषण या मत देने के कारण, या सभा के आदेशानुसार उसकी रिपोर्ट, मत या कार्रवाई प्रकाशित करने के कारण, कोई कानूनी कार्रवाई नहीं की जासकती। अन्य बातों में, सदस्यों के रियायती अधिकार वे हैं, जो समय-समय पर व्यवस्थापक मंडल के क़ानून से निर्धारित हों। जो सदस्य सभाओं के नियमों या स्थायी आज्ञाओं को भंग करें, या अशिष्ट व्यवहार करें, उन्हें सभाओं से हटाने के अतिरिक्त, सभाएँ या उनकी कमेटी या उन का कोई पदाधिकारी उनको न्यायालय की भांति कोई दण्ड नहीं दे सकता। जो व्यक्ति इन सभाओं में से किसी कमेटी के सामने, कमेटी के चेयरमैन द्वारा कहे जाने पर, साक्षी देने या ज़रूरी काग़ज़ात पेश करने से इनकार करे, उसको (न्यायालय में दोषी ठहराए जाने के बाद), दंड देने के नियम व्यवस्थापक मण्डल के क़ानून से बनाये जासकते हैं।

वेतन और भत्ता—व्यवस्थापक मण्डल के सदस्यों को दिया जानेवाला वेतन और भत्ता समय-समय पर मण्डल के क़ानून द्वारा निर्धारित होता है। जब तक किसी प्रान्त का व्यवस्थापक मण्डल इस विषय का क़ानून न बनावे, सदस्यों को भत्ता उसी

प्रकार दिया जायगा, जैसा इस विधान के अमल में आने से पूर्व दिया जाता था। इस प्रकार अब प्रान्तीय व्यवस्थापक सभाएँ अपने सदस्यों को भत्ते के अतिरिक्त, नियमित रूप से वेतन भी दे सकती है।

संयुक्तप्रान्तीय व्यवस्थापक सभा ने निश्चय किया था कि यह वेतन ७५) प्रति मास हो। इसके अतिरिक्त जितने दिन सदस्य सभा अधिवेशन में उपस्थित हों, उन्हें २) प्रति दिन और मिलें। जब सदस्य अपने कार्य सम्पादन के लिए सफर करें, तो उन्हें रेल के ड्योढे दर्जे के दो टिकटों का मूल्य मिले।

संयुक्तप्रान्त में उस समय कांग्रेस दल पदारूढ था और कांग्रेसी प्रान्तों में मन्त्रियों की तरह, सदस्यों का वेतन और भत्ता मिलाकर पहले की सरकारों के समय की अपेक्षा, एवं वर्तमान गैर-कांग्रेसी सरकार वाले प्रान्तों की अपेक्षा, कम था।

व्यवस्थापक मण्डल की मान-रक्षा—पहले कहा जा चुका है कि प्रान्तीय व्यवस्थापक सभाओं का यह अधिकार है कि यदि कोई सदस्य या दर्शक आदि सभा के नियमों के विरुद्ध, या अशिष्ट व्यवहार करे तो वे उसे सभा-भवन से निकाल दें। वे यह कानून भी बना सकती है कि यदि कोई व्यक्ति सभा की किसी कमेटी के सभापति की आज्ञा की अवहेलना करके, कमेटी के सामने गवाही देने, या कोई दस्तावेज़ पेश करने, से इनकार करे तो उसे न्यायालय द्वारा दंड दिया जाय।

यदि गवर्नर यह नियम बनादे कि वर्तमान या भूत-पूर्व सरकारी कर्मचारी अमुक दशाओं में कमेटी के सामने पेश किये जा सकेंगे तो उन दशाओं को छोड़कर अन्य दशाओं में वे कमेटी के सामने गवाही देने को बाध्य नहीं किये जासकेंगे। इसी प्रकार, गवनरका नियम बन जाने पर, कोई कमेटी

किसी व्यक्ति को उन विषयों पर प्रकाश डालने के लिए न बाध्य कर सकेगी जिन्हें गवर्नर गुप्त समझे।

ब्रिटिश पार्लिमेंट की दोनों सभाओं को यह अधिकार है कि यदि कोई व्यक्ति नियम-विरुद्ध व्यवहार करे तो सभाएँ स्वयं वारंट निकाल कर उसे गिरफ्तार करलें। भारतवर्ष में विधान ने प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडलों की सभाओं को ऐसा अधिकार नहीं दिया है। वे इस विषय में न्यायालयों के आश्रित हैं।

प्रान्तीय व्यवस्थापक सभा का संगठन—अगले पृष्ठ में दिये हुए नक्शे से यह ज्ञात होजायगा कि विविध प्रान्तों की व्यवथापक सभाओं में, किस-किस निर्वाचक-संघ से, कितने-कितने सदस्य होते है, अर्थात् भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों और विशेष हितों के प्रतिनिधियों के लिए कितनी जगहें निश्चित है।

नक्शे के सम्बन्ध में निम्नलिखित बातें उल्लेखनीय हैं:—

जो मतदाता मुसलमान, सिक्ख, भारतीय ईसाई, ऐंग्लो-इंडयन, अथवा योरोपियन निर्वाचन क्षेत्रों के नही होते, उन्हें ही साधारण निर्वाचक संघ में मत देने का अधिकार होता है। इस निर्वाचक-संघ में अधिकांश हिन्दू ही होते हैं।

बम्बई में साधारण जगहों में ७ जगह मराठों के लिए सुरक्षित हैं।

हरिजनों (इनमें वे व्यक्ति गिने जाते जाते हैं, जिन्हें हिन्दू समाज के कट्टर आदमी न्यूनाधिक अस्पृश्य मानते हैं), और मराठों के वास्ते स्थान सुरक्षित करने के लिए कुछ साधारण निर्वाचक-संघों में एक या अधिक जगह उनके लिए सुरक्षित रखी जायँगी; उक्त प्रत्येक निर्वाचक संघ में कम से कम एक स्थान अन्य ऐसे व्यक्ति के चुने जाने के लिए रहेगा, जो साधारण निर्वाचक-संघ से चुना जा सकता हो।

प्रान्तीय व्यवस्थापक सभाओं का संगठन

प्रान्त	१ साधारण	२ पिछड़े हुए क्षेत्र और जातियाँ	३ सिक्ख	४ मुसलमान	५ एंग्लो इंडियन	६ योरपियन	७ भारतीय ईसाई	८ व्यापार, उद्योग और खदान	९ ज़मींदार	१० विश्वविद्यालय	११ मजदूर	स्त्रियाँ: १२ साधारण	स्त्रियाँ: १३ सिक्ख	स्त्रियाँ: १४ मुसलमान	स्त्रियाँ: १५ एंग्लो इंडियन	स्त्रियाँ: १६ भारतीय ईसाई	१७ योग
मदरास	१४६	१	...	२८	२	३	८	६	६	१	६	६	...	१	...	१	२१५
बम्बई	११४	१	...	२९	२	३	३	७	२	१	७	५	...	१	...	...	१७५
बंगाल	७८	...	...	११७	३	११	२	१९	५	२	८	२	...	२	१	...	२५०
संयुक्तप्रान्त	१४०	...	...	६४	१	२	२	३	६	१	३	४	...	२	...	...	२२८
पंजाब	४२	...	३१	८४	१	१	२	१	५	१	३	१	१	२	...	...	१७५
बिहार	८६	७	...	३९	१	२	१	४	४	१	३	३	...	१	...	...	१५२
मध्यप्रान्त-बरार	८४	१	...	१४	१	१	...	२	३	१	२	३	...	...	...	...	११२
आसाम	४७	९	...	३४	...	१	१	११	...	...	४	१	...	...	...	...	१०८
प० सीमाप्रान्त	९	...	३	३६	...	...	...	...	२	...	...	...	...	...	...	...	५०
उड़ीसा	४४	५	...	४	...	...	१	१	२	...	१	२	...	...	...	...	६०
सिन्ध	१८	...	...	३३	...	२	...	२	२	...	१	१	...	१	...	...	६०

हरिजनों के लिए सिन्ध और पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त को छोड़कर अन्य सब प्रांतों में कुछ जगह सुरक्षित हैं, और ये साधारण जगहों में ही सम्मिलित हैं। उक्त सुरक्षित जगहों का हिसाब इस प्रकार है:—मदरास ३०, बम्बई १५, बगाल ३०, सयुक्तप्रांत २०, पजाब ८, बिहार १५, मध्यप्रांत बरार २०, आसाम ७, और उड़ीसा ६। ये जगह शहरी और देहाती निर्वाचन-क्षेत्रों में विभक्त हैं। सब हरिजन निर्वाचक एक प्रारम्भिक निर्वाचन में भाग लेकर, प्रत्येक जगह के लिए चार उम्मेदवार चुनेंगे। जो चार व्यक्ति इस चुनाव में सब से अधिक मत प्राप्त करेंगे, वे ही साधारण निर्वाचक संघ के उम्मेदवार माने जायँगे, दूसरे व्यक्ति हरिजनों की ओर से उम्मेदवार नहीं माने जायँगे।

पजाब के ज़मींदारों की जगहों में से एक जगह तुमांदार के लिए सुरक्षित है।

भिन्न-भिन्न जातियों की स्त्रियों का निर्वाचन या तो उन्हीं निर्वाचक-संघों से हो जायगा, जिनसे उन-उन जातियों के पुरुषों का होता है, अथवा, उनके लिए पृथक् निर्वाचक-संघ होंगे।

शहरी और देहाती निर्वाचन-क्षेत्र—साम्प्रदायिक जगहों को शहरी और देहाती निर्वाचन-क्षेत्रों में विभक्त किया गया है। उदाहरणार्थ संयुक्तप्रान्त में १४० साधारण जगहों में से १७ शहरी और १२३ देहाती; मुसलमानों की ६४ जगहों में से, १३ जगह शहरी, और ५१ देहाती है, स्त्रियों की ४ साधारण जगहों में से १ शहरी और ३ देहाती, तथा मुसलमान स्त्रियों की २ जगहों में से १ शहरी और १ देहाती निर्वाचन-क्षेत्र के लिए सुरक्षित है। योरपियन, एंग्लो-इंडयन, और भारतीय ईसाइयों की जगहों को शहरी और देहाती निर्वाचन-क्षेत्रों में विभक्त नहीं किया गया है, कारण, ये लोग अधिकतर नगरों या क़स्बों में ही रहते है।

निर्वाचक कौन हो सकता है ?—मताधिकार का मुख्य आधार अभी तक सम्पत्ति है, शिक्षा सम्बन्धी तथा सैनिक योग्यता के आधार पर भी मताधिकार दिया गया है। जिन व्यक्तियों में निर्वाचक की पहले बताई हुई अयोग्यता न हो, और जिनमें निम्नलिखित योग्यताएँ हों,* वे ही प्रांतीय व्यवस्थापक सभा के किसी निर्वाचक-संघ की सूची में अपना नाम दर्ज करा सकते हैं-

१—जो निर्वाचक-संघ के सीमा के अन्दर रहनेवाले हों; और

२—(क)—जो २४) या अधिक वार्षिक किराये के मकान में रहते हों, या

(ख)—जो म्यूनिसपैलटी को १५०) या अधिक की वार्षिक आय पर हैसियत-कर देते हों, या

(ग)—जो भारत-सरकार को आय-कर देते हों, या

(घ)—जो ५) या अधिक वार्षिक मालगुजारी या १०) या अधिक वार्षिक लगान देनेवाली ज़मीन के मालिक हों, या

(च)—जो अपर प्राइमरी क्लास पास हों, या

(छ)—जो भारतीय सेना के पेंशन पानेवाले या नौकरी छोड़ चुकनेवाले अफ़सर या सिपाही हों।

किसी स्त्री का नाम निर्वाचक-सूची में निम्नलिखित दशा में ही दर्ज किया जाता है:—(क) अगर वह भारतीय सभा के पेंशन पानेवाले, या नौकरी छोड़ चुकनेवाले अफ़सर या सिपाही

* भिन्न-भिन्न प्रान्तों में इस योग्यता से सम्बन्ध रखने वाले नियमों में भेद हैं। स्थानाभाव से हमने यहा संयुक्तप्रांत के ही मुख्य-मुख्य नियमों का उल्लेख किया है।

की पेंशन पानेवाली विधवा या माता हो, या (ख) अगर उसे लिखना पढ़ना आता हो, या (ग) अगर उसके पति में निर्धारित आर्थिक योग्यता हो; [यह योग्यता पूर्व-सूचित साधारण योग्यता से कुछ अधिक है]।

उपर्युक्त योग्यताएँ साधारण तथा जातिगत निर्वाचक-संघों के विषय की हैं। कई प्रांतों में (क) व्यापार, उद्योग और खणिज, (ख) ज़मींदार, (ग) विश्वविद्यालय, और (घ) मज़दूरों के विशेष हितों के लिए विशेष प्रतिनिधियों की व्यवस्था की गयी है। इनके निर्वाचक-संघों के निर्वाचकों के लिए अन्य योग्यताएँ निर्धारित हैं।

निर्वाचन-नियमों की आलोचना; मताधिकार—भारतीय नेताओं की माँग थी कि प्रत्येक बालिग़ पुरुष स्त्री को मताधिकार मिले, परन्तु यह नहीं हुआ। हाँ, जब कि सन् १९३५ के विधान से पूर्व, ब्रिटिश भारत के ७१ लाख अर्थात् तीन प्रति शत व्यक्तियों को मताधिकार था, अब साढ़े तीन करोड़ पुरुष-स्त्रियों को, अर्थात् लगभग १४ प्रतिशत जनता को मताधिकार है। इस प्रकार मताधिकार में वृद्धि अवश्य हुई है, परन्तु उसका लाभ नहीं के बराबर है, कारण, (क) प्रान्तीय व्यवस्थापक सभाओं का निर्वाचन साम्प्रदायिक आधार पर होने से, राष्ट्रीयता को क्षति पहुँचती है, और (ख) छः प्रांतों में दूसरी सभा अर्थात् व्यवस्थापक परिषदें स्थापित करके, उन प्रान्तों की व्यवस्थापक सभाओं (असेम्बलियों) को शक्ति-हीन कर दिया गया है। अस्तु, मताधिकार की वृद्धि तो असंतोषप्रद

है ही; वह, उपर्युक्त कारणों से, और भी हानिकर होगई है।

पृथक् निर्वाचन—भिन्न-भिन्न सम्प्रदाय या पेशे आदि के आदमी तो सभी देशों में होते हैं, पर यहाँ सरकार का सहारा पाकर ये राजनैतिक कार्यों में भी अपनी पृथकृता और भेद-भाव की घातक सूचना देते हैं। लार्ड मिन्टो की कृपा से भारत-वासी पृथक् निर्वाचन के माया-जाल में फँसे। तब से विशेषतया मुसलमानों ने उससे मुक्ति न पायी। वरन रोग बढ़ता ही गया। सन् १६३५ के विधान के अनुसार यहाँ १५ प्रकार के निर्वाचक-संघ हैं:— (१) साधारण, (२) सिक्ख, (३) मुस्लिम, (४) एँग्लो-इंडियन (५) योरपियन, (६) भारतीय ईसाई, (७) व्यापार, उद्योग और खणिज, (८) ज़मींदार, (९) विश्वविद्यालय (१०) मज़दूर (११) स्त्रियाँ—साधारण, (१२) स्त्रियाँ—सिक्ख, (१३) स्त्रियाँ—मुसलमान, (१४) स्त्रियाँ—एँग्लो-इंडियन, (१५) स्त्रियाँ—भारतीय ईसाई।

महात्मा गांधी की जी-तोड़ कोशिश से, हरिजनों के साथ समझौता होगया, और उनके लिए साधारण निर्वाचक-संघों से चुने जानेवाले प्रतिनिधियों में से ही स्थान सुरक्षित कर दिये गये। अन्यथा, उपर्युक्त सूची में एक की और भी वृद्धि हो जाती, और निर्वाचक-संघ १६ प्रकार के होते। कहना नहीं होगा, निर्वाचक संघों की अनेकता राष्ट्रीयता का अंग भंग करती है, जनता को वास्तविक स्वराज्य के लिए संयुक्त निर्वाचन चाहिए।

स्त्री-मताधिकार—सन् १६३५ के विधान से पुरुषों के साथ स्त्रियों को भी पूर्वापेक्षा अधिक मताधिकार दिया गया है। परन्तु

देने का ढंग ऐसा है कि उससे हानि बहुत होती है। भारतीय महिला समाज की ओर से पृथक् निर्वाचन का विरोध किया गया था। उसकी न्यूनतम माँग यह थी कि नागरिक क्षेत्रों में बालिग स्त्रियों को मताधिकार सम्मिलित चुनाव द्वारा दिया जाय। परन्तु उसको सफलता न मिली। स्त्रियों के मताधिकार में शिक्षा, सम्पत्ति, और पतित्व सम्बन्धी शर्तें रखदी गयीं। इसके अतिरिक्त, उन्हें साम्प्रदायिक आधार पर मताधिकार देकर उनकी इस समय तक की एकता का लोप करके उन्हें जाति, धर्म आदि के भेद-भावों से विभक्त कर दिया गया है। अब प्रान्तीय व्यवस्थापक सभा की भिन्न-भिन्न महिला सदस्याएँ व्यापक स्त्री-समाज की प्रतिनिधि न होकर केवल जाति या धर्म विशेष की स्त्रियों की प्रतिनिधि हैं। इसमें महिला समाज या भारतीय राजनीति की अवनति स्पष्ट है।

प्रान्तीय व्यवस्थापक परिषद्—अगले पृष्ठ में दिये हुए नक़्शे से यह ज्ञात हो जायगा कि विविध प्रान्तों की व्यवस्थापक परिषदों में किस-किस निर्वाचक-संघ के कितने-कितने सदस्य होते हैं। नक़्शे के सम्बन्ध में निम्नलिखित बातें उल्लेखनीय हैं:—

यद्यपि प्रत्येक सदस्य का कार्य-काल साधारणतया नौ वर्ष है तथापि परिषद् के प्रथम संगठन के समय गवर्नर कुछ सदस्यों का कार्य-काल घटाकर ऐसी व्यवस्था करता है कि प्रत्येक प्रकार के सदस्यों में से लगभग एक-तिहाई तीन-तीन वर्ष के बाद अवकाश ग्रहण करते जायँ। इस प्रकार प्रथम संगठन के बाद किसी भी समय परिषद् में नये सदस्यों की संख्या एक-तिहाई से अधिक नहीं होती।

प्रान्तीय व्यवस्थापक परिषदों का संगठन

प्रान्त	साधारण	मुसलमान	योरपियन	भारतीय ईसाई	व्यवस्थापक सभा	गवर्नर द्वारा नामज़द	योग
मदरास	३५	७	१	२	...	८ से कम नहीं १० से अधिक नहीं	५४ से कम नहीं ५६ से अधिक नहीं
बम्बई	२०	५	१	...	...	३ से कम नहीं ४ से अधिक नहीं	२६ से कम नहीं ३१ से अधिक नहीं
बंगाल	१०	१७	३	...	२७	६ से कम नहीं ८ से अधिक नहीं	६३ से कम नहीं ६५ से अधिक नहीं
संयुक्तप्रान्त	३४	१७	१	...	...	६ से कम नहीं ८ से अधिक नहीं	५८ से कम नहीं ६० से अधिक नहीं
बिहार	६	४	१	...	१२	३ से कम नहीं ४ से अधिक नहीं	२६ से कम नहीं ३० से अधिक नहीं
आसाम	१०	६	२	...	...	३ से कम नहीं ४ से अधिक नहीं	२१ से कम नहीं २२ से अधिक नहीं

जो व्यक्ति किसी अकस्मात ख़ाली होनेवाली जगह के लिए सदस्य चुना जाता है, वह अपने पूर्वाधिकारी के शेष रहे हुए कार्यकाल तक ही अपने पद पर रहता है ।

मुसलमान, योरपियन तथा भारतीय ईसाई निर्वाचक-संघों से इन्हीं जातियों के व्यक्ति मत दे सकते हैं । और, ये व्यक्ति साधारण निर्वाचक-संघ में मत नहीं दे सकते । साधारण निर्वाचक-संघ में इन जातियों के व्यक्तियों को छोड़कर अन्य जातियों या सम्प्रदायों के व्यक्ति ही मत दे सकते हैं ।

प्रान्तीय व्यवस्थापक सभाओं के सदस्यों द्वारा चुने जानेवाले सदस्य 'एकाकी हस्तान्तरित मताधिकार' (सिंगल ट्रान्सफरेबल वोट) प्रणाली से, आनुपातिक प्रतिनिधित्व के अनुसार, चुने जाते हैं ।

एकाकी हस्तान्तरित मताधिकार—इस प्रणाली में मतदाता को एक ही मत देने का अधिकार रहता है, पर वह यह सूचित कर सकता है कि सर्व-प्रथम उसके मत का उपयोग किस उम्मेदवार के लिए हो, और यदि उस उम्मेदवार को उसके मत की आवश्यकता न हो (वह उम्मेदवार अन्य मतदाताओं के मतों से ही चुन लिया जाय) तो उस मत का उपयोग किस दूसरे उम्मेदवार के लिए हो, और यदि दूसरे उम्मेदवार को भी उस मत की आवश्यकता न हो तो किस तीसरे या चौथे उम्मेदवार के लिए उसका उपयोग किया जाय । मतदाता अपने मत-पत्र पर उम्मेदवारों के नाम के सामने १, २, ३, आदि अंक लिख कर यह सूचित करता है कि उसके चुनाव या पसन्द का क्रम क्या है, वह किस उम्मेदवार को सर्व-प्रथम स्थान देता है; किसे दूसरा, और किसे तीसरा, आदि ।

उम्मेदवारों की सफलता का हिसाब लगाने के लिए पहले यह देखा जाता है कि किसी उम्मेदवार को कम से-कम कितने मतों की आवश्यकता

है। यह संख्या सब प्राप्त मतों को, निर्वाचित होनेवाले सदस्यों की संख्या में एक जोड़कर, उससे भाग देने से, तथा भजन-फल में एक जोड़ देने से, मालूम हो जाती है। इसे 'कोटा', पर्याप्त संख्या, या आनुपातिक भाग कहते हैं। उदाहरणार्थ यदि पाँच सदस्य निर्वाचित होनेवाले हैं, और सोलह उम्मेदवार हैं, जिनके लिए कुल मिलाकर ५४ मत प्राप्त हुए हैं तो 'कोटा' = ५४ ÷ (५ + १) + १ = १० । जो उम्मेदवार प्रथम पसन्द के इतने मत प्राप्त कर लेता है, जो 'कोटा' अर्थात् पर्याप्त संख्या के समान या उससे अधिक हों, वह निर्वाचित घोषित किया जाता है। यदि उसके प्राप्त मत 'कोटा' से अधिक हों, तो उनमें से 'कोटा' निकाल देने पर जो शेष बचते हैं, उनके सम्बन्ध में यह विचार किया जाता है कि दूसरी पसन्द में इनमें से कितने मत किस उम्मेदवार के लिए हैं। अगर यह (दूसरी पसन्दवाला) उम्मेदवार स्वयं अपने लिए प्राप्त मतों के ही आधार पर निर्वाचित घोषित होगया हो, तो उक्त शेष मतों का उपयोग तीसरी पसन्द के लिए किया जाता है। इसी प्रकार आगे होता रहता है। यदि ऐसा करने पर आवश्यकतानुसार उम्मेदवार निर्वाचित नहीं होते तो जिन उम्मेदवारों के मत आनुपातिक माँग से कम होते हैं, उनमें से जिसके सबसे कम हों, उसे असफल घोषित करके उसके प्राप्त मतों का उपयोग उन उम्मेदवारों के वास्ते किया जाता है, जिनके लिए वे मत दूसरी पसन्द में रखे गये हों। इसके बाद फिर जो उम्मेदवार शेष रहेंगे, उनमेंसे जिसके लिए मत सबसे कम होंगे, उसके वास्ते प्राप्त मतों का भी इसी प्रकार उपयोग किया जायगा। इस प्रकार यह क्रिया उस समय तक होती रहेगी, जब तक कि जितने सदस्यों को निर्वाचित करना हो, उतने निर्वाचित न होजायँ।

निर्वाचकों की योग्यता—प्रान्तों की व्यवस्थापक परिषदों के सदस्यों को चुननेवाले निर्वाचक वे ही व्यक्ति हो सकते हैं, जो निर्वाचक-संघ के क्षेत्र की सीमा के अन्दर रहनेवाले हों। उनकी अन्य योग्यताओं का परिमाण भिन्न-भिन्न प्रान्तों

में पृथक्-पृथक् है। स्थानाभाव से हम यहाँ संयुक्तप्रान्त के निर्वाचकों की ही मुख्य-मुख्य योग्यताओं का उल्लेख करते हैं। इस प्रान्त में निम्नलिखित योग्यता वाले व्यक्तियों को निर्वाचकों की सूची में नाम दर्ज कराने का अधिकार है :—

साधारण—(अ) गतवर्ष में ४०००) या अधिक पर आय-कर देना; या (आ) दीवान बहादुर, खाँ बहादुर, रायबहादुर, रावबहादुर या इन से ऊँची पदवी प्राप्त होना; या (इ) २५० रु० मासिक पेन्शन पाना; या (ई) निम्नलिखित पदों पर रह चुकना, या होना—ब्रिटिश भारत के किसी व्यवस्थापक मंडल का गैर-सरकारी सदस्य, किसी विश्वविद्यालय का चान्सलर, फेलो, कोर्ट या सिनेट का सदस्य, संघ-न्यायालय, हाईकोर्ट या चीफ़कोर्ट का न्यायाधीश; किसी म्युनिसपेलटी या जिला-बोर्ड का गैर-सरकारी सभापति होना; या (उ) १०००) रु० या अधिक सालाना मालगुजारी देना, या इतनी मालगुजारी माफी की ज़मीन का मालिक होना; या (ऊ) १५००) या अधिक सालाना लगान देना।

स्त्रियों सम्बन्धी—प्रत्येक ऐसी स्त्री को मताधिकार है, जिसके पति में निम्नलिखित योग्यताएं पायी जावें—(क) गत वर्ष में १०,००० रु० या अधिक पर आय-कर देना, या (ख) ५०००) रु० या अधिक सालाना मालगुज़ारी देना, या (ग) दीवान बहादुर, खां बहादुर, रायबहादुर, रावबहादुर या इनसे ऊँची पदवी प्राप्त होना, या (घ) २५०) रु० या अधिक मासिक पेंशन पाना।

* निर्वाचन सम्बन्धी विषयों की विशेष चर्चा हमारी "निर्वाचन पद्धति" पुस्तक में की गई है, जिसका हाल में तीसरा संस्करण छपा है।

दलित जातियों सम्बन्धी— (श) आय - कर देना, या (ष) २००) या अधिक सालाना मालगुजारी देना, या (स) ५००) या अधिक सालाना लगान देना, या (ह) गवर्नर-जनरल से कोई पद प्राप्त करना।

इसमें सन्देह नहीं कि निर्वाचकों की योग्यता का आधार उच्च आर्थिक स्थिति अथवा उच्च पदोंवाली सरकारी नौकरी है, और इन परिषदों के निर्वाचित सदस्य सर्वसाधारण के हितों के प्रतिनिधि न होकर उक्त थोड़े से निर्वाचकों का ही मत प्रकट करनेवाले होते हैं।

दूसरी सभा के विषय में वक्तव्य—पहले सब गवर्नरों के प्रांतों में एक-एक ही व्यवस्थापक सभा थी। सन १९३५ ई० के विधान के अनुसार एक दो नहीं, आधे दर्जन प्रांतों में दूसरी सभा ['सेकिंड चेम्बर'] का आयोजन किया गया है। केन्द्र में दूसरी सभा [अर्थात राजपरिषद] होने से क्या हानि है, यह उसके प्रसंग में बताया जा चुका है, प्रांतों में दूसरी सभा की व्यवस्था उससे भी अधिक हानिकर है।

इसमें निम्नलिखित दोष हैं- (१) इसके सदस्यों—ज़मींदार, तालुकेदार और पूंजीपति आदि— के स्वार्थ सर्वसाधारण के स्वार्थों से भिन्न होते हैं। वे लोग प्राय: प्रगति-विरोधी होते हैं। (२) प्रथम सङ्गठन के बाद किसी भी समय इसके नये सदस्यों की संख्या एक-तिहाई से अधिक नहीं होगी। इस प्रकार यदि प्रांत में सर्वसाधारण के सामने कोई ज्वलंत समस्या उपस्थित हो तो परिषद में दो-तिहाई सदस्य ऐसे देश-काल का प्रतिनिधित्व

करनेवाले होंगे, जिसमें प्रस्तुत समस्या और विचार उपस्थित न थे। इसलिए विशेष सुधार होने की आशा नहीं हो सकती। (३) इन परिषदों में से प्रत्येक में कुछ सदस्य गवर्नर द्वारा नामज़द होते हैं। प्रांतीय स्वराज्य की व्यवस्था के साथ व्यवस्थापक परिषद् में नामज़दगी की बात कैसी खटकती है, यह कहने की आवश्यकता नहीं। (४) बंगाल और बिहार की व्यवस्थापक परिषदों में इन प्रांतो की व्यवस्थापक सभाओं द्वारा चुने हुए सदस्यों की काफी संख्या है; राजनैतिक प्रगति और प्रांतीय स्वराज्य के साथ यह अप्रत्यक्ष चुनाव की बात सर्वथा बेमेल और प्रतिक्रिया-मूलक है। निदान, यह सभा प्रान्तों को वास्तविक स्वराज्य के निकट लाने में एक असंदिग्ध बाधा है।

ग्यारहवाँ परिच्छेद

प्रान्तीय व्यवस्थापक मण्डल

(२)

कार्यपद्धति और अधिकार

पिछले परिच्छेद में प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडलों का संगठन बताया जा चुका है, अब उनकी कार्यपद्धति और अधिकारों का विचार किया जाता है।

भारतीय व्यवस्थापक मंडल की कार्यपद्धति के जिन विषयों के नियम पांचवें परिच्छेद में नहीं दिये गये हैं, वे प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडलों के नियमों के समान ही हैं।

व्यवस्थापक मंडल का अधिवेशन—प्रत्येक प्रान्तीय व्यवस्थापक मण्डल की सभा या सभाओं का, प्रति वर्ष कम-से-कम एक अधिवेशन होने का, और किसी अधिवेशन की अंतिम बैठक के दिन से एक वर्ष के भीतर, दूसरा अधिवेशन होने का, नियम है। इस नियम को ध्यान में रखते हुए, गवर्नर प्रान्तीय व्यवस्थापक मण्डल की दोनों या एक सभा का अधिवेशन ऐसे समय और स्थान पर कर सकता है, जिसे वह उचित समझे। वह सभाओं का कार्य-काल बढ़ा सकता है, और उन्हें अनिश्चित काल के लिए स्थगित कर सकता है। वह प्रान्तीय व्यवस्थापक सभा (असेम्बली) को भंग कर सकता है। उसके भंग होने की दशा में उसका नया चुनाव होता है।

सभापति और उपसभापति— संगठित होने के पश्चात्, प्रांतीय व्यवस्थापक सभा यथा-सम्भव शीघ्र अपने सदस्यों में से एक सभापति और एक उपसभापति चुनती है। इन्हें क्रमशः 'स्पीकर' और 'डिप्टी स्पीकर' कहा जाता है। जब ये व्यवस्थापक सभा के सदस्य न रहें तो इन्हें अपना पद छोड़ देना पड़ता है। ये गवर्नर को लिखित सूचना देकर अपने पद का त्याग कर सकते हैं, और व्यवस्थापक सभा के उपस्थित सदस्यों के बहुमत से पास किये हुए प्रस्ताव द्वारा अपने पद से हटाये जा सकते हैं; हाँ, ऐसे प्रस्ताव को उपस्थित करने की सूचना चौदह दिन पहले दी जानी चाहिए।

जब स्पीकर का पद रिक्त हो तो डिप्टी-स्पीकर; और उसका भी पद रिक्त होने की दशा में गवर्नर द्वारा नियुक्त किया हुआ

सदस्य, इस पद का कार्य सम्पादन करता है। स्पीकर और डिप्टी-स्पीकर को प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडल द्वारा निर्धारित वेतन दिया जाता है; और, जब तक मंडल द्वारा निर्धारित न हो, उन्हें गवर्नर द्वारा निर्धारित वेतन दिया जाता है। प्रान्त के अन्य व्यय की भांति इस वेतन की भी स्वीकृति व्यवस्थापक सभा से प्रति वर्ष ली जाती है।

व्यवस्थापक सभा भंग होजाने पर जब तक नया चुनाव होकर नयी व्यवस्थापक सभा का प्रथम अधिवेशन आरम्भ न हो, स्पीकर बराबर सभापति का काम करता है। यद्यपि उसके अधिकार विशेष नहीं होते, परन्तु क्योंकि वह व्यवस्थापक सभा की सब कार्रवाई का संचालन करता है, और जब तक वह अपने पद से पृथक न हो, उसके निर्णय मान्य होते हैं, अतः उसके पद का प्रभाव और महत्व बहुत होता है।

व्यवस्थापक सभा की तरह, व्यवस्थापक परिषद भी अपना सभापति और उपसभापति चुनती है; ये प्रेसीडेंट और डिप्टी-प्रेसीडेंट कहलाते हैं। इनके सम्बन्ध में नियम उसी प्रकार के हैं, जैसे स्पीकर और डिप्टी-स्पीकर के विषय में ऊपर बताये गये हैं। हाँ, जब दोनों सभाओं का संयुक्त अधिवेशन होता है तो सभापति व्यवस्थापक परिषद का प्रेसीडेंट होता है।

स्पीकर और राजनीति—स्पीकर का कार्य न्यायाधीश का है, उसे निष्पक्ष रहना चाहिए। वह अपने प्रान्त या देश की राजनीति में क्रियात्मक भाग ले या न ले, इस विषय में मत-भेद

है। एक विचार यह है कि स्पीकर सभापति के पद पर रहकर भी राजनीति में क्रियात्मक भाग ले सकता है। यह विचार अमरीका और फ्रांस आदि देशों में है। वहाँ अध्यक्ष दल-गत राजनीति में भाग लेता है। दूसरा विचार यह है कि अध्यक्ष के आसन पर बैठकर स्पीकर को निष्पक्ष और न्याय-पूर्ण निर्णय देने होते हैं। उसे शान्त रह कर सदस्यों में शिष्टता और सौजन्य बनाये रखना पड़ता है। इस दशा में यदि वह सभा-भवन से बाहर दलबन्दी के चक्कर में रहा करे तो उसका वैसा प्रभाव नहीं पड़ सकता, जैसा, जबकि वह वहाँ भी निष्पक्ष और शान्त रहे। इसलिए सब का विश्वासपात्र रहने के लिए उसे दल-गत राजनीति से पृथक् रहना चाहिए। इंगलैंड आदि कई देशों में ऐसा ही होता है। जब स्पीकर को, सभा में दोनों ओर समान मत रहने की दशा में, अपना मत देने की आवश्यकता होती है तो वह सहसा अपने दल के पक्ष में मत न देकर ऐसा ही प्रयत्न करता है, जिससे उस विषय पर बहस हो, और दूसरी बार मत लिया जाय। इंगलैंड में पार्लिमेंट भंग हो जाने पर साधारण निर्वाचन के समय स्पीकर अपने निर्वाचन-क्षेत्र से, सवसम्मति से निर्वाचित हो जाता है, और पार्लिमेंट का सदस्य होजाने पर वह स्वयमेव स्पीकर चुन लिया जाता है। निर्वाचन का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

संयुक्तप्रान्त की व्यवस्थापक सभा के स्पीकर श्री० पुरुषोत्तमदासजी टंडन ने पूर्णतया निष्पक्ष रहते हुए भी कांग्रेस तथा कांग्रेस-पार्टी से अपना सम्बन्ध बनाये रखा। इस प्रकार उन्होंने इंगलैंड के नियमों का

अनुकरण न कर देश-कालानुसार नियमों को बनाने और व्यवहृत करने का आदर्श उपस्थित किया।

सभाओं में मत-प्रदान—इन सभाओं में से प्रत्येक की बैठक में, एवं दोनों की संयुक्त बैठक में प्रस्तुत प्रश्नों का निर्णय उपस्थित सदस्यों के बहुमत के अनुसार होता है। मन्त्री उस सभा में मत दे सकते हैं, जिसके वे सदस्य हों। सभापति या उनके स्थान पर कार्य करनेवाले व्यक्ति को प्रथम मत देने का अधिकार नहीं होता; हाँ, जब किसी प्रश्न के पक्ष और विपक्ष में समान मत हों तो उपर्युक्त पदाधिकारी को निर्णायक मत देना होता है।

ये सभाएँ अपने सदस्यों के कुछ स्थान रिक्त होने की दशा में भी, अपना कार्य कर सकती हैं, और इनकी कार्रवाई उस दशा में भी नियमित मानी जाती है, जब कि पीछे यह ज्ञात होजाय कि कोई ऐसा व्यक्ति वहाँ बैठा और उसने उनमें भाग लिया, जो ऐसा करने का अधिकारी न था। अगर किसी समय प्रान्तीय व्यवस्थापक सभा की मीटिंग में कुल सदस्यों के छठे भाग से कम उपस्थित हों, या परिषद् में दस मेम्बरों से कम हों तो सभापति या उसके स्थान पर कार्य करनेवाले व्यक्ति का यह कर्तव्य होता है कि वह सभा की कार्रवाई को उस समय तक स्थगित कर दे, जब तक कि ऊपर लिखी कमी दूर न हो जाय।

सदस्यों सम्बन्धी नियम—प्रत्येक सभा का हर एक सदस्य अपना स्थान ग्रहण करने से पूर्व गवर्नर के सामने राजभक्ति

की शपथ लेता है। कोई सदस्य दोनों सभाओं का सदस्य नहीं हो सकता। गवर्नर के अपने व्यक्तिगत निर्णय के अनुसार बनाये हुए नियमों में इस बात की व्यवस्था होती है कि जो व्यक्ति दोनों सभाओं का सदस्य चुना जाय, वह किसी एक में अपना स्थान रिक्त कर दे। अगर किसी सदस्य में निर्धारित अयोग्यता होजाय (यह पिछले परिच्छेद में बताई गयी है), या वह गवर्नर को लिखित त्यागपत्र देदे, तो उसका स्थान रिक्त हो जाता है। अगर किसी सभा का सदस्य, सभा की अनुमति बिना, साठ दिन तक सभा की सब बैठकों से अनुपस्थित रहे तो सभा उसके स्थान को रिक्त घोषित कर सकती है। इन साठ दिनों में वे दिन नहीं गिने जाते, जो दो अधिवेशनों बीच में हों, या जिनमें लगातार चार से अधिक दिन तक कार्य स्थगित रहा हो।

अंग्रेजी भाषा का प्रयोग—प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडल की सब कार्रवाई अंगरेजी भाषा में होने का नियम है, परन्तु प्रत्येक सभा की कार्यपद्धति के नियमों में और संयुक्त बैठक सम्बन्धी नियमों में, इस बात की व्यवस्था रहती है कि अंगरेजी भाषा न जानने वाले या कम जानने वाले व्यक्ति अन्य भाषा का प्रयोग कर सकें।

विधान के इस नियम की व्याख्या के सम्बन्ध में; व्यवस्थापक सभाओं में काफी मत-भेद रहा है। संयुक्तप्रान्त के स्पीकर ने अंगरेजी जानने वाले सदस्यों को भी हिन्दुस्तानी भाषा में बोलने की अनुमति दी। इससे सदस्यों को बहुत सुविधा रही।

व्यवस्थापक मण्डल की कार्यपद्धति—व्यवस्थापक मंडलों की कार्यप्रणाली के नियम बहुत विस्तृत हैं। हम यहाँ उनमें से कुछ खास-खास का ही उल्लेख कर सकते हैं। दोनों सभाओं में से प्रत्येक के भवन में आदमियों के बैठने के लिए अलग-अलग ब्लाक होते हैं। यह पहले ही निश्चय कर लिया जाता है कि कम-से-कम कितने सदस्यों के होने से उनका एक दल माना जायगा। भिन्न-भिन्न दलों का निर्माण हो जाने पर प्रत्येक दल का नेता स्पीकर को उस दल के सदस्यों की संख्या सूचित कर देता है। इस पर उस दल को सभा-भवन में एक ब्लाक मिल जाता है। सरकारी पक्ष के लोग स्पीकर की दायीं ओर बैठते हैं। उनकी जगहों को 'ट्रेज़री बेंच' कहते हैं। सरकारी पक्ष से दूसरे नम्बर पर जिस दल का बहुमत होता है, वह सरकारी पक्षवालों के सामने, स्पीकर के बायीं ओर बैठता है। उसे विरोधी दल और उसके बैठने की जगहों को 'ओपोजिशन बेंच' कहते हैं। बैठने की इस व्यवस्था से सरकारी पक्ष तथा विरोधी पक्ष के, एवं भिन्न-भिन्न दलों के मत गिनने में सुविधा होती है।

भवन में दर्शकों और पत्र-प्रतिनिधियों के बैठने की भी व्यवस्था होती है, उनकी जगहों को 'दर्शक गेलरी' और 'प्रेस गेलरी' कहा जाता है। प्रत्येक दर्शक को एक प्रवेशपत्र या 'पास' लेना होता है। 'पास' अपने परिचय के किसी सदस्य द्वारा लिया जा सकता है; यह जिस व्यक्ति के लिए होता है, वही इसका उपयोग कर सकता है; यह दूसरे व्यक्ति के काम नहीं आ सकता।

जिस दिन सभा में कोई नया सदस्य उपस्थित होता है, उस

दिन का पहला कार्य उस सदस्य का राजभक्ति की शपथ लेना होता है। यह कार्य कभी-कभी ही होता है। साधारणतया दैनिक कार्यक्रम में पहली बात प्रश्नोत्तरों की होती है; यह कार्य थोड़ी ही देर का होता है। इसके बाद क़ानूनी मसविदों या प्रस्तावों पर विचार होता है। (सार्वजनिक महत्व के विषय की बहस करने के लिए) अधिवेशन स्थगित करने के प्रस्ताव का विचार शाम के चार बजे होता है।

गवर्नर को अधिकार है कि ग़ैर-सरकारी कार्य के लिए समय और क्रम निश्चय करे। सभापति को अधिकार है कि किसी प्रश्न के पूछे जाने की अनुमति, इस आधार पर देने से इनकार करदे कि इसका प्रांतीय सरकार से विशेष सम्बन्ध नहीं है। कुछ विषय ऐसे हैं, जिन पर मण्डल की किसी सभा में विचार नहीं हो सकता, उनके अन्तिम निर्णय का अधिकार गवर्नर को है। सार्वजनिक महत्व के किसी खास विषय की बहस करने के लिए परिषद् के अधिवेशन को, स्थगित करने का प्रस्ताव किया जा सकता है। सभापति का अधिकार है कि वह किसी सदस्य के भाषण में पुनरुक्ति या अप्रासंगिक विषय का उल्लेख करे, और, उसको बोलने से रोके।

सदस्य जब स्पीकर अथवा मन्त्रिमण्डल के किसी कार्य का विरोध करना चाहते हैं, तो वे सामूहिक रूप में, सभा-भवन से बाहर चले जाते हैं। इसे 'वाक-आउट' कहते हैं।

कार्यपद्धति के नियमों का निर्माण—शासन-विधान के नियमों का पालन करते हुए, प्रत्येक सभा अपनी कार्यपद्धति के नियम बना सकती है। परन्तु गवर्नर उसके अध्यक्ष से परामर्श

करके निम्नलिखित विषयों के नियम बना सकता है :—

(१) जिन विषयों में गवर्नर को अपने विवेक या व्यक्तिगत निर्णय के अनुसार कार्य करना होता है, उन पर असर डालने-वाली सभा की कार्यपद्धति।

(२) मण्डल के आय-व्यय सम्बन्धी कार्य की यथा-समय समाप्ति।

(३) किसी देशी राज्य सम्बन्धी वादानुवाद या प्रश्नों का निषेध।

(४) जब तक गवर्नर की सहमति न हो, निम्नलिखित विषयों के वादानुवाद या प्रश्नों का निषेध :—[क] सम्राट् या गवर्नर-जनरल का किसी विदेशी राज्य या नरेश से सम्बन्ध; [ख] जंगली जातियों या 'पृथक्' क्षेत्र के शासन का विषय (खर्च के अनुमान को छोड़कर); [ग] किसी देशी राज्य के नरेश या उसके परिवार के व्यक्तिगत व्यवहार सम्बन्धी वादा-नुवाद या प्रश्न।

उपर्युक्त विषयों में यदि गवर्नर का बनाया हुआ कोई नियम किसी प्रान्तीय व्यवस्थापक सभा के बनाए हुए नियम से भिन्न हो तो गवर्नर का बनाया हुआ नियम मान्य होगा।

संयुक्त अधिवेशन—जिस प्रांत में व्यवस्थापक परिषद् हो, उसमें गवर्नर दोनों सभाओं के संयुक्त अधिवेशन तथा पारस्परिक विचार विनिमय के नियम उनके सभापतियों का परामर्श लेकर बनाता है। संयुक्त अधिवेशन में प्रान्तीय व्यव-स्थापक परिषद् का अध्यक्ष सभापति होता है, और उसकी

अनुपस्थिति में वह व्यक्ति सभापति का कार्य करता है, जो कार्य-पद्धति के नियमों के अनुसार निश्चित हो।

संयुक्तप्रान्त में यह व्यवस्था की गयी थी कि संयुक्त अधिवेशन में, व्यवस्थापक परिषद् का सभापति (प्रेसीडेंट) उपस्थित न होने की दशा में व्यवस्थापक सभा का सभापति अर्थात् स्पीकर, और स्पीकर की अनुपस्थिति में डिप्टी-प्रेसीडेंट, तथा डिप्टी प्रेसीडेंट की अनुपस्थिति में डिप्टी-स्पीकर अध्यक्ष का कार्य करे। यदि यह भी उपस्थित न हो तो संयुक्त अधिवेशन द्वारा निर्वाचित सदस्य सभापति बने। दोनों सभाओं के ४८ सदस्य होने पर 'कोरम' पूरा होगा। संयुक्त अधिवेशन में उस प्रस्ताव पर विचार होने के अतिरिक्त, जिसके लिए अधिवेशन किया गया है, अन्य किसी विषय पर विचार न होगा। किसी 'काम रोको' प्रस्ताव को उपस्थित किये जाने की अनुमति नहीं दी जायगी।

व्यवस्थापक मंडल का कार्यक्षेत्र——प्रत्येक प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडल तीन प्रकार के कार्य करता है—(१) शासन-कार्य की जाँच के लिए आवश्यक प्रश्न पूछना और प्रस्ताव करना। (२) कानून बनाना। (३) सरकारी आय-व्यय निश्चित करना। इनके सम्बन्ध में आवश्यक बातें आगे दीजाती हैं।

प्रश्न और प्रस्ताव——शासन - कार्य की जाँच के लिए व्यवस्थापक मंडल के सदस्यों को प्रश्न पूछने और प्रस्ताव करने का वैसा ही अधिकार है, जैसा भारतीय व्यवस्थापक मण्डल के सम्बन्ध में, हम पांचवें परिच्छेद में बता आये हैं। प्रश्न पूछ कर सरकार का ध्यान जनता की शिकायतों की ओर आकर्षित किया जाता है, और महत्वपूर्ण विषयों पर प्रकाश डाला जाता है। मण्डल में किसी प्रस्ताव या उसके किसी भाग के उपस्थित किये जाने से रोकने का अधिकार, उस प्रान्त के गवर्नर को

होता है।

प्रस्ताव तीन प्रकार के होते हैं:— (१) साधारण नीति के प्रस्ताव पास करके, सरकार को निर्धारित कार्य करने का आदेश किया जाता है। (२) सार्वजनिक महत्व के विषय की बहस के लिए कार्रवाई स्थगित करने का अर्थात् 'काम-रोको' प्रस्ताव किया जाता है। इसका आशय यह होता है कि सरकार पर विश्वास नहीं है। यह प्रस्ताव उसी दिन चार बजे अन्य कार्य-वाही बन्द करके ले लिया जाता है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि प्रस्ताव पर वाद-विवाद होते हुए ही,सभाकी बैठक का समय समाप्त हो जाता है, और प्रस्ताव पर मत लिये जाने का अवसर नहीं आता। इस प्रकार निर्णय न होने की दशा में प्रस्ताव को 'चर्चा में ही गया' ('टाक्ड आउट') कहते हैं। (३) सरकारी नीति से असन्तोष प्रकट करने के लिए मन्त्रिमण्डल के प्रति अविश्वास या निन्दा का प्रस्ताव किया जाता है। सभापति किसी सदस्य को इस प्रकार का प्रस्ताव करने की अनुमति उस समय देता है, जब सदस्यों की एक बड़ी संख्या खड़ी होकर, अनुमति देने के पक्ष में होना सूचित कर दे। सदस्यों की यह संख्या भिन्न-भिन्न प्रान्तों में पृथक् पृथक् निर्धारित है। इस प्रस्ताव पर, 'स्पीकर' द्वारा निश्चित किये हुए दिन विचार होता है। दूसरे और तीसरे प्रकार के प्रस्तावों में से किसी के पास हो जाने पर, उत्तरदायी शासनपद्धति में मन्त्रि-मण्डल को त्यागपत्र देना होता है। 'स्पीकर' के प्रति भी अविश्वास का प्रस्ताव रखा जा सकता है।

मंत्रिमण्डल के प्रति अविश्वास का प्रस्ताव ऐसे प्रान्तों की व्यवस्थापक सभाओं में ही स्वीकार हो सकता है, जहाँ सरकारी दल का विशाल बहुमत न हो।

प्रान्तीय व्यवस्थापक मण्डल के कानूनों का क्षेत्र— सन् १९३५ के विधान के अनुसार कानून सम्बन्धी विषय तीन सूचियों में विभक्त हैं:—(क) केन्द्रीय सूची, (ख) सम्मिलित सूची, और (ग) प्रांतीय सूची। जिन विषयों के सम्बन्ध में प्रांतीय व्यवस्थापक मण्डल क़ानून बना सकता है, वे संक्षेप में निम्नलिखित हैं:—

१—सार्वजनिक शान्ति [सेना छोड़कर], अदालत का संगठन और फ़ीस [संघ-न्यायालय छोड़कर]। २—संघ-न्यायालय को छोड़कर, अन्य न्यायालयों का इस सूची के विषयों के सम्बन्ध में निर्णय देने का अधिकार, माल की अदालतों की कार्यपद्धति। (३) पुलिस। (४) जेल। (५) प्रांत का सार्वजनिक ऋण। (६) कुछ प्रांतीय सरकारी नौकरियाँ, नौकरी-कमीशन। (७) प्रांतीय पेंशन। (८) प्रांतीय निर्माण-कार्य, भूमि और इमारतें। (९) सरकारी तौर से भूमि प्राप्त करना। (१०) पुस्तकालय तथा अजायबघर। (११) प्रांतीय व्यवस्थापक मण्डल के चुनाव। (१२) प्रांतीय मंत्रियों, तथा व्यवस्थापक सभाओं और परिषदों के सभापति, उपसभापति, और सदस्यों का वेतन और भत्ता। (१३) स्थानीय स्वराज्य संस्थाएँ। (१४) सार्वजनिक स्वास्थ्य और सफाई; अस्पताल, जन्म और मृत्यु का लेखा। (१५) तीर्थ-यात्रा। (१६) कब्रिस्तान। (१७)

शिक्षा। (१८) सड़कें, पुल, घाट और आवागमन के अन्य साधन, [बड़ी रेलों को छोड़कर]। (१९) जल-प्रबन्ध, आब-पाशी, नहर, बांध, तालाब और, जल से उत्पन्न होनेवाली शक्ति। (२०) कृषि, कृषि-शिक्षा और अनुसंधान, पशु-चिकित्सा, तथा मवेशीखाना। (२१) भूमि, मालगुज़ारी और किसानों के पारस्परिक सम्बन्ध। (२२) जंगल। (२३) खान, तेल के कुओं का नियंत्रण, और खनिज उन्नति। (२४) मछलियों का व्यवसाय। (२५) जंगली पशुओं की रक्षा। (२६) गैस, और गैस के कारखाने। (२७) प्रांत के अन्दर का व्यापार, वाणिज्य, मेले तमाशे, साहूकारी और साहूकार। (२८) सराय। (२९) उद्योग धंधों की उन्नति, माल की उत्पत्ति, पूर्ति और वितरण। (३०) खाद्य पदार्थों आदि में मिलावट; तोल और नाप (३१) शराब, और अन्य मादक वस्तुओं सम्बन्धी क्रय-विक्रय, और व्यापार [अफ़ीम की उत्पत्ति छोड़ कर]। (३२) ग़रीबों का कष्ट-निवारण, बेकारी। (३३) कारपोरेशनों का संगठन, संचालन और परिसमाप्ति; अन्य व्यापारिक, साहित्यिक, वैज्ञानिक, धार्मिक आदि संस्थाएँ; सहकारी समितियाँ। (३४) दान, और दान देने वाली संस्थाएँ। (३५) नाटक, थियेटर और सिनेमा। (३६) जुआ और सट्टा। (३७) प्रांतीय विषयों सम्बन्धी क़ानूनों के विरुद्ध होने वाले अपराध। (३८) प्रांत के काम के लिए आंकड़े तैयार करना। (३९) भूमि का लगान, और मालगुज़ारी सम्बन्धी पैमाइश। (४०) आबकारी, शराब, गांजा अफ़ीम आदि पर कर। (४१) कृषि सम्बन्धी आय पर कर।

(४२) भूमि, इमारतों पर कर। (४३) कृषि-भूमि के उत्तराधिकार सम्बन्धी कर। (४४) खनिज अधिकारों पर कर। (४५) व्यक्ति-कर। (४६) व्यापार, पेशे, धंधे पर कर। (४७ पशुओं और किश्तियों पर कर। (४८) माल की बिक्री और विज्ञापनों पर कर। (४९) चुंगी। (५०) विलासिता की वस्तुओं पर कर; इसमें दावत, मनोरंजन, जुए सट्टे पर का कर सम्मिलित है। (५१) स्टाम्प। (५२) प्रांत के भीतर के जलमार्गों में जानेवाले माल और यात्रियों पर कर (५३) मार्ग-कर [टोल]। (५४) अदालती फीस को छोड़कर किसी प्रांतीय विषय सम्बन्धी फीस।

इन विषयों के अतिरिक्त, सम्मिलित विषयों के सम्बंध में भी प्रांतीय व्यवस्थापक मंडल कानून बना सकता है; परन्तु केवल उसी दशा में, जबकि केन्द्रीय व्यवस्थापक मंडल न बनाये। सम्मिलित विषयों के दो भाग है। पहले भाग में कुछ मुख्य विषय ये हैं—फौजदारी कानून और कार्यपद्धति, किसी प्रांत में उसके बाहर के आदमियों से वसूल होनेवाला कर या मालगुजारी, विवाह और सम्बन्धविच्छेद (तलाक़), वसीहत, दस्तावेजों की रजिस्टरी, ट्रस्ट, ठेका, दिवाला, कानून, चिकित्सा और अन्य पेशे; पत्र-पत्रिकाएं, और छापेखाने, मोटर आदि। दूसरे भाग के मुख्य-मुख्य विषय निम्नलिखित हैं:—कारखाने, मजदूरों का कुशल क्षेम, मजदूर-संघ, बिजली, छूत की बीमारियों का रोकना, बेकारी का बीमा आदि। इन (दूसरे भाग के) विषयों के कानूनों को अमल में लाने के लिए केन्द्रीय सरकार प्रांतीय सरकारों को

आवश्यक हिदायतें कर सकती हैं। यदि प्रान्तीय तथा केन्द्रीय व्यवस्थापक मडल के बनाये, किसी विषय के कानूनों में परस्पर विरोध हो तो केन्द्रीय व्यवस्थापक मण्डल का बनाया कानून ठीक समझा जाता है।

कानून कैसे बनते हैं?——आय-व्यय सम्बंधी मसविदों के विशेष नियमों का उल्लेख आगे किया जायगा। उन्हें ध्यान में रखते हुए किसी कानून का मसविदा व्यवस्थापक सभा में, और जिस प्रान्त में व्यवस्थापक परिषद है किसी सभा में, उसके सदस्य द्वारा उपस्थित किया जा सकता है। मसविदा किसी ऐसे विषय के ही सबन्ध में हो सकता है, जो प्रान्तीय व्यवस्थापक मडल की अधिकार-सीमा के अन्दर हो। सरकारी मसविदा सरकार के उस सदस्य द्वारा उपस्थित किया जाता है, जो मसविदे के विषय का अधिकार रखता हो। जब कोई गैर-सरकारी सदस्य कोई मसविदा उपस्थित करना चाहता है तो उसे अपने इस विचार की, पहले सूचना देनी होती है। जब कोई मसविदा नियमानुसार उपस्थित हो चुकता है, तो वह प्रायः एक विशेष कमेटी में भेजा जाता है; इस कमेटी का चेयरमेन वह सरकारी सदस्य होता है, जो इस विषय का अधिकार रखता हो। उसकी रिपोर्ट उस सभा में पेश की जाती है, जिसका कि उक्त प्रस्तावक सदस्य हो। पश्चात् मसविदे के प्रत्येक वाक्यांश पर पृथक्-पृथक् विचार किया जाता है। सर्वसम्मति या बहुमत द्वारा स्वीकृत होने पर मसविदा उस सभा में पास हुआ कहा जाता है। यदि उस प्रान्त में दूसरी व्यवस्थापक सभा हो तो उपर्युक्त, पहली सभा में पास हुआ, मसविदा

दूसरी सभा में भेजा जाता है। जब वह इस सभा में भी उसी रूप में पास हो जाता है, या ऐसे संशोधनों सहित पास हो जाता है, जिन्हें पहली सभा स्वीकार कर ले, तो यह मसविदा दोनों सभाओं में, अर्थात, व्यवस्थापक मंडल में पास हुआ कहा जाता है।

यदि कोई मसविदा जो व्यवस्थापक सभा में पास होगया है, और व्यवस्थापक परिषद में भेज दिया गया है, परिषद में आने के बारह महीने समाप्त होने से पूर्व गवर्नर की स्वीकृति के लिए न भेजा जाय तो गवर्नर उस पर विचार करने और मत लेने के लिए दोनों सभाओं की संयुक्त बैठक करा सकता है। यदि गवर्नर को यह प्रतीत हो कि मसविदा अर्थ सम्बन्धी है, अथवा ऐसे विषय सम्बन्धी है, जिसका प्रभाव उन कार्यों पर पड़ेगा जिनके विषय में उसे अपने विवेक या व्यक्तिगत निर्णय का प्रयोग करना है, तो बारह महीने के पूर्व भी सभा की संयुक्त बैठक करा सकता है। यदि दोनों सभाओं की संयुक्त बैठक में मसविदा (यदि कोई संशोधन दोनों सभाओं द्वारा स्वीकृत हो तो उसके सहित) दोनों सभाओं के उपस्थित, और मत देनेवाले सदस्यों के बहुमत से पास होजाय तो वह दोनों सभाओं में (पृथक्-पृथक्) पास हुआ समझा जाता है।

संशोधन किस प्रकार उपस्थित किये जा सकते हैं, इसके सम्बन्ध में नियम निर्धारित हैं, और उनके सम्बन्ध में सभापति का स्थान ग्रहण करनेवाले व्यक्ति का निर्णय अन्तिम माना जाता है।

प्रान्तीय व्यवस्थापक सभा द्वारा, या जिस प्रान्त में व्यवस्थापक परिषद भी है, दोनों सभाओं द्वारा पास किया हुआ मसविदा

गवर्नर के सामने रखा जाता है। गवर्नर का यह अधिकार है, कि वह अपने विवेक से उसको सम्राट् की ओर से स्वीकार करे; या अपनी स्वीकृति को रोकले, या उसे गवर्नर-जनरल के विचारार्थ रख छोड़े। गवर्नर को यह भी अधिकार है कि वह मसविदे को इस संदेश सहित लौटादे कि सभा या सभाएँ मसविदे या उसके किन्हीं अंशों पर पुनः विचार करें, विशेषतया उसके द्वारा सूचित संशोधन को उपस्थित करने का विचार करें। इस पर सभा या सभाओं को उस मसविदे के सम्बन्ध में पुनः विचार करना पड़ता है।

जब कोई मसविदा प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडल से पास होजाने पर, गवर्नर-जनरल के विचारार्थ रख छोड़ा जाता है, तो गवर्नर-जनरल को अधिकार है कि वह सम्राट् की ओर से उसे स्वीकार करे या अपनी स्वीकृति को रोके; अथवा उसे सम्राट् की इच्छा प्रकट होने के लिए रख छोड़े। गवर्नर-जनरल चाहे तो गवर्नर को यह हिदायत कर सकता है कि वह उस मसविदे को सभा या सभाओं में, निर्धारित संदेश सहित भेज दे। जब मसविदा इस प्रकार लौटा दिया जाता है तो सभा या सभाओं को उस पर तदनुसार विचार करना होता है, और अगर ये उसे मूल रूप में, या संशोधनों सहित, पास करदें तो यह पुनः गवर्नर-जनरल के विचारार्थ रखा जायगा।

सम्राट् की इच्छा प्रकट होने के लिए रख छोड़ा हुआ मसविदा प्रान्तीय व्यवस्थापक मण्डलका कानून उस समय तक नहीं बनता, जब तक कि गवर्नर के सामने उपस्थित किये जाने के बारह

महीने के भीतर वह सार्वजनिक विज्ञप्ति द्वारा यह सूचित न कर दे कि सम्राट् ने उसकी स्वीकृति देदी है। गवर्नर या गवर्नर-जनरल द्वारा स्वीकार किये हुए किसी कानून को सम्राट् उसकी स्वीकृति के दिन से बारह महीने तक अस्वीकार कर सकता है; इस दशा में गवर्नर इस बात की सूचना सार्वजनिक विज्ञप्ति द्वारा कर देता है और, इस विज्ञप्ति के दिन से वह क़ानून रद्द हो जाता है।

इस प्रकार प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडल द्वारा पास किया हुआ मसविदा, जब उसे गवर्नर स्वीकार कर ले, और सम्राट् अस्वीकार न करें, अथवा, यदि गवर्नर उसे गवर्नर-जनरल या सम्राट् की स्वीकृति के लिए रख छोड़े तो जब क्रमशः इनकी स्वीकृति मिल जाय, क़ानून बन जाता है।

व्यवस्थापक सभा भंग होने पर क़ानूनों सम्बन्धी कार्रवाई—किसी प्रान्त की व्यवस्थापक सभा भंग होने के समय क़ानूनों के जो मसविदे उस सभा में विचाराधीन होंगे, या वहाँ पास होकर व्यवस्थापक परिषद में विचाराधीन होंगे वे रद्द होजायँगे। उन पर पुनः विचार उसी दशा में होगा, जब उनके सम्बन्ध में सब कार्रवाई फिर नये सिरे से की जायगी। इस प्रकार व्यवस्थापक सभा में स्वीकृत जिन मसविदों पर व्यवस्थापक परिषद में विचार होरहा होगा, उनको व्यवस्थापक सभा का नया चुनाव होने पर पुनः नियमानुसार पास करना होगा, तब जाकर व्यवस्थापक परिषद में उन पर विचार हो सकेगा। इसके विपरीत, व्यवस्थापक परिषद के जो मसविदे

परिषद् में विचाराधीन होंगे, और व्यवस्थापक सभा में पास न हुए होंगे, वे व्यवस्थापक सभा के भंग होने पर रद्द नहीं होंगे।

प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडल के अधिकारों की सीमा—गवर्नर-जनरल की पूर्व स्वीकृति बिना प्रान्तीय व्यवस्थापक मण्डल की सभा मे कोई ऐसा प्रस्ताव या संशोधन उपस्थित नहीं किया जा सकता :—(क) जो पार्लिमेंट के, ब्रिटिश भारत सम्बन्धी किसी क़ानून को रद्द (रिपील) या संशोधित करता हो, या जो उससे असङ्गत हो। (ख) जो गवर्नर-जनरल के किसी क़ानून या आर्डिनेंस को रद्द या संशोधित करता हो, या उससे असंगत हो। (ग) जिसका प्रभाव किसी ऐसे विषय पर पड़ता हो, जो गवर्नर-जनरल को नवीन विधान के अनुसार अपने विवेक से करना हो। (घ) जो योरपियन ब्रिटिश प्रजा सम्बन्धी फौजदारी कार्यपद्धति पर प्रभाव डालता हो।

गवर्नर की पूर्व स्वीकृति बिना कोई ऐसा प्रस्ताव या संशोधन उपस्थित नहीं किया जा सकता :—(१) जो गवर्नर के किसी क़ानून या आर्डिनेंस को रद्द या संशोधित करता हो, या उससे असंगत हो। (२) जो, पुलिस सम्बन्धी किसी कानून के प्रस्ताव को रद्द या संशोधित करता हो, या उस पर असर डालता हो।

प्रान्तीय व्यवस्थापक मण्डल को ऐसा क़ानून बनाने का अधिकार नहीं है, जिसका प्रभाव ब्रिटिश भारत या उसके किसी भाग के लिए पार्लिमेंट के कानून बनाने के अधिकार पर

पड़े; या जिस का सम्बन्ध सम्राट् या उसके परिवार से, सम्राट् के भारत में प्रभुत्व से, सपरिषद् सम्राट् की आज्ञाओं से, या भारत-मन्त्री के नवीन विधान के अनुसार बनाये हुये नियमों से, या गवर्नर या गवर्नर-जनरल के अपने विवेक या व्यक्तिगत निर्णय के अनुसार बनाये हुये नियमों से हो; या जिससे सम्राट् के किसी न्यायालय में अपील करने की अनुमति देने के विशेषाधिकार में कमी पड़े।

प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडल में सङ्घ न्यायालय, या हाईकोर्ट के किसी जज के, अपने कर्तव्य का पालन करने के समय के, व्यवहार पर वादानुवाद नहीं हो सकता। अगर गवर्नर अपने विवेक से यह तसदीक़ करदे, कि किसी क़ानून के मसविदे, उसके अंश या संशोधन से, उसके शान्ति रक्षा सम्बन्धी विशेष उत्तरदायित्व पर असर पड़ता है तो वह इस विषय का आदेश करके, उस मसविदे आदि के सम्बन्ध में होने वाली कार्रवाई को रोक सकता है।

गवर्नर के अधिकार; भाषण और सन्देश—गवर्नर अपने विवेक से व्यवस्थापक सभा में, और यदि उसके प्रांत में व्यवस्थापक परिषद् हो, तो किसी भी सभा में, या दोनों सभाओं के संयुक्त अधिवेशन में भाषण कर सकता है। वह दोनों में से प्रत्येक सभा में, किसी भी प्रस्ताव के सम्बंध में अपना संदेश भेज सकता है, चाहे वह मंडल के सामने उस समय विचाराधीन हो या न हो। जिस सभा में कोई संदेश भेजा जायगा, वह यथा-संभव शीघ्रता-पूर्वक संदेश में सूचित विषय का विचार करेगी।

गवर्नर के आर्डिनेंस—गवर्नर को आर्डिनेन्स अर्थात् अस्थाई क़ानून बनाने का अधिकार व्यवस्थापक मण्डल के अवकाश के समय भी होता है, और उसके कार्य-काल में भी। जब किसी प्रान्त के व्यवस्थापक मण्डल का कार्यकाल न हो, यदि गवर्नर को यह निश्चय हो जाय कि तत्कालीन परिस्थिति में तुरंत कार्रवाई करना आवश्यक है तो वह अपनी सम्मति के अनुसार आवश्यक आर्डिनेन्स बना सकता है। जिस आर्डिनेन्सके विषयके प्रस्ताव को व्यवस्थापक मण्डल में पेश किये जाने के लिए उसकी (गवर्नर की) पूर्व स्वीकृति की आवश्यकता होती, उस आर्डिनेन्स को बनाने में वह अपने व्यक्तिगत निर्णय का उपयोग करेगा; और जिस विषय के प्रस्ताव को व्यवस्थापक मण्डल में उपस्थित करने के लिए गवर्नर-जनरल की पूर्व स्वीकृति की आवश्यकता होती, या जिस विषय के प्रस्ताव को गवर्नर गवर्नर-जनरल के विचारार्थ रख छोड़ने की आवश्यकता समझता, उस विषय के आर्डिनेन्स को वह गवर्नर-जनरल के, उसके विवेक से दिये हुए आदेश बिना नहीं बनायेगा। इस प्रकार बनाये हुए आर्डिनेन्सका वही बल और प्रभाव होता है जो प्रांतीय व्यवस्थापक मण्डल द्वारा बनाये और गवर्नर से स्वीकृत क़ानून का होता है। परन्तु, ऐसा प्रत्येक आर्डिनेन्स प्रान्तीय व्यवस्थापक मण्डल के सामने रखा जायगा, और मण्डल की आगामी सभा होने से छः सप्ताह समाप्त होने पर अमल में आना बन्द हो जायगा, यदि उसको नापसन्द करने का प्रस्ताव प्रांतीय व्यवस्थापक सभा में (और अगर उस प्रांत में व्यवस्थापक परिषद हो तो उसमें भी) पास हो जाय।

ऐसे आर्डिनेन्स को सम्राट् उसी प्रकार रद्द कर सकता है, जैसे गवर्नर से स्वीकृत प्रांतीय व्यवस्थापक मण्डल के कानून को; और उसे गवर्नर जब चाहे वापिस ले सकता है।

अगर उपर्युक्त आर्डिनेन्स में कोई ऐसी बात है, जो प्रांतीय व्यवस्थापक मण्डल के बनाये और गवर्नर द्वारा स्वीकृत कानून में नहीं हो सकती, तो वह आर्डिनेन्स रद्द हो जायगा। इस प्रकार जैसा अधिकार प्रांतीय व्यवस्थापक मण्डल को कानून बनाने का है, वैसा ही उसके अवकाश के समय में गवर्नर को आर्डिनेन्स बनाने का है।

इसी प्रकार प्रान्तीय व्यवस्थापक मण्डल के कार्य-काल में भी गवर्नर जब कि वह अपने उत्तरदायित्व के विचार से आवश्यक समझे, निर्धारित काल के लिए वैसा ही कानून बना सकता है, जैसा कि मण्डल। निदान, उसको कुछ विषयों में मण्डल के समान अधिकार प्राप्त है, और वह मण्डल की इच्छा के विरुद्ध भी उनका, अस्थायी रूप से, प्रयोग कर सकता है।

गवर्नर के क़ानून—यही नहीं, कुछ दशाओं में वह स्थायी रूप से भी कानून बना सकता है। इस प्रसङ्ग में, विधान में यह नियम है कि यदि गवर्नर को किसी समय यह निश्चय हो जाय कि उसके उत्तरदायित्व को पालन करने के लिए उसके विवेक से काम करने या उसके व्यक्तिगत निर्णय का उपयोग करने के सम्बन्ध में कानून से व्यवस्था होनी चाहिए तो वह सन्देश भेज कर सभा या सभाओं को तत्कालीन परिस्थिति का परिचय कराएगा, और वह या तो 'गवर्नर का कानून' बना देगा, या

अपने संदेश के साथ प्रस्ताव का मसविदा लगा देगा। दूसरी दशा में, वह एक मास के बाद 'गवर्नर का कानून' बना देगा, जो या तो उसी रूप में होगा जैसे कि उसने सभा या सभाओं में मसविदा भेजा था, या उसमें उसके विवेक के अनुसार आवश्यक संशोधन होंगे; हाँ, ऐसा करने से पूर्व यदि किसी सभा की ओर से उसे संशोधन सम्बन्धी कोई निवेदन-पत्र दिया जाय तो वह उस पर विचार करेगा।

'गवर्नर के कानून' का वही बल और प्रभाव होगा, और वह उसी प्रकार सम्राट् द्वारा रद्द किया जा सकेगा, जैसे गवर्नर से स्वीकृत, प्रांतीय व्यवस्थापक मण्डल का कानून। और अगर इस कानून में कोई ऐसी बात होगी जिसके सम्बन्ध में प्रांतीय व्यवस्थापक मण्डल कानून नहीं बना सकता तो उपर्युक्त कानून रद्द हो जायगा। ऐसे प्रत्येक क़ानून की सूचना गवर्नर-जनरल द्वारा भारत-मन्त्री को दी जायगी, और वह इसे पार्लिमेंट की दोनों सभाओं के सामने रखेगा। गवर्नर आर्डिनेन्स या कानून या बनाने का कार्य अपने विवेक से करेगा, परन्तु वह इस विषय के किसी अधिकार का उपयोग गवर्नर-जनरल की, उसके विवेक से दी हुई, सहमति प्राप्त किये बिना न करेगा।

गवर्नरों को आर्डिनेंस जारी करने, या क़ानून बनाने का अधिकार सन् १९३५ के विधान से ही मिला है।

पृथक् या अंशतः पृथक् क्षेत्रों की व्यवस्था—इन क्षेत्रों के सम्बन्ध में प्रांतीय सरकार के प्रसंग में लिखा जा चुका है।

प्रांतीय (या केन्द्रीय) व्यवस्थापक मंडल का कोई का कानून या उसका कोई भाग इन पर उस समय तक लागू नहीं होता, जब तक कि गवर्नर सार्वजनिक सूचना द्वारा ऐसी हिदायत न करे। गवर्नर इन क्षेत्रों के लिए नियम बना सकता है, और, उसके नियम उन, केन्द्रीय या प्रांतीय व्यवस्थापक मंडल के, या अन्य भारतीय कानूनों को रद्द या संशोधित कर सकते हैं, जो इन क्षेत्रों सम्बन्धी हों। ये नियम गवर्नर-जनरल के सामने उपस्थित किये जायँगे, और उसकी स्वीकृति होने तक इन पर कोई अमल न होगा। सम्राट् को गवर्नर-जनरल द्वारा स्वीकृत इन नियमों को रद्द करने का वैसा ही अधिकार है, जैसा गवर्नर-जनरल द्वारा स्वीकृत प्रांतीय व्यवस्थापक मण्डल के कानूनों को रद्द करने का है।

आय-व्यय के विषयों सम्बन्धी कार्य-पद्धति— गवर्नर प्रति वर्ष प्रांतीय व्यवस्थापक मंडल के सामने उस वर्ष के अनुमानित आय-व्यय का नक्शा उपस्थित कराता है। उसमें दो प्रकार की मदों की रक़में पृथक्-पृथक् दिखायी जाती हैं। (१) जो पूर्व निश्चित हैं, जिनपर प्रांतीय व्यवस्थापक सभा का मत नहीं लिया जाता, और, (२) जिन पर मत लिया जाता है। कर-निर्धारण तथा व्यय के लिए माँग के प्रस्तावों पर व्यवस्थापक परिषदों का मत नहीं लिया जाता।

व्यय की निम्नलिखित मदों पर प्रान्तीय व्यवस्थापक सभा को मत देने का अधिकार नहीं है।—

(क) गवर्नर का वेतन और भत्ता, तथा उसके कार्यालय

सम्बन्धी निर्धारित व्यय।

(ख) प्रान्तीय ऋण सम्बन्धी व्यय, सूद आदि।

(ग) मंत्रियों और एडवोकेट-जनरल का वेतन और भत्ता।

(घ) हाईकोर्ट के जजों का वेतन और भत्ता।

(च) 'पृथक्' क्षेत्रोंका शासन सम्बन्धी व्यय।

(छ) अदालती निर्णयों का अनुसार होनेवाला व्यय।

(ज) अन्य व्यय जो नवीन शासन विधान या किसी प्रांतीय व्यवस्थापक मंडल के कानून के अनुसार किया जाना आवश्यक हो।

इसके अन्तर्गत उन सब कर्मचारियों के वेतन और भत्ते भी सम्मिलित हैं, जो भारत-मंत्री द्वारा नियुक्त होते हैं, जैसे भारतीय सिविल सर्विस या भारतीय पुलिस सर्विस आदि के कर्मचारी।

कोई प्रस्तावित व्यय उक्त मदों में से किसी में आता है, या नहीं, इसका निर्णय गवर्नर अपने विवेक से करता है। (क) को छोड़ कर अन्य मदों पर व्यवस्थापक मण्डल में वादानुवाद हो सकता है। उपर्युक्त (क) से (ज) तक की मदों को छोड़ कर अन्य विषयों के खर्च के प्रस्ताव व्यवस्थापक सभा के मत के लिए माँग के रूप में रखे जाते हैं। इस सभा को अधिकार है कि यह किसी माँग को स्वीकार करे, अस्वीकार करे, या उसे कुछ घटाकर स्वीकार करे।

गवर्नर की सिफ़ारिश के बिना, किसी काम के लिए रुपये की माँग का प्रस्ताव नहीं किया जा सकता। यदि सभा व्यय सम्बन्धी कोई माँग स्वीकार न करे, या घटाकर स्वीकार करे

और, इससे गवर्नर की सम्मति में उसके उत्तरदायित्व को पूरा करने में बाधा उपस्थित हो तो वह अपने विशेषाधिकार से, रद्द की हुई या घटाई हुई माँग की पूर्ति कर सकता है।

व्यय का पूरक नक्शा—यदि किसी वर्ष निर्धारित व्यय से अधिक खर्च करने की आवश्यकता हो तो गवर्नर सभा या दोनों सभाओं के सामने उस अधिक खर्च को सूचित करनेवाला पूरक नक्शा उपस्थित कराएगा, और पूर्वोक्त नियम की बातें उस नक्शे और उस खर्च के सम्बन्ध में उसी प्रकार लागू होंगी, जैसे वर्षिक आय-व्यय-अनुमान-पत्र और उसमें उल्लिखित व्यय के सम्बन्ध में लागू होती हैं।

कर-निर्धारण सम्बन्धी विशेष नियम—निम्नलिखित प्रकार के कानून के मसविदे या उनके संशोधन का प्रस्ताव गवर्नर की सिफारिश बिना नहीं किया जाता; और, व्यवस्थापक परिषद् में नहीं रखा जाता—(क) जिसमें कर लगाने या बढ़ाने की व्यवस्था हो। (ख) जिसमें प्रांतीय सरकार द्वारा रुपया उधार लेने की व्यवस्था हो।

सारांश यह कि गवर्नर की इच्छा बिना मन्त्रिमंडल या व्यवस्थापक सभा किसी कार्य के लिए खर्च स्वीकार नहीं कर सकती। जिन रक़मों को गवर्नर अपना उत्तरदायित्व पूरा करने के लिए आवश्यक समझता है, उन पर सभा का मत नहीं लिया जाता, यहाँ तक कि सभा द्वारा अस्वीकृत रक़म को भी, गवर्नर उचित समझे तो खर्च किये जाने की स्वीकृति दे सकता है।

बजट अधिवेशन——व्यवस्थापक मण्डल की एक मुख्य बैठक फ़रवरी के अन्त, और मार्च के आरंभ में होती है। इसमें आगामी वर्ष के प्रांतीय आय-व्यय का अनुमान-पत्र उपस्थित किया जाता है; वैसे, वास्तव में यह अनुमान-पत्र सदस्यों के पास १५ दिन पहले भेज दिया जाता है। सदस्य भिन्न-भिन्न खर्चों का विचार करते हैं, और यदि उन्हें किसी खर्च में कुछ कटौती की सूचना देनी हो तो वे, सभा में बजट उपस्थित किये जाने से तीन दिन पहले, उस सूचना को सेक्रेटरी के पास भेज देते हैं। यदि किसी खास मद में खर्चा की कमी न करते हुए केवल उस विभाग की कार्य-प्रणाली की आलोचना या शिकायत करनी हो तो उस मद में कटौती करके, एक रुपये की स्वीकृति सूचित की जाती है। इससे उस कटौती सम्बन्धी चर्चा के प्रसंग में सदस्य उस विभाग के विषय में अपना विचार प्रकट सकते हैं।

बजट बड़ा होता है; वह सभा में पढ़ा नहीं जाता। उसे उपस्थित करते समय अर्थ-मन्त्री उसके सम्बन्ध में अपना भाषण करता है। पश्चात् (अगले दिन) उस बजट पर चर्चा होती है, इसमें सदस्य कुल बजट पर अपने साधारण विचार प्रकट करते हैं। इसके बाद एक हफ्ते तक सदस्यों द्वारा प्रस्तुत, भिन्न-भिन्न मदों की, कटौतियों की चर्चा होती है। पहले किसी विभाग की नीति की आलोचना करने के उद्देश्य से प्रस्तुत की हुई कटौतियां पर विचार होता है। पश्चात्, अन्य कटौतियों का विचार होकर, एक-एक मद के खर्च की मांग की जाती है। बजट को

बहस के लिए निश्चित किये हुए सप्ताह के अन्तिम दिन के पाँच बजे कटौतियों की समाप्ति ('गिलोटिन') हो जाती है; इसके बाद किसी कटौती पर बहस नहीं होती। सदस्य के आग्रह करने पर कटौती की रक़म पर मत लिये जाते हैं, और यदि वह स्वीकार होजाय तो उस मद की रकम को उसमें आवश्यक कमी करके मंजूर किया जाता है। इस प्रकार सारा शेष कार्य थोड़ी देर में ही निपटा लिया जाता है।

विधानात्मक शासन न चलने पर, कार्य में लाये जाने वाले नियम—यदि गवर्नर को कभी यह निश्चय हो जाय कि तत्कालीन परिस्थिति में प्रांतीय शासन का कार्य इस विधान के अनुसार नहीं चल सकता तो वह घोषणा निकाल कर सूचित कर सकता है कि (क) अमुक कार्य वह स्वयं अपने विवेक से करेगा, या, (ख) प्रांतीय संस्था या अधिकारियों के सब या कुछ अधिकारों का वह स्वयं उपयोग करेगा। इस घोषणा में इसको व्यवहृत करने के उपयोगी आवश्यक नियमों का उल्लेख किया जा सकता है। हाँ, गवर्नर हाईकोर्ट के अधिकार नहीं ले सकता और न इस न्यायालय सम्बन्धी नवीन शासन-विधान के सब या या किसी नियम को स्थगित कर सकता है।*

पीछे होनेवाली दूसरी घोषणा से, ऐसी घोषणा मन्सूख की जा सकती है, अथवा उसमें परिवर्तन किया जा सकता है। इस घोषणा की सूचना भारत-मंत्री को दी जायगी, और उसके द्वारा

*इस समय पांच प्रान्तों में विधानात्मक शासन स्थगित है, और, गवर्नरों द्वारा शासन हो रहा है।

पार्लिमेंट की दोनों सभाओं के सामने रखी जायगी। जो घोषणा पहले की घोषणा को मंसूख करने वाली न हो, वह छः माह के बाद अमल में आनो बन्द हो जायगी। अगर ऐसी घोषणा को जारी रखने का प्रस्ताव पार्लिमेंट की दोनो सभाओं से स्वीकार होजाय (या होता रहे), तो यह घोषणा, मंसूख न किये जाने की दशा में, अपनी अवधि के पश्चात् बारह मास तक जारी रहेगी। परन्तु ऐसी घोषणा तीन साल से अधिक व्यवहृत न होगी।

अगर गवर्नर घोषणा द्वारा, प्रान्तीय व्यवस्थापक मण्डल के कानून बनाने का अधिकार ग्रहण कर ले, तो उसका बनाया हुआ कानून घोषणा का प्रभाव समाप्त होने के दो साल बाद तक जारी रहेगा, सिवाय उस दशा के जब कि उसे कोई अधिकार-प्राप्त व्यवस्थापक संस्था नियमानुसार दो साल से पूर्व संशोधित करदे।

उपर्युक्त व्यवस्था करने में, गवर्नर अपने विवेक से कार्य करेगा, और ऐसे विषय सम्बन्धी घोषणा, गवर्नर-जनरल की, उसके विवेक से दी हुई, सहमति प्राप्त किये बिना न की जायगी।

विशेष वक्तव्य—गवर्नर के विशेष उत्तरदायित्वों का, और कानून-निर्माण सम्बन्धी विशेषाधिकारों का आयोजन करके, उसे प्रांतीय आय के अधिकांश भाग को स्वयं खर्च करने का अधिकार देकर, मंत्रियों को सभी महत्व-पूर्ण अधिकारों से वंचित करके, एवं छः प्रान्तों में दो-दो व्यवस्थापक सभाओं की स्थापना करके, प्रांतीय स्वराज्य का मानो उपहास किया गया है।

बारहवाँ परिच्छेद

चीफ-कमिश्नरों के प्रान्त



पिछले चार परिच्छेदों में, ब्रिटिश भारत के, गवर्नरों के प्रान्तों के विषय में लिखा गया है। इनमें सन् १९३५ के विधान ने उत्तरदायी शासन पद्धति स्थापित करने का अधूरा-सा प्रयत्न किया है। परन्तु ब्रिटिश भारत में ऐसे भी तो प्रान्त हैं, जिन में इस पद्धति का श्रीगणेश तक नहीं हुआ है। ये हैं, चीफ-कमिश्नरों के प्रान्त।

चीफ-कमिश्नरों के प्रान्त निम्नलिखित हैं:— १—ब्रिटिश बिलोचिस्तान। २—देहली। ३—अजमेर-मेरवाड़ा। ४—कुर्ग। ५—अन्दमान-निकाबार। [पुस्तक छपने के समय यह जापान के अधिकार में है।] ६—पन्थपिपलोदा।

सन् १९३५का विधानके बनने से पूर्व भी छः ही प्रांत ऐसे थे, जिनका शासन चीफ-कमिश्नरों द्वारा होता था। उन छः प्रांतो में से पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त अब गवर्नर का प्रान्त है; और पंथ-पिपलोदा नया प्रान्त बनाया गया है।

पंथपिपलौदा पहले होलकर राज्य का अंग था। खारूआ नामक कस्बा, जो मध्यभारत में महीदपुर स्टेशन से चार मील है, और पास के आठ-नौ गाँव मिलाकर यह प्रान्त बनाया गया है। यह सबसे छोटी चीफ-कमिश्नरी है। इसका क्षेत्रफल २६ वर्ग मील, और जनसंख्या लगभग पाँच हजार है। इसकी वार्षिक आय ४१ हजार रु० है, जिसमेंसे दो-तिहाई से अधिक तो जागीरदार ही ले लेते हैं। इसका राजनैतिक महत्त्व इसलिए है कि अजमेर की तरह यह प्रान्त देशी राज्यों से घिरा हुआ है। यह गवालियर, इन्दौर, देवास और जावरा के मध्य में है।

इन प्रान्तों का शासन—इन प्रान्तों का शासन चीफ-कमिश्नर द्वारा, गवर्नर-जनरल करता है। चीफ़--कमिश्नरों की नियुक्ति गवर्नर-जनरल अपने विवेक के अनुसार करता है। कुछ चीफ़--कमिश्नर राजप्रबन्ध सम्बन्धी अन्य कार्य भी करते हैं। ब्रिटिश बिलोचिस्तान का चीफ़--कमिश्नर बिलोचिस्तान की रियासतों का, और अजमेर-मेरवाड़े का चीफ़-कमिश्नर राज--पूताने की रियासतों का एजन्ट होता है। कुर्ग का चीफ़-कमिश्नर मैसूर राज्य के लिए भारत-सरकार के रेज़ीडेंट का काम करता है। पंथ-पिपलौदा का चीफ़-कमिश्नर मध्यभारत का रेज़ीडेंट है।

चीफ़-कमिश्नर के प्रान्तों में से केवल कुर्ग को छोड़कर अन्य किसी प्रान्त में व्यवस्थापक सभा नहीं है। उन सब के लिए कानून भारतीय व्यवस्थापक मण्डल द्वारा ही बनाये जाते हैं।* कुर्ग की व्यवस्थापक सभा भी छोटी सी, तथा शक्तिहीन है।

गवर्नरों के प्रान्तों में, गवर्नरों को पुलिस और आतङ्कवाद सम्बंधी जो अधिकार हैं, और कुछ (गुप्त) कागज़ात तथा जानकारी सम्बन्धी जो नियम हैं, वे चीफ कमिश्नरों के प्रान्तों में भी हैं; वहाँ पर जो बात गवर्नर और प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडल के सम्बन्ध में कही गयी है, उसके स्थान पर यहाँ गवर्नर-जनरल और केन्द्रीय व्यवस्थापक मण्डल समझना चाहिए।

---

* भारतीय व्यवस्थापक सभा में केवल पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त और देहली का ही एक-एक निर्वाचित प्रतिनिधि है; शेष प्रान्त इस से सर्वथा वंचित हैं। राजपरिषद में तो चीफ़-कमिश्नरों के किसी भी प्रान्त का निर्वाचित प्रतिनिधि नहीं है।

चिन्तनीय स्थिति—प्रांतीय स्वराज्य की स्थापना करने वाले विधान से भी, चीफ़-कमिश्नरों के प्रांतों की स्थिति पूर्ववत् बना रहना अत्यन्त चिंतनीय है। इन प्रांतों में प्रायः कमिश्नर ही छोटे रूप में वास्तविक चीफ-कमिश्नर होता है, उसके हाथ में समस्त शक्ति, अधिकार, और योजनाएँ बनाने की सत्ता केन्द्रित होती है। क़ानून के अनुसार उसे ही शासन, प्रबन्ध तथा न्याय आदि के विविध कार्यों का नियन्त्रण-अधिकार प्राप्त है। यद्यपि कमिश्नर चीफ-कमिश्नर के अधीन होते हैं, और चीफ-कमिश्नर गवर्नर-जनरल के प्रति उत्तरदायी होता है, जहाँ तक जनता का संबन्ध है, इन प्रान्तों के उक्त दोनों अधिकारी निरंकुश और स्वेच्छाचारी कहे जा सकते हैं। इन प्रान्तों में कोई प्रबन्धकारिणी (या मन्त्रिमण्डल) नहीं है।

इन प्रान्तों का अस्तित्व क्यों बनाये रखा गया है? ब्रिटिश बिलोचिस्तान, अजमेर-मेरवाड़ा, कुर्ग, और पंथ-पिपलौदा से उनके निकटवर्ती देशी राज्यों पर नियन्त्रण रह सकता है। अंदमन द्वीप में असंख्य जङ्गी जहाज़ सुरक्षित रह सकते हैं। हवाई अड्डे के लिए भी यहाँ व्यवस्था होने की सम्भावना है। देहली तो केन्द्रीय सरकार की राजधानी है; यद्यपि ब्रिटिश सरकार नवीन विधान से केन्द्र में भी उत्तरदायित्व देने की बात कह रही है, वह यथा-सम्भव अपनी सत्ता का परित्याग करना नहीं चाहती; क्या इसी विचार से राजधानी में यह पुराने ढंग की अनुत्तरदायी शासन-पद्धति चलायी जा रही है? अस्तु, चीफ-कमिश्नरों के के प्रांत हमारी पराधीनता, और ब्रिटिश सरकार की प्रभुता

के द्योतक हैं, जो उत्तरदायी शासन की दृष्टि से सर्वथा अवांछनीय है।

इसका सुधार—इन प्रांतों की इस चिन्तनीय स्थिति का जितना शीघ्र अन्त हो उतना ही अच्छा। इसका एक उपाय यह है कि इन प्रांतों में, इनके, चीफ-कमिश्नर के ही प्रांत रहते हुए, आवश्यक सुधार कर दिया जाय। इस दशा में, प्रत्येक प्रांत में उसकी जनसंख्या तथा शक्ति के अनुसार एक व्यवस्थापक सभा का आयोजन होना चाहिए। साथ ही एक छोटा सा मंत्रिमण्डल भी होने की आवश्यकता है, जो चीफ-कमिश्नर को प्रत्येक शासन-कार्य में सफल सहयोग प्रदान करे, और व्यवस्थापक सभा के प्रति उत्तरदायी हो। यह व्यवस्था मितव्ययितापूर्वक की जानी चाहिए। गवर्नरों के कांग्रेसी प्रान्तों में मंत्री केवल ५००) रु० मासिक लेकर काम करते रहे हैं। चीफ-कमिश्नरों के प्रांतों में भी ऐसे योग्य और स्वार्थ-त्यागी सज्जन मिल सकते हैं, जो इससे भी कम पारिश्रमिक लेकर, सेवा-भाव-पूर्वक मंत्रित्व ग्रहण करें। इस प्रकार चीफ-कमिश्नरों के प्रांत छोटे, तथा कम आय वाले होने पर भी अन्य उन्नत प्रान्तों की भांति प्रगति कर सकते हैं।

चीफ-कमिश्नरों के प्रांतों की शासन-व्यवस्था के सुधार का दूसरा मार्ग यह है कि इन प्रांतों में से जिसका, जिस 'गवर्नर के प्रांत' से अधिक मेल बैठ सके, उसे उसके साथ संलग्न कर दिया जाय, जिससे उसके निवासियों को अपने राजनैतिक अधिकारों का यथेष्ट उपयोग और विकास करने का अवसर मिले।

सन् १६२१ ई० में अजमेर-मेरवाड़े के भविष्य के सम्बन्ध में अपनी योजना उपस्थित करने के लिए, संयुक्तप्रान्त के एक उच्च अधिकारी मिस्टर ई० एच० ऐश्वर्थ के अधीन, एक कमेटी नियुक्त की गयी थी। उसने विविध योजनाओं का विचार करके यह सिफारिश की थी, कि इस प्रान्त की शासन-व्यवस्था को सुधारने का यही उपाय है कि इसे संयुक्तप्रान्त के साथ सम्बन्धित कर दिया जाय। सन् १८७१ ई० से पूर्व इस प्रांत के शासन न्याय, कानून, शिक्षा की व्यवस्था संयुक्तप्रांत के साथ, उसके समान ही थी।

कुछ स्वार्थी व्यक्ति चाहते हैं कि अजमेर मेरवाड़ा जिस-जिस रियासत से मिलकर बना है, उस-उसमें बाँट दिया जाय। देशी राज्यों की अनुत्तरदायी शासनपद्धति को देखते हुए, यह बात सर्वथा अनिष्टकारी है।

तेरहवाँ परिच्छेद

जिले का शासन

प्राक्कथन—ब्रिटिश भारत में प्रायः प्रान्त और जिले के बीच में कमिश्नरियों का दर्जा है, अतः पहले उनके विषय में जान लेना आवश्यक है। मदरास प्रान्त को छोड़कर प्रत्येक बड़े प्रान्त में चार-पाँच कमिश्नरियाँ हैं। कमिश्नरी के अफ़सर को कमिश्नर कहते हैं। यह शासन सम्बन्धी कोई कार्य स्वयं नहीं करता, केवल ज़िला-अफसरों के काम की जाँच-पड़ताल करता है। जिलों से जो रिपोर्ट या पत्रादि प्रान्तीय सरकार के पास जाते हैं, वे सब कमिश्नरों के हाथ से गुजरते हैं। कमिश्नरों को म्युनिसपैलटियों

का काम देखने-भालने के भी कुछ अधिकार हैं; परन्तु इनका विशेष सम्बन्ध मालगुजारी से रहता है। ये मालगुजारी के बन्दोबस्त ❀ में परामर्श देते हैं, और, विशेष दशा में उसे वसूल करने के कार्य को स्थगित कर सकते हैं। ये माल के मुक़दमों की अपील भी सुनते हैं।

मदरास प्रान्त में कमिश्नरियाँ नहीं हैं। वहाँ कमिश्नरों के बिना भी सब काम सुचारू रूप से हो रहा है। अन्य प्रान्तों में भी इनकी कोई आवश्यकता नहीं है। कांग्रेसी प्रान्तों के मंत्रिमण्डल ने अपने समय (१९३७-३९) में इन्हें हटाने का प्रयत्न किया था। कमिश्नर के पद को तोड़ने का अन्तिम अधिकार भारत-मन्त्री को है। इससे बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा, और विशेष सफलता प्राप्त न हुई।

शासन-व्यवस्था में ज़िले का स्थान—प्रत्येक कमिश्नरी में तीन या अधिक ज़िले होते हैं। प्रत्येक ज़िले का औसत क्षेत्रफल चार हज़ार वर्गमील तथा उसकी औसत मनुष्य-संख्या नौ लाख है। कोई ज़िला छोटा है, कोई बड़ा। इसी प्रकार कहीं की आबादी कम है, कहीं की बहुत अधिक। ज़िलों की सीमा निश्चित करने में प्रायः यह विचार रखा जाता है कि प्रत्येक ज़िले के शासक को मालगुज़ारी तथा प्रबन्धादि का काम

❀ मालगुज़ारी के बन्दोबस्त के लिए पंजाब और मध्यप्रांत में फाइनेन्शल (अर्थ) कमिश्नर हैं; और संयुक्तप्रान्त, बिहार और बंगाल में चार मेम्बरों तक के 'रेवन्यू बोर्ड' हैं। ये कलेक्टरों और कमिश्नरों के इस विषय सम्बन्धी कार्य का निरीक्षण करते हैं।

बहुत-कुछ समान ही करना पड़े। ब्रिटिश भारत में जिलों की संख्या लगभग २३० है।

ब्रिटिश भारत में शासन की इकाई जिला ही है। राज्य की कल जैसी एक जिले में चलती दिखाई पड़ती है, वैसी ही प्रायः अन्य जिलों में भी है। जैसे अफसर एक जिले में काम करते हैं, वैसे ही दूसरों में भी हैं। जनता के कामकाज का मुख्य स्थान और लोक-व्यवहार का केन्द्र जिला है। जो मनुष्य अन्य जिलों या प्रांतों से कुछ सम्बन्ध नहीं रखते, उन्हें भी बहुधा अपने जिले के भिन्न-भिन्न स्थानों में, शासन या न्याय सम्बन्धी कुछ-न-कुछ काम पड़ जाता है। यहाँ के प्रबन्ध को देखकर जन-साधारण समस्त देश के राजप्रबन्ध का अनुमान किया करते हैं।

जिलाधीश— प्रत्येक जिला, एक जिलाधीश के अधीन होता है। जिलाधीश जिले का 'कलेक्टर' भी होता है। कलेक्टर का अर्थ है, वसूल करनेवाला। उसका एक मुख्य कार्य मालगुजारी वसूल करना होने के कारण उसे साधारण बोलचाल में 'कलेक्टर' कहते हैं। (पंजाब, बर्मा, अवध और मध्यप्रांत में वह डिप्टी कमिश्नर कहलाता है)

जिले के लोगों के लिए जिलाधीश ही सरकार का प्रतिनिधि है। उच्च कर्मचारियों को वे भले ही न जानें, जिलाधीश से तो उन्हें काम पड़ता ही रहता है। इसी की योग्यता पर सरकार के नियमों से प्रजा का यथेष्ट लाभ होना, अथवा न होना निर्भर है; और, जैसा इसका बर्ताव रहता है, उसी से अधिकांश जन समाज सरकार की नीति का अन्दाज़ लगाते हैं। यह जो कार्य करता

है, उसे सरकार का कार्य कहा जाता है; इसकी कही हुई बात सरकार की कही हुई बात समझी जाती है। सरकार को बहुत सी बातों का ज्ञान उतना या वैसा ही होता है, जैसा यह कराता है। इससे यह कहा जा सकता है कि जिलाधीश सरकार का केवल हाथ-मुँह ही नहीं आंख-कान भी है।

उसके अधिकार——उसकी संयुक्त उपाधि 'कलेक्टर-मजिस्ट्रेट' उसके डबल कार्य की बोधक है। कलेक्टर की हैसियत से वह जिले की मालगुज़ारी वसूल करता है। वह अपनी अमलदारी में भूमि सम्बन्धी मामलों पर विचार करता है, सरकार और प्रजा के सम्बन्ध का ध्यान रखता है, और ज़मींदारों और किसानों आदि के झगड़े का फैसला करता है। दुर्भिक्ष अथवा अन्य आवश्यकता के समय कृषकों को सरकारी सहायता उसीकी सम्मति के अनुसार मिलती है। इसके अतिरिक्त, स्थानीय आबकारी, स्टांप ड्यूटी आदि भी उसी के सुपुर्द है। जिले के खज़ाने का भी वही उत्तरदाता है। जिला- मजिस्ट्रेट की हैसियत से वह ज़िले भर की छोटी अदालतों का निरीक्षण करता है। उसे अव्वल दर्जे की मजिस्ट्रेटी के अधिकार होते हैं, जिनसे वह एक अपराध पर साधारणत: दो साल तक की क़ैद और एक हज़ार रुपये तक का जुर्माना कर सकता है। जिले का सब प्रकार की सुख शान्ति का वही उत्तरदाता है। वह स्थानीय पुलिस का निरीक्षण भी करता है। उसे म्यूनिस्पेलटियों तथा ज़िला-बोर्डों की निगरानी का अधिकार है। इस बात के निश्चय करने में, कि कहाँ पुल, सड़क इत्यादि बनने चाहिएँ, कहाँ सफाई का प्रबन्ध होना चाहिए,

तथा ज़िले के किन-किन भागों को स्थानीय स्वराज्य का अधिकार मिलना चाहिए, उसी की सम्मति प्रामाणिक मानी जाती है। ज़िले में जो भी प्रबन्ध ठीक न हो, उसका सुधार करना, और हर एक बात की रिपोर्ट उच्च कर्मचारियों के पास भेजना, उसी का कर्तव्य है। ज़िले की आन्तरिक दशा जानने तथा उसे सुधारने के विचार से उसे देहातों में दौरा करना होता है।

इस प्रकार इतने भिन्न-भिन्न प्रकार के कार्य उसके सुपुर्द हैं कि उसके लिए, उन सब को स्वयं भली प्रकार चलाना दुस्तर है। इसीलिए बहुत से काम उसके अधीन कर्मचारी ही कर डालते हैं, और वह उनके कागजों पर हस्ताक्षर कर देता है। हाँ, इससे उसकी जिम्मेवारी कम नहीं होती; जिले के शासन सम्बन्धी सब कार्य का उत्तरदाता वही होता है। आजकल सरकारी काम में कागजी कार्रवाई बहुत बढ़ गयी है, इससे जिलाधीश को जनता की वास्तविक दशा जानने के लिए, उससे सीधे सम्पर्क में आने का अवकाश बहुत कम मिलता है। वह प्रायः अपने अधीन कर्मचारियों की रिपोर्ट या कुछ खास-खास लोगों की बातों के आधार पर ही अपनी राय कायम कर लेता है।

अधिकारों की अधिकता—जिलाधीश के इतने अधिकारों से ब्रिटिश सरकार की नीति यह प्रतीत होती है कि अधिक-से-अधिक अधिकार एक व्यक्ति में केन्द्रित रहें और इस प्रकार के अपने थोड़े से ही व्यक्तियों के सहारे वह देश का शासन सूत्र सुगमता पूर्वक संभाले रह सके। भारतवर्ष में

जो अंगरेजी शासन-यंत्र है, जिलाधीश उसके आधार-स्तम्भ या पाये कहे जा सकते हैं और ब्रिटिश सरकार को यह अभीष्ट नहीं प्रतीत होता कि जिलाधीशों के कुछ अधिकारों को अन्य अधिकारियों में विभाजित करके लोकतंत्रात्मक भावों का परिचय दे। जो हो, वास्तविक प्रान्तीय स्वराज्य के अमल में आने पर यह कार्य करना ही होगा।

जिलाधीश का प्रभाव— जिलाधीश को शासन-प्रबन्ध के सम्बन्ध में कुछ स्वतंत्र अधिकार नहीं हैं. वह प्रान्तीय सरकार के आदेशानुसार कार्य करने वाला कर्मचारी है, तथापि जिले भर में उसका प्रभाव बहुत अधिक होता है। वह सब बड़े बड़े धनी तथा प्रतिष्ठित व्यक्तियों के सीधे सम्पर्क में आता है, सेठ साहूकार जमींदार या महन्त सब उसको प्रसन्न रखना चाहते हैं। बहुत से आदमी उसके नामपर कुछ सार्वजनिक कार्य करने के इच्छुक रहते हैं। यदि उसमें लोक-सेवा की अभिलाषा हो और उसका व्यक्तित्व ऊँचा हो तो वह उन्हें विविध हितकर योजनाओं के लिए प्रोत्साहन दे सकता है, और जिले के निवासियों की सामूहिक उन्नति करने में बहुत सफलता प्राप्त कर सकता है। इसके विपरीत, यदि उसे जनता पर अपना रौबदौब या आतंक जमाने की ही चिन्ता हो तो उसका प्रबन्ध-काल जिले के लिए एक अभिशाप ही होगा।

शासन और न्याय का पृथक्करण—पहले कहा जा चुका है कि जिलाधीश को शासन सम्बन्धी अधिकार भी हैं; और न्याय सम्बन्धी भी। वह अपने जिले की शान्ति का उत्तरदाता है, इस लिए पुलिस पर

उसका नियंत्रण रहता है। पुलिस उसे इस बात की सूचना देती रहती है कि जिले में किस-किस व्यक्ति का व्यवहार या आचरण उसकी दृष्टि में आपत्तिजनक है। जिस व्यक्ति को पुलिस अपराधी ख्याल करती है, उसकी गिरफ्तारी के लिए वह जिलाधीश की अनुमति ले सकती है, अथवा जिलाधीश भी जिस व्यक्ति को चाहे पुलिस द्वारा गिरफ्तार करा सकता है। जब जिलाधीश (या कलेक्टर डिप्टी कलेक्टर) पुलिस द्वारा चलाये हुए ऐसे मुकदमों का फैसला करता है तो मानो वादी स्वयं ही न्यायाधीश बनने का ढोंग रचता है। ऐसी दशा में न्याय-कार्य स्वतंत्रता पूर्वक न होना, पुलिस की बात रखने का प्रयत्न होना और अभियुक्त के साथ अन्याय होना स्वाभाविक ही है। इस लिए यह आवश्यक है कि शासन और न्याय-कार्य पृथक्-पृथक् हों, जिलाधीश या उसके सहायक या अधीन पदाधिकारियों को मजिस्टेट के अधिकार न रहें। फौजदारी मुकदमों का फैसला (दीवानी मुकदमों की तरह) मुन्सफी की अदालतों द्वारा हुआ करे, कारण मुन्सिफ जिलाधीश के अधीन नहीं होते, उन पर उसका प्रभाव नहीं पड़ता, वे स्वतंत्रता पूर्वक फैसला कर सकते हैं।

इससे यह भी लाभ होगा कि जिलाधीशों को अपने अन्य कर्तव्यों का पालन करने के लिए अधिक अवकाश मिलेगा। निस्सन्देह इस सुधार को अमल में लाने के लिए कुछ खर्च अधिक होगा, परन्तु न्याय और जनहित के लिए वह अत्यावश्यक ही है।

जिले के अन्य कार्यकर्ता—जिले में अनेक प्रकार के कार्य होते हैं, यथा :—शान्ति रखना, झगड़ों का फैसला करना, माल-गुजारी वसूल करना, सड़क, पुल आदि बनवाना, अकाल में लोगों की सहायता करना रोगियों का इलाज करना, म्यूनिसिपल और लोकल बोर्डों की निगरानी, जेलखाना और पाठशाला आदि का निरीक्षण करना इत्यादि। इन विविध कार्यों के लिए जिले में

कई एक अफसर रहते हैं, जैसे पुलिस-सुपरिंटेण्डेण्ट, डिस्ट्रिक्ट-जज, मुन्सिफ, एग्जीक्यूटिव इंजिनियर, सिविल सर्जन, जेल-सुपरिण्टेंडेण्ट, तथा स्कूल-इन्स्पेक्टर आदि। ये अफसर अपने पृथक्-पृथक् विभागों के उच्च कर्मचारियों के अधीन होते हैं, परन्तु शासन के विचार से, जिला-जज और मुन्सिफ आदि को छोड़कर, सब पर जिला-मजिस्ट्रेट ही प्रधान होता है। 'जिले का हाकिम' वही कहा जाता है। उसके कार्य में सहायता देने के लिए डिप्टी और सहायक मजिस्ट्रेट रहते हैं।

जिले के कार्यकर्ताओं को कानून बनाने का अधिकार नहीं होता। इनका मुख्य काम यह है कि ये सरकार के कानून को व्यवहार में लावें, तथा उसकी आज्ञाओं का पालन करें; हाँ, कानून बनाने में अप्रकट रूप से इतना भाग इनका अवश्य रहता है कि इनकी रिपोर्ट के आधार पर सरकार स्थानीय परिस्थिति का अनुमान करती है, और तदनुसार कानून बनाती है।

जिले के भाग, और उनके अधिकारी—शासन की दृष्टि से प्रत्येक जिले के जो भाग होते है, उन्हें सबडिविजन कहते हैं। हर एक सबडिविजन एक डिप्टीकलेक्टर, अथवा 'ऐक्सट्रा एसिस्टेंट कमिश्नर' के अधीन रहता है। अपनी-अपनी अमल-दारी में, सबडिविजनों के अफसरों के अधिकार थोड़े-बहुत भेद से, कलेक्टर-मजिस्ट्रेटों के समान ही होते हैं। इन्हें एस० डी० ओ० भी कहते हैं, यह 'सबडिविजनल आफीसर' का संक्षेप है।

बंगाल, तथा बिहार को छोड़कर, अन्यत्र प्रत्येक जिले के अन्तर्गत ५-६ तहसील (या ताल्लुके) हैं। जिले के ये भाग

सब-डिप्टीकलेक्टरों या तहसीलदारों के अधीन हैं; ये कर्मचारी प्रजा और सरकार को एक दूसरे के विषय में आवश्यक सूचना देते रहते हैं, और, अपने इलाके के माल और फौजदारी के काम के भी उत्तरदाता हैं। ये अपने हल्के में दौरा करके म्युनिसपेलटियों और जिला-बोर्डों का भी काम देखते हैं। इनके सहायक कर्मचारी नायब तहसीलदार, पेशकार, कानूनगो, रेवन्यू-इन्स्पेक्टर आदि होते हैं। प्रायः एक तहसील में एक या अधिक परगने, और कई सर्कल या हल्के होते हैं। परगने का अधिकारी 'हाकिम परगना' कहलाता है।

गाँवों के अधिकारी—तहसीलदारों के अधीन, गाँवों में नम्बरदार (पटेल), चौकीदार और पटवारी रहते हैं। नम्बरदार गाँव का सबसे बड़ा अधिकारी होता है। यह जमींदारों से माल-गुजारी तथा आबपाशी की रकम वसूल करके तहसोल में भेजता है; वहाँ से वह जिले में भेजी जाती है। यह अपने गाँव में शांति रखने का प्रयत्न करता है। चौकीदार पहरा देता और चौकसी करता है। वह पुलिस में प्रति सप्ताह यह खबर देता है कि गाँव में उस सप्ताह के भीतर कितनी मृत्यु हुई, और कितने बालकों का जन्म हुआ। वह गाँव की चोरी, कत्ल तथा अन्य अपराधों की भी रिपोर्ट करता है। चौकीदारों का अफसर 'मुखिया' कहलाता है। पटवारी अपने हल्के (ग्राम या ग्राम-समूह) के किसानों और जमींदारों के भूमि सम्बन्धी अधिकारों के कागज तथा रजिस्टर आदि रखता है। कोई खेत या उसका कुछ हिस्सा बिक जाय या किसो खेत का मालिक बदल जाय या

मरजाय तो पटवारी इस बात की रिपोर्ट तहसील में करता है, और अपने कागज़ों में उचित सुधार कर लेता है। वह खेतों के नक्शे तथा 'खेवट' 'खतौनी' आदि रखता है।

बंगाल बिहार में, तथा संयुक्तप्रांत के कुछ भागों में (जहाँ मालगुजारी का स्थायी बन्दोबस्त है), तहसीलदार, नम्बरदार और पटवारी आदि कर्मचारी नहीं रहते। सबडिविजनल अफसर के नीचे, थानेदार तथा एक-एक ग्राम-समूह के लिए दफादार, और प्रत्येक ग्राम में चौकीदार रहते हैं।

चौदहवाँ परिच्छेद

प्रान्तीय न्याय-कार्य

पिछले छः परिच्छेदों में प्रान्तों के शासन और व्यवस्था-कार्य का विचार किया गया। अब न्याय-कार्य का विषय लिया जाता है। इस विषय का सिद्धान्त सम्बन्धी कुछ आवश्यक बातें पहले परिच्छेद में बतायी जा चुकी हैं।

हाईकोर्ट—किसी प्रान्त में न्याय करनेवाली संस्थाओं में सर्वोच्च हाईकोर्ट या इसका-सा अधिकार रखनेवाली दूसरे नाम की संस्था होती है। सन् १९३५ ई० के विधान से पूर्व हाईकोर्टों के फैसलों की अपील इंगलैंड की प्रिवी कौंसिल में होती थी, अब उनके कुछ फैसलों की अपील यहां के संघ-न्यायालय में हो सकती है, जिसके सम्बन्ध में पहले लिखा जा चुका है।

शासन-विधान से निम्नलिखित न्यायालय 'हाईकोर्ट' माने गये हैं :—कलकत्ता, मद्रास, बम्बई, इलाहाबाद, लाहौर, पटना, तथा नागपुर के हाईकोर्ट; अवध का चीफ कोर्ट; पश्चिमोत्तर सीमा प्रांत, और सिंध के चीफ़ कमिश्नर्स कोर्ट । इनके अतिरिक्त किसी अन्य न्यायालय को भी सपरिषद सम्राट् ब्रिटिश भारत में हाईकोर्ट के अधिकार दे सकता है। वह कोई नया हाईकोर्ट भी बना सकता है।

साधारणतया प्रत्येक प्रान्त के लिए एक पृथक् हाईकोर्ट होता है। परन्तु कलकत्ते का हाईकोर्ट बंगाल और आसाम के वास्ते, लाहौर का हाईकोर्ट पंजाब और देहली के वास्ते, पटना का हाईकोर्ट बिहार और उड़ीसा के वास्ते हैं, और इलाहाबाद का हाईकोर्ट संयुक्तप्रान्त के केवल आगरा भाग के लिए है, अवध के लिए नहीं है।

जजों की संख्या—प्रत्येक हाईकोर्ट में एक चीफ़-जस्टिस और कुछ जज होते हैं। उनकी संख्या निश्चित करने का अधिकार सम्राट् को है। इस समय विभिन्न हाईकोर्टों के जजों की अधिकतम संख्या, चीफ़-जस्टिस सहित, निम्नलिखित निर्धारित है :—कलकत्ता हाईकोर्ट २०, मद्रास १६, लाहौर १६, बम्बई १४, इलाहाबाद १३, पटना १२, नागपुर ८। अवध का चीफ़कोर्ट ६, सिंध और पश्चिमोत्तर सीमाप्रांत के जूडीशल कमिश्नर-कोर्ट क्रमशः ६ और ३।

जजों की नियुक्ति—जज के पद पर ऐसा व्यक्ति नियुक्त किया जा सकता है, जो—(१) कम-से-कम दस साल तक बेरिस्टर रह चुका हो, (२) इंडियन सिविल सर्विस का कम-से-कम दस साल तक सदस्य रहा हो, और कम-से-कम तीन साल तक जिला-जज का काम कर चुका हो, (३) ब्रिटिश भारत में

कम-से-कम पाँच वर्ष ऐसे पद पर रहा हो, जो सबजज या जज खफीफा के पद से नीचा न हो, (४) कम-से-कम दस वर्ष तक किसी हाईकोर्ट का वकील, लीडर या एडवोकेट रहा हो।

इस प्रकार जजों के पद, इण्डियन सिविल सर्विस के सदस्यों को भी पर्याप्त संख्या में प्राप्त हो सकते हैं। इन पदों पर नियुक्ति सम्राट् द्वारा होती है; आवश्यकता होने पर अस्थायी रूप से गवर्नर-जनरल भी योग्य व्यक्तियों को नियुक्त कर सकता है।

सन् १९३५ के विधान से पूर्व भी इन जजों की नियुक्ति सम्राट् द्वारा ही होती थी, परन्तु उस समय चीफ-जस्टिस अपनी सिफारिश प्रान्तीय सरकार को भेजता था, और यह सिफारिश भारत-सरकार द्वारा भारत-मंत्री के पास भेजी जाती थी; अस्थायी नियुक्ति प्रान्तीय सरकार द्वारा की जाती थी। अब प्रान्तीय स्वराज्य की स्थापना हो जाने से इस विषय का पूर्ण अधिकार प्रान्तीय सरकारों अर्थात् मंत्रिमण्डलों को दिया जाना चाहिए था। परन्तु यह नहीं किया गया।

पहले, नियमों के अनुसार इंडियन सिविल सर्विस के सदस्य दो-तिहाई से अधिक जगहों पर नियुक्त नहीं हो सकते थे। आवश्यकता थी, कि न्यायालयों के लिए उन की नियुक्ति बिल्कुल बन्द कर दी जाती; परन्तु अब तो, उनकी संख्या का कोई प्रतिबन्ध न रहने से, उनके लिए मार्ग और भी प्रशस्त हो गया है।

जजों का वेतनादि—प्रत्येक जज साठ वर्ष की आयु तक कार्य कर सकता है। जजों का वेतन, भत्ता, मार्ग-व्यय, छुट्टी का वेतन और पेन्शन आदि समय-समय पर सपरिषद् सम्राट् निश्चय करता है। जज की नियुक्ति हो जाने पर, उसके वेतन या छुट्टी अथवा पेन्शन आदि के अधिकार में कमी नहीं की जाती। इस समय कलकत्ता हाईकोर्ट के चीफ-जस्टिस का वार्षिक वेतन

७२,०००) निर्धारित है; मदरास, बम्बई, इलाहाबाद, पटना और लाहौर के हाइकोर्टों के चीफ-जस्टिसों में से प्रत्येक का ६०,०००), और इन सब हाईकोर्टों के जजों में से प्रत्येक का ४८,०००) है। नागपुर हाईकोर्ट के चीफ-जस्टिस का वार्षिक वेतन ५०,०००) और उसके जजों में से प्रत्येक का ४०,०००) है।

जो हाईकोर्ट जिस प्रान्त में स्थित है, उसका व्यय उस प्रांत का गवर्नर अपने व्यक्तिगत निर्णय से स्वीकार करता है; उस पर प्रान्तीय व्यवस्थापक सभा का मत नहीं लिया जाता। जो हाईकोर्ट एक से अधिक प्रान्तों के लिए काम करते हैं, उनका व्यय उन प्रान्तों में बँट जाता है।

हाईकोर्टों का अधिकार-क्षेत्र—हाईकोर्टों के क्षेत्र और अधिकार क़ानून से निश्चित हैं, और सम्राट् की आज्ञा से ही उनमें परिवर्तन हो सकता है। प्रत्येक हाईकोर्ट में दो भाग होते हैं, 'आरिजिनल' और अपील भाग। साधारणतया 'आरिजिनल' भाग का कार्य्य क्षेत्र हाईकोर्ट वाले नगर की सीमा से बाहर नहीं होता। इस भाग में उस स्थान के सब दीवानी मामले जाते हैं, जो 'स्माल काज कोर्ट' अर्थात् अदालत ख़फ़ीफ़ा में नहीं जा सकते; तथा ऐसे सब फौजदारी मुक़दमे जाते हैं, जिनका फैसला अन्य स्थानों में सेशन जज की अदालतों में हो। इसी भाग में फ़ौजदारी मामलों के उन अपराधियों का विचार होता है, जिनका विचार मुफ़स्सिल अदालतों में नहीं हो सकता। हाईकोर्ट वादी-प्रतिवादी की प्रार्थना पर अथवा न्याय के विचार से, मुक़दमों को सब-जजों की अदालतों से उठाकर अपने इस (आरिजिनल) भाग

में ले सकते हैं।

अपील भाग में 'आरिजनल' भाग की तथा मुफ़स्सिल अदालतों की अपील सुनी जाती हैं।

हाईकोर्ट अपनी नियमित सीमा की सब दीवानी तथा फ़ौजदारी अदालतों का नियंत्रण व निरीक्षण करते हैं। प्रान्तीय सरकारों की स्वीकृति से वे उनकी कार्य-प्रणाली के नियम बना सकते हैं; 'अटर्नी', अमीन, और मोहर्रिर आदि की फ़ीस की दर ठहरा सकते हैं। वे किसी मुकदमे को या उसकी अपील को एक अदालत से दूसरी, उसके समान या उससे बड़ी, अदालत में बदल सकते हैं; एवं कोर्ट की 'रिटर्न' अर्थात् लेखा माँग सकते हैं। प्रायः माल (लगान) सम्बन्धी मुक़दमों का, हाईकोर्ट के 'आरिजनल' भाग में फ़ैसला होने का रिवाज नहीं है। हाईकोर्टों का सब काम अंगरेजी भाषा में होता है।

रेवन्यू कोर्ट—मालगुजारी सम्बन्धी सब बातों का फ़ैसला करने के लिए कहीं-कहीं रेवन्यू कोर्ट, और कहीं-कहीं सेटलमेंट (बन्दोबस्त) कमिश्नर हैं। इनके अधीन कमिश्नर, कलेक्टर, तहसीलदार आदि रहते हैं, जिन्हें लगान, मालगुजारी और आबपाशी आदि के मामलों का फ़ैसला करने का निर्धारित अधिकार है।

दीवानी अदालतें—हाईकोर्टों के नीचे दीवानी और फ़ौजदारी की अदालतें हैं। भिन्न-भिन्न प्रान्तों में इनके संगठन तथा नियमों में कुछ-कुछ भेद हैं। प्रायः हर एक ज़िले में एक ज़िला-जज होता है। उसकी अदालत ज़िले में सब से बड़ी

दीवानी अदालत है। उसमें नीचे की अदालतों के फ़ैसलों की अपील हो सकती है। ज़िलाजज के नीचे सबार्डिनेट जज या सबजज होते हैं। (इन्हें संयुक्तप्रान्त में सिविल जज कहते हैं)। कलकत्ता, बम्बई, मद्रास तथा कुछ अन्य स्थानों में 'स्माल काज़ कोर्ट' या अदालत खफ़ीफ़ा स्थापित हैं, जो छोटे-छोटे मामलों में जल्दी तथा कम ख़र्च से अंतिम निर्णय सुना देती है।

फ़ौजदारी अदालतें—प्रत्येक ज़िले में, या कुछ ज़िलों के एक समूह में, एक 'सेशन्स कोर्ट' रहता है। इसका प्रधान भी ज़िला-जज ही होता है; जो फ़ौजदारी के अधिकार रखने से, सेशन जज का कार्य सम्पादन करता है। उसे अन्य सहकारी सेशन जजों से इस काम में सहायता मिल सकती है। फ़ौजदारी के मामले में सेशन्स कोर्टों के अधिकार हाईकोर्टों सरीखे ही हैं; हाँ, मृत्यु सम्बन्धी हुक्म की पुष्टि हाईकोर्ट से होनी चाहिए। इनमें फ़ैसला जूरी या असेसरों की सहायता से होता है। असेसर जज को अपनी सम्मति पर चलने के लिए बाध्य नहीं कर सकते।

सेशन जजों के नीचे मजिस्ट्रेट रहते हैं। बम्बई, कलकत्ता और मद्रास में 'प्रेसीडेन्सी मजिस्ट्रेट', छावनियों में 'छावनी-मजिस्ट्रेट' एवं कुछ नगरों और क़स्बों में 'आनरेरी' अर्थात् अवैतनिक मजिस्ट्रेट और पहले, दूसरे, या तीसरे दर्जे के मजिस्ट्रेट रहते हैं। आनरेरी मजिस्ट्रेटों का पद अब कई स्थानों में तोड़ दिया गया है। प्रेसीडेन्सी-मजिस्ट्रेटों तथा अव्वल दर्जे के मजिस्ट्रेटों को दो साल तक की क़ैद और एक हज़ार रुपये तक का जुर्माना करने का अधिकार होता है। दूसरे दर्जे के मजिस्ट्रेट

छः मास तक की क़ैद और दो सौ रुपये तक जुर्माना कर सकते हैं। तीसरे दर्जे के मजिस्ट्रेट एक मास तक की क़ैद और पचास रुपये तक जुर्माना कर सकते हैं।

अपील पद्धति—यहाँ दूसरे और तीसरे दर्जे के मजिस्ट्रेट के फ़ैसले के विरुद्ध, जिला मजिस्ट्रेट के सामने अपील हो सकती है; और, अव्वल दर्जे के मजिस्ट्रेट के फ़ैसले की अपील सेशन्स कोर्ट में चल सकती है। जिन मनुष्यों को मुकदमे की प्रारम्भिक दशा में सेशन्स कोर्ट ने दोषी ठहराया हो, उनकी अपील उस प्रान्त के चीफ़ कोर्ट या हाईकोर्ट में हो सकती है। जब मृत्यु का हुक्म दे दिया जाता है तो प्रान्त के शासक या वायसराय के पास दया के लिए दरख़ास्त दी जा सकती है। दीवानी के मुकदमों में भी अपील के लिए कम स्थान नहीं है। मुन्सिफ़ के फ़ैसलों की अपील जिला-जज के यहाँ हो सकती है, जो यदि चाहे तो उसे सबजज के पास भेज सकता है। सब-जज या जिला-जज के फ़ैसलों की अपील कुछ दशाओं में जुडीशल कमिश्नर्स कोर्ट में, या हाईकोर्ट में हो सकती है। हाईकोर्टों के कुछ फैसलों की अपील संघ-न्यायालय में हो सकती है; खास-खास हालतों में अपील इंगलैंड की प्रिवी-कौंसिल तक भी पहुँचती है।

पंचायतें—प्रत्येक प्रान्त में पंचायतों को कुछ छोटे-छोटे दीवानी और फौजदारी मामलों का फैसला करने का अधिकार है। इनमें प्रायः पाँच या अधिक नामजद सदस्य होते हैं, उनमें एक सरपंच होता है। पंचायत में पेश होनेवाले मुकदमों में किसी

पक्ष की ओर से कोई वकील पैरवी नहीं कर सकता। ये वादी प्रतिवादी से कुछ फीस ले सकती हैं। इनके द्वारा फैसला कराने में अन्य खर्च नाम मात्र का होता है; और इनके फैसलों की अपील भी नहीं होती। ये अपराधियों पर कुछ जुर्माना कर सकती हैं, इन्हें कैद करने का अधिकार नहीं होता। कुछ समय से इनका विस्तार और वृद्धि हो रही है। आशा है, इससे जनता की, मुकदमेबाजी द्वारा होनेवाली, हानि कम हो जायगी। नागरिकों को चाहिए कि इनके कार्य में यथेष्ट सहयोग प्रदान करें।



पन्द्रहवाँ परिच्छेद

सरकारी नौकरियाँ



[शासन-कार्य का जनता के लिए यथेष्ट हितकर होना, या न होना कायदे-कानूनों के अतिरिक्त, बहुत-कुछ सरकारी कर्मचारियों की योग्यता, अनुभव और देश-हितैषिता पर निर्भर होता है। इसलिए, इस परिच्छेद में, यहाँ की सरकारी नौकरियों के सम्बन्ध में विचार किया जाता है।]

सरकारी कर्मचारी—भारतवर्ष में कुछ सर्वोच्च पदों के लिए नियुक्तियाँ सम्राट् द्वारा होती हैं। इनमें गवर्नर-जनरल, कमांडरनचीफ तथा बङ्गाल, बम्बई और मदरास के गवर्नर, आदि शामिल हैं। इनका उल्लेख प्रसंगानुसार किया जा चुका है। इन पदों से नीचे इम्पीरियल सर्विस के सदस्यों का दर्जा है।

इन्हें प्राय: 'इण्डियन सिविल सर्विस' * (आई० सी० एस०) कहते हैं। ये कर्मचारी प्राय: प्रांतों का ही काम करते हैं, परन्तु क्योंकि इनकी भर्ती भारत-मंत्री द्वारा समस्त भारत के लिए होती है, ये आल-इण्डिया (अखिल भारतवर्षीय) सर्विस वाले कहलाते हैं। इनमें से ही जिला-मजिस्ट्रेट, कलेक्टर जिला-जज, सेशन जज, कमिश्नर, और रेवन्यू बोर्ड के सदस्यों, आदि की नियुक्ति होती है। यहाँ तक कि ये बंगाल, बम्बई और मदरास को छोड़कर, अन्य प्रांतों के गवर्नर तक हो सकते हैं।

इन कर्मचारियों के बाद, दूसरा नम्बर उन कर्मचारियों का है, जो प्राविन्शल (प्रान्तीय) सिविल सर्विस (पी० सी० एस०) के भिन्न-भिन्न विभागों में, उनकी योग्यतानुसार नियत किये जाते हैं। भर्ती के लिए कभी तो परीक्षा होती है, और कभी नीचे की सर्विस के आदमी उसमें बदल दिये जाते हैं। प्रांतीय सिविल सर्विस में प्रान्त का नाम होता है, जैसे मदरास सिविल सर्विस। इस सर्विस में डिप्टी कलक्टर, एक्सट्रा-असिस्टेण्ट कमिश्नर, मुन्सिफ, स्कूलों के इन्सपेक्टर, कालेजों के प्रोफेसर, सब-जज, असिस्टेण्ट सर्जन आदि कर्मचारी होते हैं।

प्रान्तीय सर्विस के बाद सबार्डिनेट सर्विस या अधीन कर्मचारियों का नम्बर है। इनमें छोटे-से-छोटे कर्मचारी सम्मिलित

* एक महाशय का कथन है कि 'इंडियन सिविल सर्विस' न तो इण्डियन है (इसमें अधिकांश आदमी योरपियन होते हैं), न यह 'सिविल' अर्थात् सभ्य या शिष्टाचारयुक्त है, और, न यह 'सर्विस' (नौकरी) ही है, क्योंकि अनेक कर्मचारी अपने आपको नौकर समझने की अपेक्षा मालिक समझते हैं।

हैं। इनकी नियुक्ति भिन्न-भिन्न प्रान्तीय सरकारें, अथवा उनके विविध विभागों के उच्चाधिकारी करते हैं।

इण्डियन सिविल सर्विस की प्रभुता—भारतवर्ष में सव-साधारण के लिए, इंडियन सिविल सर्विस का ही राज्य है। गाँवों की जनता कलेक्टर को ही सरकार समझती है। शासन-प्रबन्ध करने के अतिरिक्त, उस फौजदारी मामलों में न्याय करने का भी अधिकार होने से, उसकी शक्ति बहुत अधिक होजाती है। और, कलेक्टर तथा जनता से सम्बन्ध रखनेवाले अन्य उच्च अधिकारी इंडियन सिविल सर्विस के ही होते हैं। वास्तव में भारतीय शासनपद्धति में इस सर्विस का वही स्थान है, जो मनुष्य के शरीर में रीढ की हड्डी का होता है। इसीलिए सम्राट, भारत-मंत्री, वायसराय और गवर्नर आदि सब उच्च अधिकारी समय-समय पर इसकी प्रशंसा करते रहते हैं, और इसकी मान-मर्यादा, तथा शान-शौकत बनाये रखने के लिए भरसक प्रयत्न करते रहते हैं। शासनपद्धति सम्बन्धी नियमों में इस सर्विस वालों की माँगों का पूरा ध्यान रखा जाता है; इनके लिए उच्च पद अधिक-से-अधिक संख्या में सुरक्षित रखे जाते हैं, और भारतीय लोकमत की अवहेलना करके भी जैसे-बने, इन्हें प्रसन्न और सतुष्ट किया जाता है। यह कार्य निर्धन भारतीय जनता के लिए बहुत मँहगा पड़ता है। विशेष चिन्तनीय बात तो यह है कि भारतवर्ष को स्वराज्य देने का दावा करते हुए भी ब्रिटिश अधिकारी इस सर्विस को अधिकांश विदेशी बनाये रखने, तथा इसे भारतीय जनता के प्रतिनिधियों अथवा मंत्रियों के नियत्रण से

मुक्त रखने की व्यवस्था करते हैं। * इस सम्बन्ध में कुछ नियमों का विचार पिछले परिच्छेदों में हो चुका है, यहाँ इस सर्विस के विषय में कुछ अन्य आवश्यक बातें बतायी जाती हैं।

कुछ ज्ञातव्य बातें—इस सर्विस में भर्ती होने की परीक्षा पहले इंगलैंड में ही होती थी, अब भारतवर्ष में भी होती है। यह परीक्षा प्रतियोगिता से होती है, अर्थात किसी वर्ष जितने कर्मचारियों की आवश्यकता होती है, उतने ही, परीक्षा में अच्छे नम्बर पाने वाले व्यक्ति चुन लिये जाते हैं। पहले इंगलैंड की परीक्षा पास किये हुए व्यक्तियों में से चुनाव होता है, उसके बाद भारतवर्ष की परीक्षा पास वालों का नम्बर आता है। इसका परिणाम यह होता है कि इंगलैंड में परीक्षा पास करने वालों की, चुनाव में आने की अधिक सम्भावना होती है, और भारतीय परीक्षा का महत्व कम रह जाता है। पुनः भारतीय परीक्षा के फल के आधार पर चुने हुए व्यक्तियों को दो वर्ष विशेष शिक्षा प्राप्त करने के लिए इंगलैंड जाना होता है (इसका खर्च सरकार देती है)। इसके पश्चात् ये व्यक्ति भारतवर्ष के किसी प्रान्त में नौकरी के वास्ते भेजे जा सकते हैं।

सन् १९१९ ई० के शासन-सुधारों के अनुसार निश्चय हुआ था कि जिन सरकारी नौकरियों के लिए भरती इंगलैंड में होती है, और जिनमें योरपियन और भारतीय दोनों लिये जाते हैं, उनमें सैकड़े पीछे ३३ भारतवासी ही भरती किये जायँ, और इनमें

* 'भारतीय राजस्व' (दूसरा संस्करण) में इस विषय पर हमने विशद प्रकाश डाला है।

डेढ़ फी-सदी वार्षिक वृद्धि तब तक होती रहे, जब तक एक सामयिक कमीशन नियत होकर फिर से सब मामले की जाँच करे। सन् १९३२ ई० में नियुक्त 'ली कमीशन' ने उच्च पदों पर काम करने वाले योरपियनों के लिए खूब पेन्शन तथा भत्ते आदि दिये जाने की सिफारिश की। यद्यपि भारतीय व्यवस्थापक सभा ने उन सिफारिशों को कार्यान्वित करने का प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया था, ब्रिटिश सरकार ने भारत-सरकार से सहमत होकर प्रधान सिफारिशों को स्वीकार कर लिया। इससे यहाँ शासन-व्यय, जो पहले ही अधिक था, और भी बढ़ गया।

हिन्दुस्तान में कुल आई० सी० एस० १००७ हैं। इनमें से ४१६ हिन्दुस्तानी हैं और नयी व्यवस्था के मुताबिक यह सम्भव है कि इनकी संख्या ५० फ़ीसदी हो जाय। अंगरेज लोग गुलाम जनता को अपने एजंट बनाने के लिए क्या चालें चलते हैं, इसका यह एक अपूर्व उदाहरण है। बढ़िया काम और खूब पेन्शन देकर वे अंगरेजी पढ़े-लिखे हिन्दुस्तानियों को अपनी ओर खींच लेते हैं। अंगरेजों का कहना है कि इसके जरिये वे पढ़े-लिखे हिन्दुस्तानियों को स्वशासन की शिक्षा दे रहे हैं। साम्राज्यवादियों की चालबाजियों में यह एक अत्यंत सफल और चतुर चाल है। हिन्दुस्तान के शासन का ढाँचा ही आई० सी० एस० है। इनके पीछे सैनिक शक्ति तो है ही। चालाक अंगरेज यहाँ पर भी हिन्दुस्तानियों से ही सारा कारोबार चलाते हैं। [जान गंथर की 'इन साइड एशिया' के सन् १९३८ के संस्करण से।]

नवीन शासन-विधान और सरकारी नौकरियाँ—सन् १९३५ के विधान में बड़ी बड़ी सरकारी नौकरी वालों के हितों का पूर्ण ध्यान रखा गया है। उनकी नियुक्ति, वेतन, पेन्शन और

भत्ते आदि के नियमों में इस बात की व्यवस्था की गई है कि उनकी सुविधा तथा मर्यादा की यथेष्ट रक्षा हो, तथा वे यथा-सम्भव अपने पद पर बने रहें। यदि उन्हें किसी कारण निर्धारित समय से पूर्व नौकरी से पृथक् होना पड़े तो उन्हें या उनके परिवारों को आर्थिक कठिनाइयों का सामना न करना पड़े; भारत-मंत्री उन्हें भारत-सरकार या प्रांतीय सरकार के खजाने से, मुनासिब हर्जाना दिलाये। उनके वेतन भत्ता और पेन्शन आदि के सरकारी व्यय पर व्यवस्थापक मण्डल का मत नहीं लिया जायगा। रेलवे, आयात-निर्यात, डाक, तार आदि में एंग्लो-इण्डियनों की नियुक्ति का लिहाज रखा जाने का स्पष्ट आदेश है; यहाँ तक कि यह भी कहा गया है कि प्रतिशत जितने पदों पर वे अब तक रहे हैं, उसका भी भविष्य में विचार रखा जाय।

साधारणतः केन्द्र से सम्बन्धित पदों पर नियुक्तियाँ करने, तथा उनकी नौकरी की शर्तें तय करने का कार्य गवर्नर-जनरल करेगा, और किसी प्रांत सम्बन्धी यह कार्य उस प्रांत का गवर्नर करेगा। परन्तु इण्डियन सिविल सर्विस, इण्डियन मेडिकल सर्विस और इण्डियन पुलिस सर्विस तथा आबकारी विभाग के पदाधिकारियों की नियुक्ति भारत-मन्त्री ही करेगा। साधारणतया जो व्यक्ति ब्रिटिश प्रजा नहीं है, उसकी भारतवर्ष में सरकारी पद पर नियुक्ति न हो सकेगी।

पबलिक सर्विस कमीशन—नवीन शासन-विधान के अनुसार एक पबलिक सर्विस कमीशन केन्द्र के लिए (इसे संघीय पबलिक सर्विस कमीशन कहते हैं), और एक-एक

पबलिक सर्विस कमीशन प्रत्येक प्रान्त के लिए रहता है। यदि दो या अधिक प्रांत समझौता कर लेतो वे मिलकर एक ही कमीशन रख सकते है। अथवा. एक कमीशन सब प्रान्तों के लिए भी कार्य सम्पादन कर सकता है। संघीय कमीशन के सभापति और सदस्यों की नियुक्ति गवर्नर-जनरल द्वारा और प्रांतीय कमीशन के सभापति और सदस्यों की नियुक्ति गवर्नर द्वारा होगी। प्रत्येक कमीशन के कम-से-कम आधे सदस्य ऐसे होंगे, जो नियुक्ति के समय भारतवर्ष में कम-से-कम दस वर्ष नौकरी कर चुके हों। संघीय और प्रान्तीय कमीशनों के सदस्यों की संख्या, तथा उन की नौकरी की शर्तें क्रमशः गवर्नर-जनरल और गवर्नर तय करेगा। इन कमीशनों का कार्य क्रमशः केन्द्र तथा प्रांत की नौकरियों के लिए नियुक्तियाँ करने के वास्ते परीक्षा लेना, तथा इन नौकरियों के सम्बन्ध में गवर्नर-जनरल और गवर्नरों को विविध विषयों पर आवश्यक परामर्श देना होगा। इन कमीशनों का खर्च इनके सदस्यों का वेतन, पेन्शन, भत्ता आदि क्रमशः केन्द्रीय तथा प्रांतीय सरकार देगी, और इस पर केन्द्रीय तथा प्रांतीय व्यवस्थापक मण्डल को मत देने का अधिकार न होगा। इन कमीशनों का सम्बन्ध भारतीय सिविल सर्विस और प्रांतीय सिविल सर्विस से होगा।

सुधार की आवश्यकता—भारतवर्ष के सभी कर्मचारियों का वेतन आदि भारतवर्ष के खजाने से दिया जाता है; उसका भार भारतीय करदाताओं पर पड़ता है। ऐसी दशा में इन कर्मचारियों की नियुक्ति भारत-मंत्री, गवर्नर-जनरल या गवर्नर द्वारा

होना सर्वथा अनुचित और असंतोषप्रद है। प्रायः कर्मचारियों का यह स्वभाव होता है कि जो अधिकारी उन्हें नियुक्त करता है, उसके प्रति ही वे जिम्मेवर हुआ करते हैं; चाहे विधान में इस विषय का स्पष्ट आदेश न भी हो। भारतवर्ष के कर्मचारियों को भारतीय लोक-प्रतिनिधियों के प्रति जिम्मेवर बनाने के लिए यह आवश्यक है कि उनकी नियुक्ति, बर्खास्तगी, तथा नौकरी की शर्तें आदि निर्धारित करने का, एवं पब्लिक सर्विस कमीशन के सदस्यों की नियुक्ति और नियंत्रण का पूर्ण अधिकार, प्रसंगानुसार भारत-सरकार और प्रान्तीय सरकारों को होना चाहिए, जो क्रमशः भारतीय व्यवस्थापक मंडल तथा प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडलों के प्रति उत्तरदायी हों।

कर्मचारियों का वेतन—भारतवर्ष के सरकारी कर्मचारियों के सम्बन्ध में विचार करते हुए किसी भी व्यक्ति को यह बात खटके बिना नहीं रहती कि यहाँ उच्च पदों का वेतन और भत्ता आदि देश काल से बिल्कुल मेल नहीं खाता। उदाहरणस्वरूप गवर्नर-जनरल की बात पहले (चौथे परिच्छेद में) कही जा चुकी है। उसके अतिरिक्त उसकी प्रबन्धकारिणी कौंसिल के सदस्यों, जंगीलाट, प्रान्तों के गवर्नरों, विविध सरकारी विभागों के अध्यक्षों, चीफ कमिश्नरों आदि सभी का वेतन इतना ऊँचा रखा गया है कि जनता की निधनता को सर्वथा भुला दिया गया है। जब कि देश की असंख्य जनता को जीवन-निर्वाह के लिए यथेष्ट भोजन वस्त्र का भी अभाव हो, सरकारी कर्मचारियों को इस प्रकार द्रव्य लुटाना, और उनके वास्ते ऐश्वर्य के साधन

जुटाना शासन यंत्र की जड़ता और निर्दयता है। उनके लिए गर्मियों में खस की टट्टियाँ और बिजली के पंखे, सर्दियों में कमरे को गर्म रखने के लिए अंगीठी आदि, उनके सफर के लिए स्पेशल ट्रेन, या रिजर्व नहीं तो अव्वल दर्जे (फर्स्ट क्लास) के डिब्बे या बढ़िया मोटर आदि की व्यवस्था को देख कर कौन नहीं कहेगा कि इन सरकारी कर्मचारियों और जनसाधारण में भयानक अन्तर है।

इसके मुकाबले में छोटे पदों पर काम करनेवाले कर्मचारियों का वेतन प्रायः उनके निर्वाह के लिए पर्याप्त नहीं होता, और उन्हें अपनी गृहस्थी का खर्च चलाने के लिए कोई दूसरा सहायक कार्य करना या रिश्वत आदि निन्दनीय उपायों का आश्रय लेना पड़ता है। आवश्यकता है, उच्च अधिकारियों की वेतन में काफी कमी की जाय।* और, जो बचत हो उसका दो प्रकार से उपयोग किया जाय, एक तो निम्न कर्मचारियो का वेतन बढ़ा कर उनके तथा उच्च अधिकारियों के वेतन की विषमता हटाई जाय; दूसरे, जनता की शिक्षा, स्वास्थ्य, आजीविका आदि के साधन जुटाकर देश की दशा सुधारने का प्रयत्न किया जाय।

हमने निम्न कर्मचारियों के रिश्वत लेने की बात का संकेत किया है। परन्तु इसका यह आशय नहीं है कि उच्च अधिकारी सर्वथा दूध के धुले होते है। यद्यपि अनेक घटनाएं गुप-चुप होती हैं, घूस लेनेवाला एवं देनेवाला दोनों ही उसे छिपाने का भरसक प्रयत्न करते हैं तथापि समय-समय पर भण्डाफोड़ हो ही जाता है। कुछ लोग अपनी जीवन-निर्वाह की आवश्यक-

*कांग्रेस ने किसी नौकरी की अधिक-से-अधिक वेतन साधारणतया ५००) निर्धारित की है।

ताओं की पूर्ति के लिए रिश्वत लेते हैं, तो दूसरे लोभ वश। और जीवन निर्वाह की आवश्यकताओं की तो फिर भी एक सीमा है, परन्तु लोभ की तो कोई सीमा ही नहीं। निदान, सरकारी नौकरों द्वारा रिश्वत (इसे डाली भेंट उपहार आदि नाम भी दिये जाते हैं) लिया जाना ऐसी साधारण सी बात हो गई है कि आदमी सरकारी नौकरों से पूछा करते हैं कि आपकी 'ऊपर की आमदनी' क्या है। मानो सरकारी नौकर की कुछ न कुछ 'ऊपर की आमदनी' होनी ही चाहिए। कैसा पतन है! सरकार से अपने कर्मचारियों की यह बुराई छिपी नहीं है, वह समय-समय पर इसके लिए कुछ उपाय काम में लाती रहती है, परन्तु दोष निर्मूल नहीं होता। यदि सरकार को जनता से यथेष्ट सहयोग हो तो दोनों के सम्मिलित प्रयत्न से अधिक सफलता मिलने की आशा की जा सकती है।

नौकरियों का भारतीयकरण—पहले बताया जा चुका है कि गवर्नरों तथा गवर्नर-जनरल के अन्यान्य उत्तरदायित्वों में एक यह भी है कि वे वर्तमान तथा भूतपूर्व उच्च सरकारी कर्मचारियों, तथा उनके आश्रितों के अधिकारों और हितों की रक्षा करें। यह बात विशेष चिन्तनीय इसलिए है कि यहाँ सरकारी नौकरियों के सम्बन्ध में देश, जाति या वर्ण का पक्षपात किया जाता है। योरपियन या एंग्लो-इंडियनों के लिए कुछ स्थान सुरक्षित रखे जाते हैं, तथा उन्हें भारतीयों की अपेक्षा अच्छा समझा जाता है। इससे यह स्वाभाविक है कि यहाँ अन्य जाति भी अपने-अपने आदमियों के लिए कुछ पद सुरक्षित कराने की माँग उपस्थित करें, और यहाँ साम्प्रदायिक वातावरण और भी अधिक विषमय हो। इस नीति का सर्वथा परित्याग होना चाहिए।

पुनः प्रायः विदेशी अधिकारी जनता की आवश्यकताओं और अभावों को अच्छी तरह नहीं समझ पाते, और

उनकी योग्यता और अनुभव से लोगों का यथेष्ट हित साधन नहीं होता। अंगरेज कर्मचारियों की योग्यता और परिश्रम से ब्रिटिश साम्राज्यवाद को चाहे जो लाभ हुआ हो, भारतवर्ष के लिए तो कुछ इनेगिने अपवादों को छोड़ कर वे हमारी भाषा, भाव, रीति रिवाज आदि से अनभिज्ञ रहे हैं, और उन का व्यवहार हमारी आकांक्षाओं के प्रति सहानुभूति-हीन रहा है। वे चतुर या अनुभवी हो सकते हैं, पर उनका और इस देश का स्वार्थ भिन्न होने के कारण उनकी योग्यता भारतीय जनता के लिए हानिकर ही होती है। और, यहाँ परिस्थिति यह है कि अन्य ऊंची नौकरियों की तो बात ही क्या, ऐसी भी व्यवस्था नहीं है कि भारतवर्ष में जिले के शासक भी प्रायः भारतवासी ही हुआ करें। आवश्यकता है कि जिले से लेकर प्रान्त और केन्द्र तक की ऊँची-से-ऊँची नौकरी भारतवासियों को सुलभ हो। गवर्नर, गवर्नर-जनरल और जंगीलाट तक के पद के लिए हमारी माँग सर्वथा स्वाभाविक और न्यायानुकूल है। साधारणतया नियम ही यह होना चाहिए कि प्रत्येक सरकारी नौकरी पर भारतवासी की नियुक्ति की जाय। विशेष दशाओं में, अपवाद रूप से, हमें किसी विदेशी को अपने यहाँ नौकर रखने में आपत्ति नहीं है, परन्तु वह उसी दशा में, जब कि वैसा करना अनिवार्य हो। हाँ, हम केवल ऊंची नौकरियों से ही संतुष्ट नहीं होंगे, हम तो नौकरों का नियंत्रण करने, और उनसे आवश्यकतानुसार काम लेने का अधिकार चाहते हैं।



सोलहवाँ परिच्छेद

सरकारी आय-व्यय



[इस परिच्छेद में ब्रिटिश भारत के ही केन्द्रीय तथा प्रान्तीय आय-व्यय पर विचार किया गया है। देशी राज्यों के हिसाब के सम्बन्ध में अठारहवें परिच्छेद में लिखा जायगा।]

प्रत्येक देश में सरकार विविध प्रकार के कार्य करती है:—देश को बाहर के आक्रमण से बचाने के लिए सेना का प्रबन्ध करती है; भीतरी शान्ति तथा अपराधों के दमन के लिए पुलिस रखती है, शिक्षा-प्रचार के लिए स्कूल खोलती है, लोगों के झगड़ों का निपटारा करने के लिए न्यायालयों की स्थापना करती है। वह लोगों के आने-जाने तथा व्यापार करने के लिए रेल, डाक आदि की सुव्यवस्था, तथा अन्य कार्य करती है। इन कामों के लिए प्रति वर्ष बहुत-सा रुपया खर्च होता है।

भारतवर्ष के सरकारी खर्च का हाल जानने के लिए यह स्मरण रखना चाहिए कि सरकारी साल अप्रैल महीने की पहली तारीख से आरम्भ होता है और ३१ मार्च को समाप्त होता है। इस प्रकार १ अप्रैल १९४४ से ३१ मार्च १९४५ तक एक साल हुआ; इसे सन् १९४४—४५ ई० कहते हैं।

भारतवर्ष का सरकारी खर्च—केन्द्रीय सरकार केन्द्रीय

विषयों के लिए खर्च करती है, और प्रान्तीय सरकारें प्रान्तीय विषयों के लिए। विदित हो कि छः चीफ-कमिश्नरों के प्रान्तों का (प्रान्तीय विषयों में किया गया) खर्च केन्द्रीय सरकार के हिसाब में शामिल किया जाता है; कारण, इनका प्रबन्ध केन्द्रीय सरकार ही करती है।

केन्द्रीय सरकार के खर्च की मुख्य-मुख्य मदें ये हैं:—सेना, कर वसूल करने का खर्च, सिविल शासन, सिविल निर्माण-कार्य, रेल, डाक, तार, मुद्रा, टकसाल और सूद। केन्द्रीय सरकार का साधारण वार्षिक व्यय लगभग एक सौ बीस करोड़ रुपये है।

प्रान्तीय सरकारों के खर्च की मुख्य-मुख्य मदें निम्नलिखित हैं:—कर वसूल करने का खर्च, शासन-व्यवस्था, न्याय, जेल, पुलिस, शिक्षा, चिकित्सा और स्वास्थ्य, कृषि, उद्योग, सिविल निर्माण-कार्य आदि। ब्रिटिश भारत की सब प्रान्तीय सरकारों (गवर्नरों के प्रान्तों) का कुल खर्च साधारणतया लगभग अस्सी करोड़ रुपये होता है। किसी प्रान्त का खर्च अधिक होता है, किसी का कम। एक ही प्रान्त का खर्च भी समय-समय पर बदलता रहता है।

सेना की मद में स्थल सेना, जल सेना और वायु सेना का व्यय है। केन्द्रीय सरकार का सबसे अधिक खर्च इसी मद में होता है। सन १९१४ के महायुद्ध से पूर्व यह ३२ करोड़ रुपये वार्षिक था। उसके बाद यह बढ़ कर ७० करोड़ रुपये से भी अधिक हो गया। तब इसे घटाने का विचार हुआ। इस खर्च की अधिकता

के कारण, भारतीय जनता पर कर-भार बहुत अधिक होने पर भी शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि, उद्योग, आदि उपयोगी कार्यों के लिए धन की कमी रहती है।* भारतीय नेताओं का मत है कि यहाँ सेना संचालन और प्रबन्ध भारतवर्ष की आवश्यकता का विचार न कर साम्राज्य-रक्षा के हेतु किया जा रहा है, तथा सेना में प्रत्येक अंगरेज सैनिक का खर्च भारतीय सैनिक की अपेक्षा कई गुना होता है। यहाँ सैनिक शिक्षा का समुचित प्रबन्ध होने से तथा भारतीय सैनिकों और अफसरों से ही काम लेने से सैनिक व्यय में बहुत कमी हो सकती है।

कर वसूल करने के खर्च में आयात-निर्यात कर, आय-कर, मालगुजारी, स्टाम्प, रजिस्टरी, अफीम नमक और आबकारी आदि विभागों के खर्च के अतिरिक्त, अफीम और नमक तैयार करने का खर्च भी सम्मिलित है।

सिविल निर्माण-कार्य के व्यय की मद में सरकारी इमारतें और सड़कें बनवाने तथा उनकी मरम्मत करवाने का खर्च शामिल है।

डाकखानों के सेविंग बैंकों या प्रोविडेन्ट फण्ड के अस्थायी ऋण के अतिरिक्त, भारत सरकार यहाँ के सरकारी (पब्लिक) ऋण पर सूद देती है। इस मद में बहुधा तेरह-चौदह करोड़ रुपये वार्षिक व्यय होता है।

सरकारी खर्च के सम्बन्ध में ध्यान देने की खास बात यह है

*आजकल तो युद्ध के कारण सेना का खर्च बहुत ही अधिक है। सन् १९४२-४३ में ... करोड़ रुपया व्यय होने का अनुमान था।

कि सेना और शासन की मद में खर्च बहुत अधिक होता है। उच्च पदाधिकारियों के वेतन, पेन्शन, भत्ते आदि का परिमाण बहुत बढ़ा-चढ़ा है। इसका परिणाम यह है कि यद्यपि सरकार अपना खर्च चलाने के लिए जनता से बहुत कर लेती है, और लोगों पर नित्य नये करों का भार बढ़ता जाता है, परन्तु शिक्षा स्वास्थ्य, चिकित्सा, कृषि, उद्योग आदि लोकहितकारी कार्यों में द्रव्य बहुत कम खर्च होता है। ये विषय प्रान्तीय हैं और प्रांतीय सरकारें अधिकार और इच्छा रखते हुये भी धनाभाव के कारण इन कार्यों की विशेष उन्नति नहीं कर पातीं। बहुत आवश्यकता है कि इस विषय में यथेष्ट सुधार हो।

भारतवर्ष में कर लगानेवाली संस्थाएँ—भारतवर्ष में जनता पर टैक्स लगाने का अधिकार निम्नलिखित तीन प्रकार की संस्थाओं को है:—

१—भारत-सरकार को,

२—प्रान्तीय सरकारों को,

३—स्थानीय-स्वराज्य-संस्थाओं अर्थात म्युनिसिपैलिटी, जिला-बोर्ड और पंचायतों को।

उपर्युक्त तीनों प्रकार की संस्थाएँ यहाँ प्रति वर्ष लगभग सवा दो सौ करोड़ रुपये वसूल करती हैं। इनमें से प्रथम दो की आय के विषय में, इसी परिच्छेद में विचार किया जायगा; तीसरी प्रकार की संस्थाओं का वर्णन आगे किया जायगा।

सरकारी आय— केन्द्रीय सरकार की आय की मुख्य-मुख्य मदें ये हैं :—आयात-निर्यात-कर, उत्पादन-कर, आय-कर

नमक कर, अफीम कर, देशी राज्यों से नजराना, सूद, रेल, डाक, तार, टकसाल, सिविल शासन, सिविल निर्माण कार्य और सेना। केन्द्रीय सरकार की साधारण वार्षिक आय लगभग एक सौ बीस करोड़ रुपये है।

प्रांतीय सरकारों की आय की मुख्य-मुख्य मदें निम्नलिखित हैं :—मालगुज़ारी, आबकारी, स्टाम्प, रजिस्टरी, जङ्गल, आबपाशी, सूद आदि। साधारणतया सब प्रांतीय सरकारों (गवर्नरों के प्रांतों) का कुल वार्षिक खर्च लगभग अस्सी करोड़ रुपया होता है। किसी प्रांत की आय कम होती है, और किसी की अधिक। एक प्रांत की आय में भी समय-समय पर कुछ अन्तर होता रहता है।

अब हम आय की मुख्य-मुख्य मदों के बारे में कुछ आवश्यक बातों पर विचार करते हैं :—

आय-कर—यह प्रत्यक्ष कर है, अर्थात् जिस व्यक्ति से यह लिया जाता है, वह उसका भार दूसरों पर नहीं डाल सकता। प्रायः यह समझा जाता है कि लगभग डेढ़ हजार रुपये सालाना की आमदनी एक परिवार के निर्वाह के लिए अत्यन्त आवश्यक होती है, इसलिए इससे कम पर आय-कर नहीं लिया जाता। यह कर डेढ़ हज़ार रुपये की आय से आरम्भ होता है। पश्चात् ज्यों-ज्यों आय का परिमाण बढ़ता है; कर की दर बढ़ती जाती है। उदाहरणवत् जिन पर आय-कर लगता है, उनकी डेढ़ हजार रुपये बाद अगले साढ़े तीन हज़ार रुपये तक की आय पर कर प्रति रुपया नौ पाई, और इसके बाद अधिक आय पर और अधिक; फी

रुपया ढाई आने तक। कम्पनियों या कोठियों की आय पर इस कर की दर विशेष परिमाण में निर्धारित है। * पच्चीस हज़ार रुपये से अधिक आय पर अतिरिक्त कर (सुपर टेक्स) भी लिया जाता है। भारतवर्ष में आय-कर और 'सुपर टेक्स' की मद में सरकार को अपेक्षाकृत बहुत कम आय होती है। इसका कारण यह है कि यहाँ अधिकतर आदमियों की आमदनी बहुत कम है; देश गरीब है।

मालगुज़ारी—यह प्रान्तीय सरकारों की आमदनी की सबसे बड़ी मद है। ब्रिटिश भारत में तीन तरह का बन्दोबस्त है:—(१) स्थायी प्रबन्ध; बंगाल में, बिहार के $\frac{5}{6}$ भाग में, एवं आसाम के आठवें और संयुक्तप्रांत के दसवें भाग में। (२) ज़मींदारी या ग्राम्य प्रबन्ध; संयुक्तप्रांत में ३० वर्ष और पंजाब तथा मध्यप्रांत में २० वर्ष के लिए मालगुजारी निश्चित कर दी जाती है। गाँव वाले मिल कर इसे चुकाने के लिए उत्तरदायी होते हैं। (३) रय्यतवारी प्रबन्ध; बम्बई, सिंध, मदरास, और आसाम में, एवं बिहार के कुछ भाग में। इन स्थानों में सरकार सीधे काश्तकारों से सम्बन्ध रखती है। बम्बई और मदरास में ३० वर्ष में तथा अन्य प्रान्तों में जल्दी-जल्दी बन्दोबस्त होता है। नये बन्दोबस्त में प्रायः हर जगह सरकारी मालगुजारी बढ़ जाती है।

आयात-निर्यात-कर—केन्द्रीय आय की यह सब से बड़ी मद है। यह कर उन चीजों पर लगता है, जो भारतवर्ष

---

* कम्पनियों आदि की आय पर लगनेवाला कर 'कारपोरेशन कर' कहलाता है।

से विदेशों को जाती हैं, या विदेशों से यहाँ आती हैं। यह एक परोक्ष कर है। यह व्यापारियों से लिया जाता है। इससे सरकार को आमदनी तो होती ही है; इसके अतिरिक्त, इस कर का यहाँ के व्यापार तथा उद्योग-धन्धों पर भी असर पड़ता है।

नमक-कर—नमक एक जीवन-रक्षक पदार्थ है; इसके कर का भार गरीबों पर भी पड़ता है। नमक तैयार कराने में सरकार का खर्च बहुत थोड़ा होता है; कुछ खर्च किराये में भी पड़ता है। इस खर्च को छोड़कर नमक का मूल्य कर पर निर्भर है। यह कर इस समय १।) प्रति मन है। इस देश में जितना नमक तैयार होता है, उस पर सरकार का एकाधिकार है। सरकारी आज्ञा बिना नमक कोई नहीं बना सकता।

अफीम—भारत-सरकार को इस मद की आय, इस पदार्थ को विदेशों के लिए भेजने से होती है। भारतवर्ष के लिए भारत-सरकार इसे एक निर्धारित दर से प्रान्तीय सरकारों के हाथ बेचती है। कुछ अफीम तो औषधियों के काम आती है; शेष का सेवन लोग नशे के लिए करते हैं, जो बहुत हानिकारक है।

आबकारी—इस मद में शराब, गाँजा, अफीम आदि नशे के पदार्थों पर लगाये हुए सरकारी टैक्सों के आय सम्मिलित है। इन पदार्थों की बिक्री तथा पैदावार पर कड़ा नियन्त्रण रहता है। इनका प्रचार बढ़ना देश के लिए हानिकर है।

अन्य मदें—सिविल निर्माण-कार्य की आय में सरकारी मकानों का किराया तथा उनकी बिक्री आदि से होनेवाली प्राप्ति सम्मिलित है। टकसाल की आय में विशेषतया पैसा, इकन्नी

आदि सिक्के, तथा कुछ देशी राज्यों के सिक्के ढालने का लाभ सम्मिलित है। सैनिक आय में स्टोर, कपड़े, दूध, मक्खन तथा पशुओं की बिक्री से होनेवाली आय गिनी जाती है। सूद की आय में, सरकार जो रुपया किसानों तथा म्युनिसपेलिटियों आदि को उधार देती है, उसके सूद की रक़म सम्मिलित होती है।

हिसाब और उसकी जाँच—भारत-सरकार का हिसाब 'केन्द्रीय हिसाब विभाग' रखता है। इसका प्रधान 'एकाउंटेन्ट और आडिटर-जनरल' कहलाता है। प्रान्तीय सरकारों का हिसाब प्रान्तीय एकाउन्टेंट-जनरल रखते हैं। प्रायः प्रत्येक जिले के प्रधान नगर में इम्पीरियल बैंक की शाखा है, उसमें सरकारी आय जमा होती रहती। आवश्यकतानुसार उसी में से खर्च होता रहता है। 'एकाउन्टट आडीटर जनरल' के अधीन कर्मचारी जिलों के खजानों के हिसाब का निरीक्षण करते हैं।

आय-व्यय पर जनता का नियन्त्रण बहुत कम है—सरकारी आय-व्यय की भिन्न-भिन्न मदों पर लोक-प्रतिनिधियों का नियत्रण बहुत कम है। प्रांतों में भी गवर्नरों को कई विषयों में विशेषाधिकार है। केन्द्रीय आय-व्यय तो अधिकांश में गवर्नर-जनरल की इच्छानुसार ही होता है। इस विषय में भारतीय व्यवस्थापक मंडल और प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडलों के परिच्छेदों में लिखा जा चुका है।*

*सरकारी आय-व्यय का परिचय यह संक्षेप में ही दिया गया है। इस विषय का ब्योरेवार विचार हमारी 'भारतीय राजस्व' (दूसरा संस्करण) में हुआ है।

सतरहवाँ परिच्छेद

स्थानीय स्वराज्य



स्थानीय स्वराज्य का महत्व—जिन विषयों का सम्बन्ध किसी एक शहर, कस्बे या गाँव से हो, उनके प्रबन्ध के लिए तथा वहाँ की जनता की सामूहिक सुविधाओं की व्यवस्था करने के वास्ते, वहाँ के ही आदमियों का अधिकार प्राप्त होना स्थानीय स्वराज्य कहलाता है। और, इन अधिकारों का उपयोग करने के लिए बनायी हुई संस्थाओं को स्थानीय-स्वराज्य-संस्थाएँ कहते हैं।

इन संस्थाओं का बड़ा महत्व है। भिन्न-भिन्न शहरों और देहातों की परिस्थिति तथा आवश्यकताएँ अलग-अलग होती हैं। केन्द्रीय या प्रान्तीय सरकार को उनके विषय में ब्योरेवार ज्ञान नहीं होता, और वे इन कार्यों की ऐसी अच्छी तथा मितव्ययिता पूर्वक व्यवस्था नहीं कर सकतीं, जैसी स्थानीय व्यक्तियों की संस्थाएँ कर सकती हैं। प्रत्येक स्थान के आदमियों को अपने यहां की समस्याओं और आवश्यकताओं का ज्ञान अधिक होता है, और उन्हें उनकी पूर्ति करने में रुचि भी विशेष होती है। वे ऐसे कार्य को बड़े उत्साह से करते हैं, और उसका अनुभव प्राप्त करके प्रान्त और देश के विविध राजनैतिक कार्य करने के अधिक योग्य हो जाते हैं। प्रान्तीय या केन्द्रीय संस्थाओं से तो किसी

गाँव या शहर के थोड़े से ही व्यक्तियों को काम पड़ता है, परन्तु स्थानीय संस्थाओं से वहाँ के सभी लोगों का सम्बन्ध रहता है। इन संस्थाओं के द्वारा अनेक आदमियों को लोकसेवा का अवसर सहज ही मिल सकता है।

प्राचीन व्यवस्था—प्राचीन समय में यहाँ चिरकाल तक स्थानीय कार्य गाँवों में ग्राम-संस्थाओं, और नगरों में व्यापार या व्यवसाय संघों आदि द्वारा होता रहा। भारतवर्ष की पंचायतें बहुत प्रसिद्ध रही हैं। प्रत्येक गाँव या नगर स्वावलम्बी होता था; पंचायत उसकी रक्षार्थ पुलिस रखती थी, छोटे-मोटे झगड़ों का निपटारा करती थी, भूमि-कर वसूल करके राजकोष में भेजती थी, तालाब, पाठशाला, मन्दिर, पुल, सड़क आदि सार्वजनिक उपयोगिता के कामों की व्यवस्था करती थी। राजवंश बदले, क्रान्तियाँ हुईं, बारी-बारी से हिन्दू (क्षत्रीय, राजपूत), पठान, मुग़ल, मराठे, सिक्खों का प्रभुत्व हुआ। परन्तु सब विघ्न-बाधाओं का सामना करते हुए भी ग्राम्य संस्थाओं ने अपना अस्तित्व और स्वतन्त्रता बनाये रखी।

आधुनिक स्थिति—अंगरेजों के प्रारम्भिक समय में ग्राम्य संस्थाओं की आय और अधिकार प्रान्तीय सरकारों द्वारा ले लिये जाने पर, ग्राम-संगठन का क्रमशः ह्रास हो गया। यद्यपि अब भी पञ्चायती मन्दिर और धर्मशाला आदि बनते हैं, ये प्राचीन व्यवस्था के स्मृति-चिन्ह मात्र हैं। अब पुनः नवीन रूप से पञ्चायतें स्थापित की जा रही हैं। इसका विवेचन आगे किया जायगा।

अंगरेज अधिकारियों ने पहले नगरों या शहरों की ओर ध्यान दिया, और सन् १८४२ ई० से कुछ स्थानों में क्रमशः म्युनिसपेलटियाँ स्थापित कीं; इसके दो उद्देश्य थे—नगरों का सुधार होना और जन साधारण को सार्वजनिक कार्य करने की व्यवहारिक शिक्षा मिलना। इन संस्थाओं की कुछ वास्तविक उन्नति सन् १८७० ई० (लार्ड मेयो के समय) से हुई। सन् १८८४ ई० में लार्ड रिपन ने इनके अधिकार बढ़ाये, तब से इनका प्रचार बढ़ा है। तथापि पैंतीस वर्ष तक उन्नति की गति बहुत मन्द ही रही। सन् १९१८ ई० में सरकारी मन्तव्य प्रकाशित हुआ; उसमें, म्युनिसपेलटियों में निर्वाचित सदस्यों और निर्वाचकों की संख्या बढ़ाने, तथा गैर-सरकारी सभापतियों के होने, तथा उनके अधिकार बढ़ाने पर, और ग्राम-पंचायतें स्थापित करने पर जोर दिया गया। सन् १९१९ ई० के शासन सुधारों ने स्थानीय स्वाराज्य को हस्तान्तरित विषय कर दिया अर्थात्, इसे मंत्रियों को सौंप दिया। इससे इन संस्थाओं पर बड़ा प्रभाव पड़ा। इनके कर्तव्य और अधिकार बढ़ गये, और, सन् १९३५ के विधान के बाद बढ़ते ही जा रहे हैं।

स्थानीय स्वराज्य संस्थाएँ—भारतवर्ष की वर्तमान स्थानीय स्वराज्य-संस्थाएँ निम्नलिखित हैं :—

१—पंचायतें,

२—जिला-बोर्ड आदि,

३—म्युनिसपेलटियाँ, कारपोरेशन, नोटीफाइड एरिया,

४—इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट, और पोर्ट-ट्रस्ट।

इनके दो भेद किये जा सकते हैं। पंचायतें और जिला-बोर्ड आदि गाँवों के लिए हैं, और अन्य संस्थाएँ शहरों के लिए। भारतवर्ष में गाँवों की अधिकता है, और इसे कभी-कभी गाँवों का देश कहा जाता है। यहाँ गाँवों की संख्या सात लाख है। आजकल बहुत से गाँवों का बड़ा ह्रास हो रहा है; अधिकतर आदमी निर्धन और अशिक्षित हैं; सफाई का प्रायः अभाव है। विविध कारणों से लोगों में गाँव छोड़कर नगरों में आने की प्रवृत्ति बढ़ रही है। शहरों की आबादी बढ़ने से वहाँ मकान, पानी और ताजी हवा का, तथा गंदे पानी के बहाव आदि का, समस्याएँ बढ़ती जा रही है।

पंचायतें—'प्रान्तीय न्याय-कार्य' शीर्षक परिच्छेद में इनके न्याय सम्बन्धी अधिकारों का उल्लेख किया जा चुका है। यहाँ अन्य बातों का विचार किया जाता है। इनका स्थानीय स्वराज्य से सम्बन्धित कार्य शिक्षा, स्वास्थ्य और सफाई आदि का है। स्मरण रहे कि इनके वर्तमान अधिकार पुरानी पंचायतों की अपेक्षा बहुत कम हैं। इनके सदस्य नामजद होते हैं, ग्रामवालों के प्रतिनिधि नहीं होते। ये एक प्रकार की सरकारी संस्थाएँ ही हैं। इनका कार्य सरकारी कर्मचारियों की सहायता से, और उनके ही निरीक्षण और नियंत्रण में होता है।

भारतवर्ष के प्रायः सभी प्रान्तों में पचायत-कानून (पंचायत-एक्ट) बना हुआ है; प्रत्येक प्रान्त के पञ्चायत-कानून के अनुसार उस प्रान्त की पञ्चायतों के अधिकार और संगठन सम्बन्धी नियम निर्धारित हो गये हैं, और उनके अनुसार गाँव में पंचायत

स्थापित हो सकती है। बहुत से स्थानों में पञ्चायतें खुल गयी हैं। प्रत्येक प्रान्त के नियमों में कुछ-कुछ भिन्नता है। यहाँ संयुक्तप्रांत की पञ्चायतों सम्बन्धी मुख्य-मुख्य बातें बतायी जाती हैं। इससे अन्य प्रांतों की स्थिति का अनुमान हो सकता है।

संयुक्तप्रान्त का ग्राम-पंचायत-कानून सन १९२० ई० में बना था। उसके अनुसार इस प्रान्त में पञ्चों की संख्या ५ से कम और ७ से अधिक, नहीं होती। ग्रामवालों की इच्छा मालूम करके कलेक्टर पंच नियत करता है। दो पंच ऐसे होने चाहिएँ, जो पढ़-लिख सकें। नीचे लिखे व्यक्ति पंच नियुक्त होने के योग्य नहीं होते:— (१) स्त्रियाँ, (२) जो ऐसा दिवालिया हो, जो बरी न किया गया हो, (३) जिसकी उम्र २१ वर्ष से कम हो, (४) जो सरकारी अथवा ग्राम सम्बन्धी नौकरी करता हो, (५) जिसे गत ५ वर्ष में किसी अपराध के लिए कैद की सज़ा हुई हो, और (६) जो पञ्चायत के क्षेत्र में न रहता हो। पंच तीन वर्ष तक अपने पद पर रहते हैं, परन्तु कोई व्यक्ति दूसरी बार नियुक्त हो सकता है। जब तक की पंचों की संख्या तीन से कम न हो जाय, पञ्चायत का काम गैर-कानूनी नहीं समझा जाता।

सरपञ्च को लिखना-पढ़ना अवश्य आना चाहिए वह पञ्चायत का सभापति होने के अतिरिक्त, ग्राम-कोष और उसका हिसाब तथा अन्य आवश्यक कागज़ और रजिस्टर रखता है, सम्मन की तामील करवाता है, और समय-समय पर कलेक्टर को पंचायत सम्बन्धी रिपोर्ट देता रहता है। पञ्चायत के कागज और रजिस्टर

रखने के लिए, कलेक्टर की अनुमति से एक क्लर्क नियत किया जा सकता है।

पञ्चायतों को समय-समय पर जिला-बोर्डों तथा सरकार से कुछ रकम मिलती है। इसके अतिरिक्त वे निर्धारित नियमों के अनुसार, अपने क्षेत्र के आदमियों पर कुछ कर लगा सकती हैं, तथा अपराधियों पर कुछ जुर्माना भी कर सकती हैं, (उन्हें कैद करने का अधिकार नहीं होता)। यदि उनका कोई कर या जुर्माना वसूल न हो तो जिला-मजिस्ट्रेट उसे वसूल करा देता है। पंचायतों को अपनी आय कलेक्टर की अनुमति से ही शिक्षा, स्वास्थ्य, सफाई, या कच्ची सड़कों आदि के कार्य में खर्च करनी होती है।

पंचायतों में खास कमी यह है कि इन पर अधिकारियों का नियंत्रण बहुत अधिक है, और इनकी आय के साधन बहुत कम हैं।

जिला-बोर्ड आदि का संगठन—देहातों में (प्रारम्भिक) शिक्षा और स्वास्थ्य आदि का कार्य करने वाली मुख्य संस्थाएँ बोर्ड हैं। सब प्रान्तों में इनकी व्यवस्था एकसी नहीं है। ब्रिटिश भारत में आसाम प्रांत को छोड़ कर प्रत्येक जिले में एक जिला-बोर्ड है; कुल मिला कर लगभग २०० जिला-बोर्ड हैं। एक-एक जिला-बोर्ड की अधीनता में दो या अधिक अधीन-जिला-बोर्ड हैं।* मदरास, बंगाल, बिहार और उड़ीसा में प्रत्येक बड़े गाँव का, अथवा कई-कई गाँवों को मिलाकर

* आसाम में जिला-बोर्ड नहीं हैं; तालुका-बोर्ड ही हैं।

उन सब का, एक यूनियन बना दिया गया है। इस प्रकार लगभग ४५० यूनियन-कमेटियाँ हैं। अन्यत्र बोर्डों के निम्नलिखित तीन भेद हैं; किसी-किसी प्रान्त में तो इनमें से तीनों ही प्रकार के बोर्ड हैं। और कहीं-कहीं केवल दो या एक ही तरह के हैं :—

१—लोकल बोर्ड। यह एक गाँव में या कुछ ग्रामों के समूह में होता है।

२—ताल्लुका या सब-डिविजनल बोर्ड। यह एक तालुके या सब-डिविजन में होता है। यह लोकल बोर्डों के काम की देख-भाल करता है।

३—जिला-बोर्ड (इसे मध्यप्रांत में जिला-कौंसिल कहते हैं)। यह एक जिले में होता है, और जिले भर के अन्य बोर्डों का निरीक्षण करता है।

पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त को छोड़कर, अन्यत्र बोर्डों में चुने हुए सदस्य ही अधिक होते हैं। किस जिला-बोर्ड में कितने सदस्य हों, उसका सभापति चुना हुआ रहे, या नियुक्त किया जाय, यह प्रत्येक प्रान्त के जिला-बोर्ड-कानून से निश्चित किया हुआ है। कई प्रान्तों में सभापति चुना हुआ एवं गैर-सरकारी होता है।

जिला-बोर्डों के सदस्यों तथा (तथा सभापति) का चुनाव प्रायः चार वर्ष में होता है।* सदस्यों के चुनाव के लिए प्रत्येक जिला कुल हलकों या 'सर्कलों' में बटा हुआ होता है, और यह निश्चित रहता है कि अमुक हलके से इतने सदस्य चुने जाने

* प्रान्तीय सरकार इस अवधि को बढ़ा सकती है। वर्तमान अवस्था में, युद्ध के कारण यह अवधि अनिश्चित काल तक के लिए बढ़ी हुई है।

चाहिए। प्रत्येक निर्वाचक, सदस्य बनाने के लिए, उम्मेदवार हो सकता है। निर्वाचन प्रायः साम्प्रदायिकता के आधार पर होता है; हिन्दू, मुसलमान आदि जातियों के सदस्यों की संख्या निश्चित रहती है। मतदाता अपनी ही जाति के उम्मेदवार को मत देते हैं। * मतदाता वही व्यक्ति हो सकता है, जो (क) ब्रिटिश प्रजा हो, (ख) अपने जिलेका निवासी हो, और (ग) आय-कर या निर्धारित लगान या मालगुजारी, या जिला-बोर्ड का कर देता हो, या निर्धारित परीक्षा पास हो। निम्नलिखित व्यक्ति मतदाता या सदस्य नहीं हो सकते—पागल, दिवालिये, नाबालिग, जिसने गत वर्ष जिला-बोड का कर न चुकाया हो।

कांग्रेस-सरकारें अपने समय (सन १९३७-३९) में जिला-बोर्डों के चुनाव आदि के सम्बन्ध में विविध सुधार करनेवाली थीं, परन्तु उनके पदारूढ़ न रहने पर सब कार्य स्थगित रह गया।

बोर्डों के कार्य——बोर्डों का कर्त्तव्य अपने ग्राम्य क्षेत्र में शिक्षा, स्वास्थ्य और सफाई आदि के अतिरिक्त, कृषि और पशुओं की उन्नति करना है। इनके कुछ अन्य कार्य ये हैं:—सड़कें बनवाना और उनकी मरम्मत करवाना; उन पर पेड़ लगवाना तथा उन पेड़ों की रक्षा करना, पशुओं का इलाज करना और नस्ल सुधारना, मेले और नुमायशें आदि कराना। इन कार्यों के लिए तीन-तीन चार-चार सदस्यों की कई कमेटियाँ होती हैं। यथा शिक्षा-कमेटी,

* पृथक् निर्वाचन पद्धति बहुत हानिकर है। इसके विषय मे दसवें परिच्छेद में लिखा जा चुका है।

सफाई-कमेटी आदि

बोर्डों की आय के साधन—बोर्डों की अधिकतर आय उस महसूल से होती है जो भूमि पर लगाया जाता है। इसे सरकारी वार्षिक लगान या मालगुजारी के साथ ही प्रायः एक आना फी रुपये के हिसाब से, वसूल करके इन बोर्डों को दे दिया जाता है। इसके अतिरिक्त, विशेष कार्यों के लिए सरकार कुछ रक़म, कुछ शर्तों से प्रदान कर देती है। आय के अन्य स्रोत तालाब, घाट, सड़क पर के महसूल, पशु-चिकित्सा और स्कूलों की फीस, काँजी हौस की आमदनी, मेले या नुमायशों पर कर, तथा सार्वजनिक उद्यानों का भूमि-कर, हैं। (आसाम प्रान्त को छोड़कर) अधीन-जिला-बोर्डों का कोई स्वतन्त्र आय-स्रोत नहीं, उन्हें समय-समय पर जिला-बोर्डों से ही कुछ मिल जाता है। वे उस रुपये को जिला-बोर्ड की सम्मति के विरुद्ध खर्च नहीं कर सकते।

म्युनिसपेलटियाँ और कारपोरेशन—ये नगरों में काम करती हैं। ब्रिटिश भारत में इनकी कुल संख्या लगभग सात सौ है। प्रत्येक म्युनिसपेलटी की सीमा निश्चित की हुई है। जो लोग उसके अन्दर रहते और उसे टेक्स देते हैं, वे 'रेटपेयर' या कर-दाता कहाते हैं। जो व्यक्ति निर्धारित शिक्षा या आयवाले हैं, अथवा जिनके पास जागीर हैं, वे वोटर या मतदाता हो सकते हैं। इन्हें अपनी-अपनी म्युनिसपेलटी के लिए मेम्बर (म्युनिसपिल कमिश्नर) चुनने का अधिकार होता है। म्युनिसपेलटियों के संगठन के नियम जिला-बोर्डों सम्बन्धी नियमों से मिलते हुए हैं।

कलकत्ता, बम्बई और मदरास शहर की म्युनिसपेलटियाँ, म्युनिसपल कारपोरेशन या केवल "कारपोरेशन" कहलाती हैं। इनके मेम्बरों (कमिश्नरों) को कौंसिलर कहते हैं। अन्य म्युनिस-पेलटियों से, इनका सगठन कुछ भिन्न प्रकार का, और आय-व्यय तथा कार्य-क्षेत्र अधिक होता है।

इनके कार्य—म्युनिसपेलटियों और कारपोरेशनों के मुख्य कार्य कहीं-कहीं कुछ भेद होते हुए, साधारणतया ये हैं:—

(१) सर्वसाधारण की सुविधा की व्यवस्था करना—सड़कें बनवाना, उनकी मरम्मत करना, और पेड़ लगवाना; डाक-बंगला या सराय आदि सार्वजनिक मकान बनवाना; कहीं आग लग जाय तो उसे बुझाना; अकाल, जल की बाढ़, या अन्य विपत्ति के समय जनता की सहायता करना।

(२) स्वास्थ्य-रक्षा-अस्पताल या औषधालय खोलना, चेचक और प्लेग के टीके लगाने तथा मैले पानी बहाने का प्रबन्ध कराना, और छूतकी बीमारियों को रोकने के उचित उपाय काम में लाना, पीने के लिए स्वच्छ जल (नल आदि) की व्यवस्था करना, खाने के पदार्थों में कोई हानिकारक वस्तु तो नहीं मिलायी गयी है, इसका निरीक्षण करना।

(३) शिक्षा; विशेषतया प्रारम्भिक शिक्षा के प्रचार के लिए पाठशालाओं की समुचित व्यवस्था करना, मेले और नुमायशें कराना।

(४) सड़कों तथा गलियों में रोशनी करना; बिजली की रोशनी; ट्रामवे तथा छोटी रेलों के बनाने में सहायता देना।

आमदनी के साधन—इन संस्थाओं की आमदनी के मुख्य-मुख्य साधन ये हैं :—(१) चुङ्गी। अधिकतर उत्तर भारत, बम्बई और मध्यप्रांत में; यह इन संस्थाओं की सीमाके अन्दर आनेवाले माल तथा जानवरों पर लगती है। संयुक्तप्रांत में इस कर की इतनी प्रधानता है कि कुछ जिलो में म्युनिसपेलटियों का नाम ही 'चुङ्गी' पड़ गया है। (२) मकान और जमीन पर कर (विशेषतया आसाम, बिहार, उड़ीसा, बंबई, मध्यप्रान्त और बंगाल में)। (३) व्यापार और पेशों पर कर (विशेषतया मद्रास, संयुक्तप्रान्त, बंबई, मध्मप्रान्त और बंगाल में)। (४) सडकों और नदियों के पुलों पर कर (विशेपतया मद्रास, बम्बई, और आसाम में)। (५) सवारियों, गाड़ी, बग्गी, साइकिल, मोटर और नाव का शुल्क। (६) पानी, रोशनी, नालियों की सफाई, हाट-बाजार, कसाईखाने, पाखाने आदि का शुल्क (७) हैसियत, जायदाद और जानवरों पर कर। (८) यात्रियों पर कर; यह कर निर्धारित दूरी से अधिक के फासले से आने वालों पर लगता है और प्रायः रेलवे टिकट के मूल्य के साथ ही वसूल कर लिया जाता है (९) म्युनिसपल स्कूलों की फीस। (१०) कांजी-हौस की फीस। (११) सरकारी सहायता या ऋण।

कुछ प्रान्तों में शिक्षा, अस्पतालों और पशु-चिकित्सा के लिए म्युनिसपेलटियों को सरकारी सहायता मिलती है। जब किसी म्युनिसपेलटी को मैले पानी के बहाव के नालियाँ बनानी होती हैं अथवा जल-प्रबन्ध के लिए शहर में नल आदि लगाने

होते हैं, तो वह ऋण लेता है। यदि उचित समझा जाय, तो इस खर्च का कुछ या सब भार प्रान्तीय सरकार कुछ शर्तों से अपने ऊपर ले लेती है।

नोटीफाइड एरिया——ये अधिकतर पंजाब और संयुक्तप्रान्त में हैं। इन्हें म्युनिसपलटियों के थोड़े-थोड़े से अधिकार होते हैं। ये उसी क्षेत्र में होते हैं, जहाँ बाजार या क़स्बा अवश्य हो, और जिसकी जनसंख्या दस हज़ारसे अधिक न हो। म्युनिसपेलटियों की अपेक्षा इनकी आय (एवं व्यय) कम है। इनके अधिकाँश सदस्य नामज़द होते हैं।*

इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट——बड़े-बड़े शहरों की उन्नति या सुधार के लिए कभी-कभी विशेष कार्य करने होते हैं, जैसे सड़को को चौड़ी कराना, घनी बस्तियों को हवादार बनाना, ग़रीबों और मज़दूरों के लिए मकानों की सुव्यवस्था करना आदि। इन कामो को म्युनिसपेलटियाँ नहीं कर सकतीं; उन्हें तो अपना रोज़मर्रा का काम ही बहुत है। अत: इनके वास्ते 'इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट', बनाये जाते हैं। ये कलकत्ता, बम्बई, इलाहाबाद, लखनऊ और कानपुर आदि में हैं। इनके सदस्य प्राँतीय सरकार, म्युनिसपेलटियों तथा व्यापारिक संस्थाओं द्वारा नामज़द किये जाते हैं। ये अपने अधिकार-गत भूमि आदि का किराया, तथा आवश्यकतानुसार ऋण या सहायता लेते हैं।

पोर्ट ट्रस्ट—कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, चटगाँव और करांची आदि बन्दरगाहों का स्थानीय प्रबंध करनेवाली संस्थाएं

* इन संस्थाओं को तोड़कर म्युनिसपेलटियां स्थापित करने का विचार हो रहा है।

'पोर्ट ट्रस्ट' कहाती हैं। ये घाटों पर मालगोदाम बनाती हैं, और व्यापार के सुभीते के अनुसार, नाव और जहाज़ की सुव्यवस्था करती हैं। समुद्र-तट, नगर के निकटवर्ती समुद्र-भाग, या नदी पर इनका पूरा अधिकार रहता है। इनकी पुलिस अलग रहती है। इनके सभासद कमिश्नर या ट्रस्टी कहाते हैं। सभासदों में चेम्बर-आफ-कामर्स जैसी व्यापार-संस्थाओं के प्रतिनिधि होते हैं। कलकत्ते और करांची में, म्युनिसपेलटियों के भी प्रतिनिधि इनमें लिये जाते हैं। कलकत्ते के अतिरिक्त, सब पोर्ट ट्रस्टों में निर्वाचित सदस्यों की अपेक्षा नामज़द ही अधिक रहते हैं। अधिकांश सदस्य योरपियन होते हैं। म्युनिसपेलटियों की अपेक्षा पोर्ट ट्रस्टों में सरकारी हस्तक्षेप अधिक है। ये ही ऐसी स्थानीय स्वराज्य-संस्थाएँ हैं, जिनके सभासदों को कुछ भत्ता मिलता है। माल लदाई और उतराई, गोदाम के किराये, तथा जहाजों के कर से जो आमदनी होती है, वह इनकी आय है। इन्हें आवश्यक कार्यों के लिए क़र्ज लेने का अधिकार है।

विशेष वक्तव्य—हमारी स्थानीय स्वराज्य-संस्थाओं में ऊँची योग्यता या आदर्श वाले व्यक्ति कम जाते हैं; अनेक आदमी कोई ख़ास कार्यक्रम लेकर नहीं पहुँचते; व्यक्तिगत स्वार्थ, कीर्ति या यश आदि के लिए जाते हैं, और दलबन्दी करते हैं, जिससे सर्वजनिक हित की उपेक्षा होती है। मतदाताओं को चाहिए कि मित्रता या रिश्तेदारी आदि का लिहाज छोड़कर, कार्य करनेवाले सदस्य निर्वाचित किया करें, और समय-समय पर इस बात की जाँच करते रहें कि सदस्य अपने कर्तव्य का समुचित पालन करते हैं या नहीं। पुनः

हमारी पंचायतों और जिला-बोर्डों की ही नहीं, म्युनिसपेलटियों तक की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है। इनकी आय बहुत कम है, और इन्हें अपने कार्य के लिए, आवश्यक धन के वास्ते परमुखापेक्षी रहना पड़ता है। इसलिए इनके द्वारा किये जाने वाले कार्यों का असन्तोषप्रद रहना स्वाभाविक ही है। यह भी उल्लेखनीय है कि यद्यपि इन संस्थाओं की स्थापना का कार्य आरम्भ हुए, सौ वर्ष होने को आये, अब तक इन्हें स्थानीय पुलिस आदि सम्बन्धी कुछ नवीन अधिकार नहीं दिये गये। प्रान्तों में उत्तरदायी शासन आरम्भ होने पर विशेषतया कांग्रेसी सरकारों ने अपने समय (१९३७-३९) में इनके सुधार और उन्नति का अच्छा प्रयत्न किया। इस समय तो शासन के सभी विषयों में महायुद्ध की की छाया पड़ी हुई है। आशा है, युद्ध समाप्त होने पर इन संस्थाओं का यथेष्ट उद्धार होगा।

अठारहवाँ परिच्छेद

देशी राज्य

पिछले परिच्छेदों में ब्रिटिश भारत की शासनपद्धति का वर्णन हुआ है। भारतवर्ष के राजनैतिक भागों में ब्रिटिश भारत सब से बड़ा भाग अवश्य है, परन्तु वही समस्त भारत नहीं है। भारतवर्ष के अन्य भागों में वह भाग प्रमुख है, जो देशी राज्यों में विभक्त है, और जिसे कुछ आदमी 'भारतीय भारत' भी कहते हैं। यहाँ के

निवासियों पर अंगरेजी सभ्यता और रंग-ढंग का प्रभाव कम पड़ा है, और यहाँ की शासनपद्धति में भी ब्रिटिश भारत से बहुत अन्तर है। जैसा पहले कहा गया है, देशी राज्यों का कुल क्षेत्रफल सात लाख वर्ग मील से अधिक और जनसंख्या नौ करोड़ से ऊपर है।

साधारण परिचय—सन् १९३५ के विधान के अनुसार, देशी राज्य ('स्टेट') भारतवर्ष के ऐसे किसी भी भाग को कह सकते हैं, जो ब्रिटिश भारत का भाग न हो, और जिसे सम्राट् ने राज्य मान लिया हो, चाहे वह राज्य कहा जाय या रियासत, या जागीर या और कुछ। इस प्रकार देशी राज्य का मुख्य लक्षण यही रह जाता है कि सम्राट् ने उसे राज्य माना है। अस्तु, यहाँ देशी राज्यों से भारतवर्ष के उन भागों का प्रयोजन है, जिनका आन्तरिक शासन यहाँ के ही राजा या सरदार, विविध संधियों के अनुसार, सम्राट् की अधीनता में रहते हुए, करते हैं। छोटे-बड़े इन सब राज्यों की संख्या ५६० है। इनमें से हैदराबाद, बड़ौदा, मैसूर, कश्मीर और ग्वालियर आदि कुछ तो अपने विस्तार और जनसंख्या में योरप के एक-एक राष्ट्र के समान, तथा एक-एक करोड़ रुपये से अधिक आय वाले हैं, और बहुत से राज्य साधारण गाँव सरीखे हैं। जिन्हें वास्तव में राज्य कहा जाना चाहिए, उनकी संख्या दो सौ से भी कम है, शेष सनदी जागीरें (' इस्टेट्स ') हैं, जिनके अधिपति सरदार या 'चीफ' कहलाते हैं। केवल ३० ही राज्य ऐसे हैं, जिनकी आबादी, क्षेत्रफल और साधन ब्रिटिश भारत के औसत

जिले के समान हैं। प्रमुख देशी राज्यों अथवा उनके समूहों के नाम, जनसंख्या और क्षेत्रफल इस पुस्तक के पहले परिच्छेद में दिये जा चुके हैं।

देशी राज्यों का शासन-प्रबन्ध— अधिकतर देशी राज्यों में कोई शासन-विधान नहीं है। उनका शासन, शासक की व्यक्तिगत इच्छा, रुचि या योग्यता आदि के अनुसार बदलता रहता है। जिन राज्यों का शासन-प्रबन्ध कुछ निश्चित है, उनमें भी परस्पर में समानता नहीं है, प्राय: सबका अपना-अपना निराला ढंग है। कहीं-कहीं तो महाराजा (प्रधान शासक) के बाद मुख्याधिकारी दीवान होता है, और सब बड़े-बड़े अधिकारी उसके अधीन रहते हैं। कहीं-कहीं दीवान प्रधान-मंत्री होता है, और विविध विभागों का प्रबन्ध करने वाले मंत्री उसके सहायक होते हैं। किसी-किसी राज्य में प्रबन्धकारिणी कौंसिल है, इसके सदस्य भिन्न-भिन्न विभागों का संचालन करते हैं, परन्तु सब पर महाराजा का नियंत्रण रहता है।

कुछ देशी राज्यों में व्यवस्थापक सभाएँ हैं। पर ऐसे राज्यों की संख्या केवल तीस के लगभग है। इनकी सभाओं में से भी अधिकतर में सरकारी सदस्यों की काफी संख्या है, तथा ग़ैरसरकारी सदस्य भी जनता द्वारा निर्वाचित न होकर नामजद होते हैं; अथवा म्युनिसिपेलटियों आदि द्वारा चुने जाते हैं। वास्तव में देशी राज्यों में निर्वाचन-प्रथा का बहुत ही कम उपयोग हो रहा है। जनता को व्यवस्था-कार्य के लिए अपने प्रतिनिधि चुनने का अधिकार नहीं सा है। फिर, देशी राज्यों की अधिकतर

व्यवस्थापक सभाओं को क़ानून बनाने या बजट की मदें स्वीकार करने का यथेष्ट अधिकार न होने से, वे एक प्रकार की परामर्शदातृ संस्था हैं; उनका शासकों पर कुछ नियंत्रण नहीं।

न्याय के सम्बन्ध में बात यह है कि शासन की भाँति उसकी भी भिन्न-भिन्न राज्यों में पृथक्-पृथक् रीति है। अधिकांश राज्यों में निराले-निराले कानून प्रचलित हैं। कुछ में तो न्याय सम्बन्धी कानून का अभाव ही कहा जा सकता है; शासकों की इच्छा ही कानून है। लगभग चालीस राज्यों में हाईकोर्ट कुछ-कुछ ब्रिटिश भारत के ढंग पर संगठित हैं। कुछ राज्यों में न्याय-विभाग शासन-विभाग से पृथक् हैं; परन्तु ऐसे राज्यों की संख्या केवल ३४ के ही लगभग है।

कुछ थोड़े-से उन्नत राज्यों को छोड़ कर अन्य राज्यों में म्युनिसपेलिटियों आदि स्थानीय संस्थाओं की भी बहुत कमी है। कितने ही राज्यों की तो राजधानी में भी म्युनिसपेलिटी नहीं है; अथवा, यदि है भी, तो उसमें नागरिकों का यथेष्ट प्रतिनिधित्व नहीं, राजकर्मचारियों का ही प्रभुत्व रहता है।

आय-व्यय— अधिकांश देशी राज्य अपना वार्षिक शासन-विवरण या रिपोर्ट प्रकाशित नहीं करते, और, जो रिपोर्ट प्रकाशित भी होती हैं वे अङ्गरेजी में तो होती ही हैं, इसके अतिरिक्त वे सर्वसाधारण को सुलभ और स्पष्ट नहीं होती। इसलिए यह ठीक-ठीक ब्योरेवार मालूम नहीं हो सकता कि किसी खास वर्ष में किसी राज्य को किस-किस मद से कितनी-कितनी आय हुई तथा वह किस प्रकार खर्च की गयी। कुछ राज्य अपनी

आय के अन्दर खर्च करते हैं, कुछ उससे अधिक भी करते हैं। कुछ राज्यों पर ऋण-भार बहुत अधिक है, यद्यपि उन्होंने किसी विशेष उत्पादक कार्य में पूँजी नहीं लगा रखी है।

जैसा कि पहले किया गया है, अधिकतर देशी नरेश प्रजा के प्रति कुछ भी उत्तरदायी नहीं हैं, वे स्वेच्छानुसार भाँति-भाँति के कर लगाते हैं, और जब चाहें वे उन्हें बढ़ा देते हैं; किसी व्यवस्थापक सभा आदि का कुछ नियंत्रण नहीं रहता। खर्च के विषय में भी वे बहुधा स्वच्छन्द हैं। वे आय का अधिकांश भाग शिकार, नाच, तमाशे, विलायत-यात्रा, शौकीनी या विलासिता में, और, भारत सरकार के पदाधिकारियों के स्वागत-सत्कार आदि में, अपनी इच्छानुसार खर्च करते हैं। उनका स्वयं अपने लिए या राजपरिवार के वास्ते लिया जाने वाला द्रव्य निर्धारित नहीं होता, और यदि निर्धारित भी होता है तो उसकी मात्रा काफी अधिक होती है। अवश्य ही त्रावंकोर आदि किसी-किसी राज्य में ऐसा नहीं होता; पर कुल राज्यों को देखते हुये इन की संख्या अत्यल्प है। प्रायः नरेश अपने कृपा-पात्रों को उच्च पदाधिकारी बनाकर खूब वेतन आदि देते हैं। जिन थोड़े से राजाओं की रुचि सत्कार्यों में होती है, उन के द्वारा दान-धर्म आदि लोकोपकारी कार्यों में भी अच्छा खर्च हो जाता है।

नरेशों का सम्मान—भारत-सरकार की ओर से देशी नरेश दो प्रकार से सम्मानित होते हैं—(१) उपाधियों तथा अवैतनिक सैनिक पदों से, और, (२) तोपों की सलामी से।

कुछ उपाधियाँ पैत्रिक और स्थायी रहती हैं, तथा कुछ अस्थायी और व्यक्तिगत रहती हैं। ब्रिटिश सरकार कभी-कभी नरेशों को अवैतनिक सैनिक यह पद भी देती है, जैसे लेफ्टिनेंट जनरल या कर्नल आदि। देशी नरेशों में से ११८ को सलामी का सम्मान प्राप्त है। इनमें से जब कोई नरेश अपने राज्य से बाहर जाता है, या बाहर से आता है, अथवा नरेश की हैसियत से ब्रिटिश भारत में आता है, या यहाँ से लौटता है, तो उसके सम्मान के लिए निर्धारित संख्या में तोपें छोड़ी जाती हैं; यह संख्या ९ से २१ तक होती है। इसके तीन भेद हैं:—स्थायी, व्यक्तिगत, और स्थानीय अर्थात् केवल राज्य के भीतर मिलने वाली सलामी।

देशी राज्यों के अधिकार—देशी राज्यों के निवासी अपने-अपने नरेश की प्रजा हैं। साधारणतया इन पर, अथवा इनके शासकों पर, ब्रिटिश भारत का क़ानून नहीं लग सकता। हाँ, देशी राज्य में रहने वाली ब्रिटिश प्रजा पर, तथा रेजीडेंसी, छावनी, रेल या नहर की भूमि में, अथवा राजकोट या बढ़वान (गुजरात) जैसे स्थानों में, जहाँ व्यापार आदि के कारण बहुत से अंगरेज रहते हों, ब्रिटिश भारत के ही क़ानून का व्यवहार होता है। ब्रिटिश भारत का कोई अपराधी यदि किसी देशी राज्य में भाग जाय तो वह उस नरेश की आज्ञा से पकड़ा जाकर, ब्रिटिश भारत में भेज दिया जाता है। देशी राज्यों की प्रजा अपने राज्य की सीमा के बाहर ब्रिटिश प्रजा की तरह मानी जाती है। यदि कोई व्यक्ति हिन्दुस्तान से बाहर जाना चाहे तो उसे

सरकार से 'पासपोर्ट' लेना पड़ता है। साधारणतः देशी नरेश अपनी प्रजा से कर लेते, तथा उसके दीवानी और फौजदारी मामलों का फैसला करते हैं। कुछ नरेश अपने यहाँ आने वाले माल पर चुङ्गी लेते हैं। कुछ अभी तक अपने रुपये आदि सिक्के भी ढालते हैं; परन्तु इन्हें अपने यहाँ अंगरेजी रुपये को वही स्थान देना पड़ता है; जो उसे ब्रिटिश भारत में मिला है।

भारत-सरकार से सम्बन्ध—देशी राज्यों का भारत-सरकार से समय-समय पर भिन्न-भिन्न प्रकार का सम्बन्ध रहा है। आरंभ में सरकार इन्हें स्वतंत्र और अपनी बराबरी का मानती थी। पीछे जब अंगरेजी राज्य की नींव जम गयी और देशी राजा कमजोर हो गये तो सरकार इन्हें अपने से छोटे दर्जे का समझने लगी। कालान्तर में यहाँ अंगरेजी राज्य बहुत शक्तिशाली होगया तब सरकार देशी राज्यों पर अपना स्वामित्व या प्रभुत्व मानने लग गयी। यही कारण है कि सरकार की भिन्न-भिन्न देशी राज्यों से समय-समय पर जो सधियाँ हुई हैं, उनकी भाषा और शर्तों में स्पष्ट अन्तर है।

देशी राज्यों के प्रति भारत-सरकार की नीति यह है कि जब तक ये उसके प्रति राजभक्ति बनाये रखें और पहले की हुई संधियों या शर्तों का यथोचित पालन करते रहें, तब तक सरकार इनकी रक्षा करेगी, और इनका अस्तित्व बनाये रखेगी। साधारण दशा में भारतीय नरेश अपनी रियासतों का स्वयं प्रबन्ध करते हैं, परन्तु आवश्यक समझने पर भारत-सरकार इनके प्रबन्ध में हस्तक्षेप कर सकती है। भारतीय नरेश सरकार के

परामर्श की अवहेलना नहीं कर सकते। भारत-सरकार जिस नरेश को अयोग्य या असमर्थ समझे, उसे गद्दी से उतार कर, उसके किसी सम्बन्धी को पदारूढ़ कर देती है। यदि किसी नरेश के सन्तान न हो तो उसे उत्तराधिकारी या वारिस गोद लेने की इजाजत दी जाती है। वारिस की नाबालगी की हालत में सरकार देशी राज्य के शासन का प्रबन्ध करती है। इन राज्यों को इस बात की अनुमति नहीं रहती कि सरकार की आज्ञा बिना परस्पर एक दूसरे से, अथवा किसी विदेशी राष्ट्र से, किसी प्रकार का राजनैतिक व्यवहार कर सकें, अथवा किसी विदेशी को अपने यहाँ नौकर रख सकें। इन राज्यों की रक्षा का जिम्मा भारत-सरकार ने अपने ऊपर ले रखा है, और इन्हें सरकार की सहायता के लिए कुछ सेना रखनी पड़ती है। ये थोड़ी सी सेना अपनी आन्तरिक शान्ति अथवा दिखावे के लिए भी रख सकते हैं, परन्तु किसी पर चढ़ाई करने, अथवा किसी की चढ़ाई से अपने को बचाने के लिए ये कोई फौज नहीं रख सकते। कोई राजा अपने राज्य में किला नहीं बना सकता; पुराने किले की मरम्मत के लिए भी सरकार की अनुमति लेनी होती है। यदि सरकार को किसी राज्य में तार, रेल या फौज के लिए जमीन की आवश्यकता हो, तो वह उसे बिना मूल्य दी जाती है। बड़े से बड़े देशी राज्य के शासक को यह अधिकार नहीं है कि किसी अंगरेज या अमरीकन अपराधी को फाँसी दे सके।

भारत-सरकार का नियन्त्रण—सब देशी राज्य भारत-सरकार के न्यूनाधिक अधीन हैं। केवल आसाम के राज्यों को

छोड़कर भारतवर्ष के किसी भी राज्य का सम्बन्ध प्रान्तीय शासक (गवर्नर) से नहीं है; सब का सम्बन्ध सम्राट्-प्रतिनिधि (वायसराय) से रखा गया है। पुनः अधिकांश राज्यों का सम्बन्ध राजनैतिक विभाग से, और कुछ का विदेश-विभाग से है। कश्मीर, हैदराबाद, गवालियर, और मैसूर में एक-एक रेजीडेन्ट है, वह विशेषतया इन्हीं राज्यों सम्बन्धी काम के लिए है। इनमें से किसी राज्य का सम्राट्-प्रतिनिधि से जो पत्र-व्यवहार आदि होता है, वह उस राज्य के रेजीडेन्ट द्वारा ही होता है। अन्य रेजीडेन्ट कई-कई राज्यों या किसी राज्य-समूह सम्बन्धी काम करते हैं। इनके अधीन प्रायः दो-तीन पोलिटिकल एजन्ट या छोटे रेजीडेन्ट होते हैं, जो बहुत से छोटे छोटे राज्यों सम्बन्धी कार्य निपटाते हैं। इन राज्यों तथा सम्राट्-प्रतिनिधि में होनेवाला पत्र-व्यवहार क्रमशः पोलिटिकल एजन्ट और रेजीडेन्ट के द्वारा होता है। यह तो राजनैतिक विभाग से सम्बन्ध रखनेवाले राज्यों की बात हुई। अन्य (विदेश विभाग से सम्बन्धित) राज्यों में से भूटान और सिक्कम में पोलिटिकल अफसर हैं, बलोचिस्तान में रेजीडेन्ट हैं,और, पश्चिमोत्तर सीमा-प्रांत के राज्यों में उस प्रांत का गवर्नर ही पोलिटिकल एजन्ट है।

बरार के सम्बंध में, निजाम हैदराबाद के पत्र-व्यवहार करते समय भूत-पूर्व वायसराय लार्ड रीडिंग ने जिस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था, उसका आशय यह है कि देशी नरेश अपने राज्यों के भीतरी प्रबन्ध में भी स्वतंत्र नहीं हैं। भारतवर्ष में, शान्ति और सुव्यवस्था रखना साम्राज्य-सरकार का, किसी संधि-

पत्र से नहीं, स्वयं-सिद्ध अधिकार है। ब्रिटिश सरकार को जब जैसा जँचे, वह किसी देशी राज्य के भीतरी प्रबन्ध में हस्तक्षेप कर सकती है।

जाँच कमीशन—ऐसे झगड़ों के विषय में, जो दो या अधिक राज्यों में, किसी राज्य और किसी प्रान्तिक सरकार में, या, किसी राज्य और भारत-सरकार में उपस्थित हो, एवं जब कोई राज्य सरकार अथवा उसके किसी प्रतिनिधि के आदेश से असन्तुष्ट हो, वायसराय एक कमीशन नियुक्त कर सकता है, जो झगड़े वाले मामले की जाँच करके अपनी सम्मति उसके सामने उपस्थित करे। अगर वायसराय इसे मंजूर न कर सके तो वह उस मामले को फैसले के लिए भारत-मंत्री के पास भेज देगा। जाँच-कमीशन की व्यवस्था सन् १९२० ई० से हुई है। सन् १९४२ तक इसके प्रयोग का अवसर नहीं आया। जब कभी भारत-सरकार को किसी नरेश के विरुद्ध बहुत शिकायत हुई, उसने अन्ततः 'स्वेच्छा पूर्वक' राज्य-त्याग करना उचित समझा। ऐसा प्रतीत होता है कि राजा अपने दोषों पर प्रकाश नहीं पड़ने देना चाहते, तथा वे कमीशन के परिणाम का पहले से अनुमान कर, उससे बहुत आशंकित रहते हैं।

सन् १९४२ में महाराज रीवां की, संगीन जुर्मों के सम्बन्ध में एक कमीशन द्वारा इन्दौर रेजीडेन्सी में, बन्द कमरे में, जाँच की गयी थी। कमीशन के दो तथा तीन सदस्यों ने अलग-अलग रिपोर्ट दी। बहुमत ने महाराज को सब आरोपों से मुक्त माना; अल्पमत की राय में आरोप सिद्ध हो गये। दोनों रिपोर्टों के निरीक्षण के बाद वायसराय का यह मत रहा कि हत्या के मामले में महाराज निर्दोष हैं, परन्तु रेजीडेन्सी से, वहाँ के

कर्मचारियों को घूस देकर गुप्त सूचनाएँ प्राप्त करने विषय में दोषी हैं। अतः वायसराय ने महाराज को अपने पद पर रीवां लौट आने की तो अनुमति दी, पर कुछ शर्तें लगा दी। क्योंकि यह निर्णय कमीशन (के बहुमत) की सिफारिशों के विरुद्ध था, वायसराय ने महाराज को इस विषय में भारत-मंत्री का अन्तिम निर्णय प्राप्त करने का अवसर दिया। परन्तु महाराज ने शर्तें स्वीकार करलीं और कुछ महत्त्वपूर्ण नियुक्तियाँ वायसरायके आदेशानुसार होने दीं; जिसमें प्रधानमन्त्री के पद पर एक अंगरेज सिविलियन की नियुक्ति भी है।

नरेन्द्र मण्डल——सन १९१९ के सुधारों के अनुसार, १९२१ से नरेन्द्र-मंडल (चेम्बर-आफ-प्रिंसेज) नामक एक समिति बनी हुई है। इसमें १२१ सदस्य हैं बड़ी-बड़ी १०९ रियासतों के नरेशों को एक-एक प्रतिनिधि भेजने का अधिकार है और १२ सदस्य १२६ नरेशों के प्रतिनिधि हैं। शेष छोटी छोटी रियासतों को इसमें कोई स्थान प्राप्त नहीं है। जिन विषयों का प्रभाव कई रियासतों पर पड़ता हो, अथवा जिनका सम्बन्ध ब्रिटिश साम्राज्य या ब्रिटिश भारत और देशी रियासतों से हो, उन पर इस संस्था की सम्मति माँगी जाती है। इसका सभापति वायसराय होता है; उसकी अनुपस्थिति में राजाओं में से ही कोई प्रधान का कार्य करता है। मंडल के नियम, वायसराय नरेशों की सम्मति लेकर बनाता है। मंडल प्रति वर्ष एक छोटी-सी स्थायी समिति बनाता है, जिससे वायसराय या सरकार का विदेश-और राजनैतिक विभाग देशी रियासतों सम्बन्धी ऐसे विषयों में सम्मति लेता है, जिन्हें वह महत्त्वपूर्ण समझता है।

मंडल का प्रधान कार्यालय देहली में है। अधिवेशन प्राय:

साल में एक बार होता है, उसमें वायसराय द्वारा स्वीकृत विषयों पर ही वादानुवाद होता है। सन १९२८ ई० तक अधिवेशन की सब कार्रवाई गुप्त रखी जाती थी, अब इस में कुछ दर्शक भी उपस्थित हो सकते हैं।

नरेन्द्र मण्डल ने अभी तक जनता का कोई हित साधन नहीं किया, इसके अधिकार बहुत परिमित हैं। स्वयं कई राजा भी इसे अनुपयोगी समझते हैं। इसमें प्रायः उन्हीं राजाओं की आवाज सुनी जाती है, जो भारत-सरकार के विशेष कृपा-पात्र हों, जो उस के प्रतिनिधि होकर साम्राज्य-परिषद या अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में भाग लेते हों। हैदराबाद, बड़ौदा और मैसूर आदि के बड़े बड़े राजा इस मंडल के अधिवेशनों में सम्मिलित नहीं होते।

ब्रिटिश भारत का शासन-सुधार और देशी राज्य—ब्रिटिश भारत और देशी राज्य एक दूसरे से मिले हुए हैं, इनका भाषा, जाति, धर्म आदि सभी दृष्टियों से घनिष्ठ सम्बन्ध है। एक में जो परिवर्तन होता है, उसका दूसरे पर प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता। पिछले योरपीय महायुद्ध के समय ब्रिटिश भारत में उत्तरदायी शासन की माँग बढ़ी और १९१९ का शासन सुधार क़ानून बना तो देशी राज्यों की जनता में भी कुछ आशाओं का संचार होने लगा। अब नरेशों को अपने स्वच्छन्दतामूलक अधिकारों पर आघात होने की आशंका हुई। पीछे जब केन्द्र में उत्तरदायी शासनपद्धति प्रचलित होने की बात उठी और सन् १९२७ में ब्रिटिश भारत के शासन सुधारों के सम्बन्ध में जाँच करने के लिए साइमन कमीशन की नियुक्ति हुई तो देशी नरेशों को और भी

अधिक चिन्ता हुई। नरेंद्र मण्डल की स्थापना करके ब्रिटिश सरकार उन्हें कुछ संगठित कर चुकी थी। अब नरेशों की यह इच्छा प्रबल हो उठी कि किसी प्रकार ऐसी व्यवस्था हो कि वे भविष्य में ऐसी भारत-सरकार की अधीनता या नियंत्रण में न आवें, जो भारतीय जनता के प्रति उत्तरदायी हो; उन्होंने अपनी स्वतन्त्रता का, तथा सम्राट् से सीधा सम्बन्ध रखने का, दावा किया।

बटलर कमेटी—नरेशों की माँग पर सन् १६२८ ई० में ब्रिटिश सरकार ने देशी राज्यों के सम्बन्ध में जाँच करने के लिए एक कमेटी नियुक्त की, जिसे उसके सभापति के नाम पर 'बटलर कमेटी' कहते हैं। इस कमेटी ने अपनी जाँच के फल-स्वरूप प्रधानतया यह सिफारिश की कि (१) नरेशों को ब्रिटिश भारत की, आयात-कर आदि उन मदों की आय में से कुछ हिस्सा दिया जाय, जिनकी आय देशी राज्यों की जनता से वसूल होती है। (२) देशी राज्यों का सम्बन्ध भारत-सरकार से न रहकर सम्राट् से रहे, अर्थात् ब्रिटिश-भारत के गवर्नर-जनरल से न रहकर सम्राट्-प्रतिनिधि से रहे। (३) देशी राज्यों की कोई स्वतन्त्र अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति नहीं है।

सन् १९३५ ई० में भारतवर्ष का नया (संघ शासन) विधान बना, उसमें इस कमेटी की सिफारिशों का ध्यान रखा गया।

देशी राज्यों का सुधार—कुछ उन्नत या सुधार-प्रिय राज्यों को छोड़कर, उनकी प्रजा को सार्वजनिक कार्य करने की उतनी स्वाधीनता नहीं है, जितनी ब्रिटिश भारत की जनता को है। बहुधा उनमें सार्वजनिक मत को दर्शाने वाले समाचार-पत्रों का

अभाव ही है। अनेक स्थानों में राजा करे सो न्याय, और नरेश की इच्छा ही कानून है। कर लगाने की निश्चित नीति नहीं, प्रजा से कितने ही प्रकार से धन संग्रह करके उसे स्वेच्छानुसार खर्च किया जाता है, प्रजा की सुनाई नहीं होती। शिक्षा और स्वास्थ्य आदि की ओर भी यथेष्ट ध्यान नहीं दिया जाता। देशी राज्यों के इन दोषों का दायित्व कुछ अंश में ब्रिटिश सरकार की नीति पर भी है। नरेशों की यह धारणा है, कि जब तक वे उसके प्रतिनिधियों को प्रसन्न करते रहेंगे, सरकार उनके शासन सम्बन्धी दोषों पर विशेष ध्यान न देगी। इसलिए वे प्रजा के प्रति अपने कर्तव्यों का समुचित पालन नहीं करते। 'राज्य' नामधारी प्रत्येक संस्था का यह अनिवार्य कर्तव्य है कि नागरिकों के सुख, समृद्धि और उन्नति में दत्तचित्त हो। जो राज्य अपनी आय, जनसंख्या या क्षेत्रफल आदि की दृष्टि से इतने छोटे या असमर्थ हैं कि उपर्युक्त कर्तव्य पालन के लिए शिक्षा, स्वास्थ्य, आजीविका और न्याय आदि की भी व्यवस्था नहीं कर सकते, उन्हें अपने पृथक् अस्तित्व का अधिकार नहीं है। उन्हें निकटवर्ती राज्य या प्रान्त में सम्मिलित कर दिया जाना चाहिए।

कुछ समय से छोटी रियासतों को कुछ बातों के लिए मिलाने के प्रश्न पर सरकारी तौर से भी विचार होने लगा है। इस दिशा में दक्षिण की रियासतों में विशेष कार्य हुआ है। एकीकरण की योजना का निश्चित स्वरूप मध्य भारत के रेजीडेन्ट ने भी उपस्थित किया है। उसका प्रस्ताव है कि छोटी-छोटी रियासतें मिल-

कर एक संयुक्त हाईकोर्ट स्थापित करें और उन सब के लिए पुलिस का एक ही इन्सपेक्टर जनरल हो। हाईकोर्ट का काम अपील सुनना और रियासती अदालतों का निरीक्षण करना रहे और पुलिस-अफसर रियासतों की पुलिस को अधिक योग्य बनावें। आवश्यकता है कि न्याय और पुलिस के अतिरिक्त शिक्षा, स्वास्थ्य, चिकित्सा, कृषि, आबपाशी और सड़क-निर्माण आदि के लिए भी संयुक्त शासन की व्यवस्था हो, और इस कार्य में लोक-प्रतिनिधियों का यथेष्ट भाग हो।

देशी राज्यों में शासन-सुधार करने, तथा उत्तरदायी शासन-पद्धति की स्थापना करने, के लिए बहुत से राज्यों में प्रजा-मंडल, लोकपरिषद या सार्वजनिक सभाएं आन्दोलन कर रही हैं। सामूहिक रूप से समस्त राज्यों के सम्बन्ध में विचार करनेवाली संस्था अ० भा० देशी राज्य लोकपरिषद् है। जनता के आन्दोलन के फल-स्वरूप, अथवा समय के प्रवाह से कुछ राज्यों में थोड़ा-बहुत सुधार हो रहा है। परन्तु यह बहुत ही कम है। अस्तु, ब्रिटिश सरकार, देशी नरेश और भारतीय जनता तीनों के लिए देशी राज्यों के शासन का प्रश्न विचारणीय है। प्रत्येक को अपना कर्तव्य पालन करना चाहिए। और, किसी को, विशेषतया जनता को, दूसरों की प्रतीक्षा करने की आवश्यकता नहीं है। देशी राज्य शासन भारतवर्ष के एक तिहाई भाग और नौ करोड़ मनुष्यों का सवाल है।*

* इस विषय पर विशेष विचार करने के लिए पाठकों को हमारी 'देशी राज्य शासन' पुस्तक ध्यान पूर्वक अवलोकन करनी चाहिए।

उन्नीसवाँ परिच्छेद



भारतीय शासन नीति

इस पुस्तक में भारतवर्ष की वर्तमान शासन-पद्धति का वर्णन किया गया है। इस परिच्छेद में यह बताया जायगा कि अंगरेजों के समय में, यहाँ शासन नीति में किस प्रकार, तथा क्या-क्या परिवर्तन हुए हैं।

अंगरेजों का समय—मोटे हिसाब से, भारतीय इतिहास में अंगरेजों का समय तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है :—

१—सन् १६०० से १७५७ ई० तक, लगभग डेढ़ सौ वर्ष, ईस्ट इण्डिया कम्पनी के व्यापार की वृद्धि।

२—सन् १७५७ १८५७ ई० तक, सौ वर्ष, कम्पनी के राज्य का विस्तार। कम्पनी की प्रभुता स्थापित होने तथा उसके कर्मचारियों के अधिकाधिक धनवान होने पर इंगलैंड की जनता का ध्यान उसकी ओर आकर्षित हुआ। सन् १७७३ ई० से पार्लिमेंट प्रति बीसवें वर्ष सनद देने लगी। समय-समय पर भारतवर्ष के शासन के कई कानून बने। सन् १७७३ में रेग्यूलेटिंग एक्ट बना, जिसका संशोधन १७८४ में, पिट के इण्डिया एक्ट से हुआ। फिर १८१३, १८३३, और १८५३ में सनदी कानून ('चार्टर-एक्ट') पास किये गये। यहाँ उनके विशेष विचार की आवश्यकता नहीं है, केवल

यही वक्तव्य है कि उस समय शासन व्यवस्था में भारतवासियों का कुछ हाथ न था। सन् १८५७ की राजक्रान्ति के बाद कम्पनी के शासन का अन्त हुआ।

(३) सन् १८५८ से अब तक पार्लिमेंट का प्रबन्ध। इस समय के पुनः तीन भाग किये जा सकते हैं—

(क) सन १८५८ से १९१९ तक। सन् १८५८ में पार्लिमेंट की सम्मति से इंगलैंड की रानी विक्टोरिया ने भारतीय शासन सम्बन्धी सब अधिकार अपने हाथ में ले लिये, और राजकीय घोषणा द्वारा प्रतिज्ञा की कि भारतीय जनता के विचारों में हस्तक्षेप न किया जायगा; जाति या धर्म का पक्षपात न कर भारतीयों को योग्यतानुसार पद और नौकरियाँ दी जायँगी तथा उनके साथ ब्रिटिश प्रजा के समान व्यवहार किया जायगा। देशी राजाओं के अधिकारों तथा मान-प्रतिष्ठा की रक्षा की जायगी। सन् १८५८ ई० में 'भारतवर्ष के बेहतर शासन' का कानून पास किया गया। ईस्ट इण्डिया कम्पनी तोड़ दी गयी, उसके अधिकार कौंसिल-युक्त भारत-मंत्री को दे दिये गये, जो यहाँ के शासन की देखभाल तथा नियंत्रण करने लगा। यहाँ शासन कार्य का संचालन कौंसिल-युक्त गवर्नर-जनरल करता था। सन् १८६१ में कौंसिल-एक्ट पास किया गया, इससे प्रान्तों में व्यवस्थापक सभाएं बनायी जाने लगीं। सन् १८७० और विशेषतया १८८४ से यहाँ स्थानीय स्वराज्य-संस्थाओं की वृद्धि होने लगी। सन् १८८५ ई० से भारतीय राष्ट्र-सभा (काँग्रेस) का शासन-सुधार सम्बन्धी वैध और संगठित आन्दोलन आरम्भ हुआ। फलतः १८९२ के

कौंसिल-कानून के अनुसार विश्वविद्यालयों, और म्युनिसपेलटियों आदि को व्यवस्थापक सभाओं के सदस्य चुनने का अधिकार मिला। सन् १६०६ ई० में मार्ले-मिंटो सुधार हुए, जिनसे व्यवस्थापक सभाओं के कुछ सदस्य निर्वाचित भी होने लगे; परन्तु अधिकांश निर्वाचन अप्रत्यक्ष होता था। इन सुधारों से राष्ट्रीयता-घातक जातिगत प्रतिनिधित्व की भी स्थापना हुई।

(ख) सन् १९१९ से १९३५ तक; प्रान्तों में अंशतः उत्तरदायी शासन नीति का व्यवहार, और, जनता का स्वराज्य-प्राप्ति के लिये असहयोग आदि आन्दोलन। सन् १६१७ में, जब कि स्व-भाग्य निर्णय और छोटे राष्ट्रों की स्वतन्त्रता के नाम पर पिछला योरपीय महायुद्ध चल रहा था, भारत-मन्त्री ने ब्रिटिश पार्लिमेंट में भारतीय शासन सम्बन्धी नवीन नीति की घोषणा की, जिसकी मुख्य बातें ये थीं — (अ) भारतवर्ष में क्रमशः उत्तरदायी शासन स्थापित किया जाय और इसके लिए भारतवासियों को शासन-व्यवस्था के प्रत्येक भाग में क्रमशः अधिकाधिक भाग दिया जाय। (आ) भारतवर्ष जो उन्नति करे, वह ब्रिटिश साम्राज्य का भाग रहते हुए ही करे। (इ) प्रान्तीय सरकारों को भारत-सरकार से अधिकाधिक स्वतन्त्र किया जाय। (ई) उन्नति-क्रम के समय और सीमा का निर्णय ब्रिटिश सरकार और भारत-सरकार करेगी (भारतीय जनता नहीं)।

यह नीति यहाँ के राष्ट्रीय विचार वालों के लिए बहुत असं-तोषप्रद थी। अस्तु, इसके आधार पर शासन-सुधार कानून १६१६

में बना। इस कानून के अनुसार किए गए सुधारों को मांटेग्यु (भारत-मन्त्री) और चेम्सफोर्ड (गवर्नर-जनरल) के नाम पर संक्षेप में 'मांट-फोर्ड सुधार' कहते हैं। ये सन् १६२० से अमल में आये। इनसे उत्तरदायी शासन केन्द्र में आरम्भ नहीं किया गया, भारत सरकार ब्रिटिश पार्लिमेंट के प्रति ही उत्तरदायी रही। [भारतीय व्यवस्थापक मण्डल के सदस्यों की संख्या बढ़ायी गयी, और उसमें एक की जगह दो सभाएँ की गयीं—भारतीय व्यवस्थापक सभा और राजपरिषद्]।

उत्तरदायी शासन केवल नौ प्रान्तों में, और वह भी एक अंश में आरम्भ किया गया। प्रान्तीय व्यवस्थापक परिषदों के सदस्यों की, और मतदाताओं की, संख्या बढ़ायी गयी। इन नौ प्रान्तों में शासन सम्बन्धी विषय दो भागों में विभक्त किये गये थे। रक्षित विषयों का अधिकार तो गवर्नर की प्रबन्धकारिणी सभा को ही रहा था, केवल हस्तान्तरित कहे जानेवाले विषयों का प्रबन्ध गवर्नर अपने मन्त्रियों के परामर्श से करता था, जो प्रान्तीय व्यवस्थापक परिषदों के प्रति उत्तरदायी होते थे। गवर्नर चाहता तो वह किसी विषय का विचार अपनी सरकार के केवल उस भाग से कर सकता था, जो उसका प्रत्यक्ष रूप से जिम्मेवार हो। [जिस पद्धति से शासन-कार्य ऐसे दो भागों में विभक्त होता है, उसे द्वैध शासनपद्धति ('डायर्की') कहते हैं।

इन सुधारों को कांग्रेस ने अपूर्ण, असंतोषप्रद और निराशाजनक ठहराया। उसने नयी व्यवस्थापक संस्थाओं के पहले निर्वाचन में भाग न लिया; असहयोग की नीति रखी। पीछे कांग्रेस में

एक ऐसा दल बन गया, जिसने चुनाव में भाग लेना और इस प्रकार इन थोथे सुधारों को नष्ट करना उचित समझा। यह 'स्वराज्य दल' था। इसने १६२३ के चुनाव में भाग लिया। इसपर बङ्गाल और मध्यप्रान्त में मन्त्रियों का वेतन अस्वीकृत या नाम-मात्र को स्वीकृत हुआ, और सरकार की बारबार हार हुई। तथापि मन्त्री अपने पद पर बने रहे। इससे शासन का अनुत्तरदायी होना स्पष्ट सिद्ध हो गया।

(ग) सन् १९३५ का विधान। सन १६१६ के विधान में ऐसी व्यवस्था की गयी थी कि दस वर्ष के भीतर एक कमीशन इस बात की जाँच करे कि उस समय जो उत्तरदायित्वपूर्ण शासन प्रचलित हो, उसे कहाँ तक बढ़ाना, बदलना या घटाना ठीक है। तदनुसार 'साइमन कमीशन' सन् १९२७ ई० में नियुक्त हुआ। इसके सातों सदस्य अंगरेज़ थे, और वे भी अनुदार विचार वाले। इस कमीशन की रिपोर्ट सन् १६२९ में प्रकाशित हुई। पश्चात सन् १९३० से १९३२ ई० तक लन्दन में अंगरेजों और भारतीयों की तीन बार 'गोलमेज सभा' हुई, इनमें से केवल दूसरी में काँग्रेस ने, महात्मा गांधी द्वारा, भाग लिया। गोलमेज सभाओं तथा विविध कमेटियों के परिणाम-स्वरूप शासन सम्बन्धी प्रस्ताव 'श्वेत पत्र' में प्रकाशित किये गये। यह श्वेत पत्र पार्लिमेंट की दोनों सभाओं की संयुक्त कमेटी के सामने उपस्थित किया गया। इस पर पार्लिमेंट ने सन् १९३५ के भारतीय शासन विधान को रचना की। इसके, प्रान्तों सम्बन्धी भाग का सविस्तर वर्णन और आलोचना पहले की जा चुकी है।

यह भाग सन १९३७ से अमल में आने लगा था। परन्तु जैसा कि आगे बताया जायगा, यह कांग्रेसी प्रान्तों में १९३९ में ही स्थगित हो गया। [विधान का केन्द्र सम्बन्धी भाग अमलमें आने से पूर्व ही स्थगित हो गया, इस का परिचय परिशिष्ट में दिया जायगा।]

सन १९३५ के विधान का प्रयोग—विधान का अच्छा या बुरा होना एक सीमा तक, उसके प्रयोग पर भी निर्भर है। यदि शासक चाहें तो वे इसकी बहुत सी खटकने वाली बातों का जनता को कटु अनुभव न होने दें, वे अपने विशेषाधिकारों का उपयोग न करके इसी विधान से प्रांत की राजनैतिक उन्नति कर सकते हैं। कुछ बातें ऐसी हैं, जिनकी विधान में व्यवस्था न होने पर भी उनका क्रमशः रिवाज पड़ सकता है, उदाहरणवत गवर्नर का प्रान्तीय व्यवस्थापक मण्डल की उस पार्टी के नेता को प्रधान मन्त्री बनाना, जिसका उक्त मण्डल में बहुमत हो; अन्य मन्त्रियों का प्रधान मन्त्री के परामर्शानुसार चुना जाना, और मंत्रिमडल का व्यवस्थापक मण्डल के सामने संयुक्त उत्तरदायित्व होना सम्राट् द्वारा गवर्नरों के नाम जारी होने वाले आदेश पत्रों में उन्हें इस बात की हिदायत भी रहती है।

अस्तु, विधान असन्तोषप्रद है, इसका परिचय इसके प्रयोग में आते ही मिल गया।

इस शासन-विधान के अनुसार प्रान्तीय व्यवस्थापक मण्डलों का प्रथम चुनाव होने पर छः प्रान्तों (बम्बई, मदरास, संयुक्तप्रान्त, बिहार, उड़ीसा, और मध्यप्रान्त) में कांग्रेस-दल का बहुमत था। फलतः इन प्रान्तों के गवर्नरों ने कांग्रेस-दल के नेताओं को अपने-अपने प्रान्त में मन्त्रिमंडल बनाने के लिए बुलाया। परन्तु कांग्रेस ने मन्त्री-पद ग्रहण

करना उस समय तक अस्वीकार किया, जब तक कि गवर्नर यह आश्वासन न दे दें कि रोजमर्रा के शासन कार्य में,वे अपने विशेषाधिकारों का प्रयोग न करेंगे ।

कांग्रेस का कहना यह था कि जब कोई ऐसी विशेष अवस्था हो जिसमें गवर्नरों को यह आवश्यक जान पड़े कि वे शासन-कार्य में दखल दें, तब उनके दखल देने का यही निश्चित मार्ग होना चाहिए कि वे मंत्रियों को अपने पद से अलग कर दें, और नया चुनाव करावें; अथवा, यह भी न करना चाहें तो वे अपनी जिम्मेदारी पर शासन चलावें। अच्छा; कांग्रेस वाले यह क्यों चाहते थे कि मतभेद होने पर मन्त्री निकाले जायँ, मन्त्री स्वयं त्यागपत्र क्यों न दे दें ? बात यह है कि शासन-कार्य में गवर्नर आसानी के साथ हस्तक्षेप करनेवाली आज्ञाएँ न दे सकें, इसके लिए आवश्यकता है, कि वे मन्त्रियों को अलग करने की जिम्मेदारी लें। इसका परिणाम यह होगा कि गवर्नर या तो स्वयं अपने अधिकारसे शासन करें (जो प्रजातन्त्र के बिलकुल विरुद्ध होगा, या प्रजातन्त्र की शैली का अनुसरण कर फिर चुनाव करावें। अस्तु, कांग्रेस-दलों के, मन्त्रि-मण्डल बनाने के लिए, यह शर्त रखने पर गवर्नरों के सामने एक मार्ग यह था कि व्यवस्थापक मण्डलों को भंग किया जाय, फिर से नया चुनाव हो। यह मार्ग भयावह था। कांग्रेसवादी और भी अधिक संख्या में निर्वाचित होकर व्यवस्थापक मण्डलों में पहुँच जाते। दूसरा उपाय यह था कि गवर्नर विधान स्थगित करके शासन-सत्ता अपने हाथ में ले लेते। इसका अर्थ, विधान-रूपी शिशु को उसके जन्म से पहले ही मार डालना होता। ब्रिटिश सरकार इसके लिए तैयार न थी। अतः विधान को अमल में लाने के लिए, जब कि अन्य प्रान्तों में बहुमत दल के मंत्रिमंडल बने, जिन प्रान्तों में कांग्रेस का बहुमत था, उनमें अल्पसंख्यक दलों द्वारा 'अस्थायी मंत्रिमण्डल' बनाये गये; इन्हें जनता ने 'गुड़िया मन्त्रि-मंडल' का नाम दिया। अविश्वास के प्रस्ताव के भय से, ये मन्त्रिमंडल व्यवस्थापक सभाओं के सामने जाने का साहस नहीं कर सकते थे, अतः व्यवस्थापक सभाओं का अधिवेशन स्थगित रखा गया। देश में

महान वैधानिक संकट उपस्थित हो गया। भारत-मन्त्री आदि के वक्तव्य निकले, कांग्रेस की ओर से महात्मा गांधी ने उनका उत्तर दिया। अन्ततः गवर्नर-जनरल ने यह आश्वासन दिया कि आम तौर पर शासन-कार्य मंत्रिमंडल करेंगे, और गवर्नर उनकी सलाह मानेंगे; उसमें हस्तक्षेप न करेंगे। इस पर कांग्रेस ने उक्त छः प्रान्तों में मंत्रिमंडल बनाये। पश्चात्, पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त और आसाम में भी कांग्रेसी मंत्रि-मंडल हो जाने से, गवर्नरों के ग्यारह प्रांतों में से आठ में कांग्रेस शासन स्थापित हो गया।

पद-ग्रहण का परिणाम—अब तनिक यह विचार करें कि कांग्रेस की पद-ग्रहण की नीति कहाँ तक हितकर हुई। कांग्रेसी मंत्रिमंडल के कार्यों को संक्षेप में तीन भागों में बांटा जा सकता है:—(१) नागरिक अधिकारों की वृद्धि, (२) जनता का कष्ट निवारण, और, (३) कांग्रेस-संगठन को अधिक शक्तिशाली बनाकर स्वतंत्रता की लड़ाई को आगे बढ़ाना, तथा केन्द्र में उत्तरदायी शासन प्राप्ति की तैयारी करना।

१—कांग्रेस द्वारा पद ग्रहण किये जाने से कांग्रेसी प्रांतों में नया राजनैतिक वातावरण होगया; बात-बात में अधिकारियों से भयभीत होने की भावना घट गयी। प्रधानमन्त्री विराट जन-समूह की सभा में अपने आपको जनता का सेवक घोषित करने लगा, और पुलिस आदि के कर्मचारियों को चेतावनी देने लगा कि लोगों पर धौंस जमाने की बात छोड़कर वे सेवाभाव से काम करें, अन्यथा उसका दुष्परिणाम भुगतने को तैयार रहें। इन अधिकार-युक्त बातों का यथेष्ट प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता। जनता अपनी शक्ति समझने लगी, और उसमें अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिए जागृति होने लगी।

२—जनता की असुविधाओं को दूर करने के लिए मन्त्रियों ने यथा-शक्ति प्रयत्न किया। राजबन्दी छोड़े गये, जेलों में आवश्यक सुधार किये गये, प्रेसों की जमानतें वापिस की गयीं, बकाया वसूलयाबी रोकी गयी, ग्राम-सुधार के अन्यान्य कार्यों में, ग्राम-पुस्तकालय खोले गये, पंचायतों की वृद्धि की गयी, मद्यपान-निषेध का कार्य आरम्भ किया गया, कितनी ही सार्वजनिक संस्थाओं तथा राजनैतिक पुस्तकों पर से पाबन्दी हटायी गयी। इसके अतिरिक्त, मजदूरों की स्थिति की जाँच करके, उसमें सुधार की कोशिश की गयी, बिहार और संयुक्तप्रान्त में किसानों के हित का कानून, और, मदरास में ऋण-निवारण कानून बनाया गया।

३—कांग्रेस का संदेश गाँव-गाँव में पहुँचा। सन् १९३८ में कांग्रेस-सदस्यों की संख्या तीस लाख थी। किसी एक संस्था के इतने सदस्य होना अनुपम बात है। इस प्रकार हमारी संगठित शक्ति बढ़ी। साथ ही इसके, यथेष्ट अनुशासन का भाव भी बढ़ा।

जिन प्रान्तों में गैर-कांग्रेसी मंत्रिमंडल थे, उनमें भी थोड़े-बहुत जनहितकारी कार्य किये गये।

कांग्रेस-सरकारों का पदत्याग—बड़े संकोच और हिचकिचाहट से कांग्रेस ने नौ प्रान्तों में पदग्रहण किया और मन्त्रिमण्डल बनाये थे। परन्तु विधान था ही अत्यन्त असंतोष-जनक। संयुक्तप्रान्त, तथा बिहार (और मध्यप्रान्त) की घटनाओं से इसके भङ्ग होने की आशंका हुई।

फरवरी सन् १९३८ ई० में संयुक्तप्रान्त और बिहार के मंत्रिमंडलों ने अपने-अपने प्रान्त के राजनैतिक बंदियों को मुक्त करना चाहा। गवर्नरों का मतभेद था। गवर्नर-जनरल ने अपने विशेषाधिकार से गवर्नरों को आदेश किया कि वे मन्त्रियों के परामर्श को अस्वीकार करदें। फलस्वरूप गवर्नरों ने मन्त्रियों की सलाह नहीं मानी। कांग्रेस मन्त्रियों को यह असह्य प्रतीत हुआ, उन्होंने त्याग-पत्र दे दिया। इससे गवर्नरों के सामने नये मन्त्रिमण्डल बनाने का विकट कार्य उपस्थित हो गया; यह कार्य सफलता पूर्वक होना असम्भव था कारण, उपर्युक्त दोनों प्रान्तों के व्यवस्थापक मंडलों में कांग्रेस का स्पष्ट बहुमत था।

यदि अल्प संख्यक दलों के मन्त्रिमण्डल बनाये जाते तो तुरंत ही उनपर अविश्वास का प्रस्ताव होता। अन्य कांग्रेसी प्रांतों में भी ऐसी ही बातें होतीं। अब, गवर्नरों के लिए एक ही मार्ग था, विधान को स्थगित करने का। इसके लिए वे सहसा तैयार न थे। अन्तत: गवर्नर-जनरल के कहने पर कैदियों की मुक्ति के पूर्व उनकी जाँच मन्त्रियों द्वारा ही होने की बात मान ली जाने पर समझौता हो गया।

कुछ समय वैधानिक संकट जैसे-तैसे टलता रहा। आखिर, वह आ ही पहुँचा। सन् १९३९ ई० में योरप में (दूसरा) महायुद्ध छिड़ा। इंगलैंड ने जर्मनी के विरुद्ध युद्ध आरम्भ किया तो भारतवर्ष को भी अपने साथ युद्ध-संलग्न घोषित कर दिया और केन्द्रीय सरकार के अधिकारियों को प्रान्तों में कई प्रकार के काम करवाने के लिए विशेष अधिकार दे दिये, जिससे प्रान्तीय मंत्रिमण्डलों की शक्ति कम रह गयी। यहाँ युद्धसम्बन्धी तैयारी होने लगी और ऐसे महत्वपूर्ण विषय में प्रान्तीय सरकारों का कोई मत नहीं लिया गया। जबकि प्रान्तों में 'स्वराज्य'-विधान चल रहा था, युद्ध के विषय में यहाँ के मन्त्रिमण्डलों की सम्मति न लेना,

और उनकी सर्वथा उपेक्षा करना अनुचित था। कांग्रेसी सरकारों को यह खटकनेवाला ही था, उन्होंने ब्रिटिश सरकार से युद्ध का उद्देश्य पूछा, और यह माँग उपस्थित की कि युद्ध समाप्त होने पर भारतवासियों को अपनी विधान-सभा द्वारा स्वयं ही अपनी शासनपद्धति निश्चित करने का अधिकार रहे। ब्रिटिश सरकार का उत्तर सर्वथा असन्तोषप्रद रहा।❀ इस पर कांग्रेसी सरकारों ने त्यागपत्र दे दिया। जिन प्रान्तों में कांग्रेसी मंत्रिमंडल थे, उनमें गवर्नरों ने शासन-विधान स्थगित करके अपना एकछत्र अधिकार स्थापित कर लिया। पीछे कुछ प्रान्तों में साम्प्रदायिक और अराष्ट्रीय मंत्रिमंडल बनाये गये।

क्रिप्स योजना— जब कि भारतवर्ष पर जापान के आक्रमण की आशंका थी, फरवरी सन् १९४२ में, ब्रिटिश युद्ध-मंत्रिमण्डल की ओर से सर स्टेफर्ड क्रिप्स भारतवर्ष के भावी शासन की एक योजना लेकर यहाँ आये थे; साधारण बोलचाल में उसे 'क्रिप्स योजना' कहते हैं। इस की मुख्य बातें युद्ध के बाद अमल में आनेवाली थीं; वे इस प्रकार थीं :—

❀ पीछे जुलाई १९४१ में, अटलांटिक महासागर में अमरीका के राष्ट्रपति श्री. रूजवेल्ट और ब्रिटिश प्रधान मन्त्री श्री. चर्चिल ने विचार-विनिमय करके 'एटलांटिक घोषणा' की; इस के अनुसार युद्ध का उद्देश्य संसार में स्थायी शान्ति की स्थापना करने के लिए लोकतंत्र शासन प्रणाली की पुनस्थापना और रक्षा करना बतलाया गया। परन्तु श्री. चर्चिल ने पीछे यह स्पष्ट कहा है कि यह घोषणा भारत, बर्मा, तथा ब्रिटिश साम्राज्य के अन्य भागों पर लागू न होगी; हाँ, ब्रिटिश सरकार पहले के निर्णयों पर दृढ़ है।

(१) युद्ध-समाप्ति पर भारतवर्ष को औपनिवेशिक स्वराज्य अर्थात् ब्रिटिश साम्राज्य के स्वाधीन उपनिवेशों का पद दिया जाय।

(२) इसका नाम भारतीय 'यूनियन' (संघ) होगा। विधान-सभा को यह निश्चय करने का अधिकार होगा कि भारतीय यूनियन ब्रिटिश साम्राज्य के अन्दर रहे या बाहर।

(३) युद्ध समाप्त होते ही विधान-सभा बनायी जायगी। (सन् १९३५ के शासन-विधान के अनुसार) प्रान्तीय व्यवस्थापक सभाओं (असेम्बलियों) का नया चुनाव होगा। उनके कुल सदस्य अपने में से दशमांश व्यक्तियों को चुनकर विधान-सभा बनाएँगे। इस सभा में देशी नरेशों के प्रतिनिधि उनके राज्यों की जनसंख्या के अनुपात से होंगे।

[विधान-सभा के सदस्यों का चुनाव बालिग मताधिकार के आधार पर न होगा। और, देशी राज्यों की ओर से लिये जाने वाले सदस्य उनकी जनता के प्रतिनिधि न होंगे।]

(४) जो प्रान्त या राज्य भारतीय यूनियन में सम्मिलित न होना चाहें वे अपना यूनियन अलग बना सकते हैं; उनका ब्रिटिश साम्राज्य से सीधा सम्बन्ध होगा।

[जो प्रान्त भारतीय यूनियन से पृथक् होना चाहे, उसकी व्यवस्थापक सभा के बहुसंख्यक (उदाहरणार्थ कम-से-कम साठ प्रतिशत) सदस्य पृथक् होने के पक्ष में होने चाहिएँ, यदि इमसे कम होंगे तो वहाँ की जनता की राय ली जायगी।]

युद्ध-काल के बारे में बताया गया कि भारतवर्ष की रक्षा के कार्य पर अधिकार और उसके संचालन की जिम्मेवारी ब्रिटिश

जंगी लाट पर होगी, जो ब्रिटिश युद्ध-मंत्रिमण्डल के प्रति जिम्मेवार होगा; वह भारतवासियों में से किसी को नहीं दी जा सकती। [सैनिक और माली साधनों को संगठित करने का कार्य, जनता के सहयोग से भारत-सरकार करेगी।] रक्षा को छोड़कर शेष सब विषय भारतवर्ष के प्रमुख दलों का प्रतिनिधित्व करनेवाले सदस्यों से बनायी हुई राष्ट्रीय सरकार को सौंपे जायेंगे।

योजना अस्वीकृत—इस योजना को भारतवर्ष की विविध संस्थाओं ने भिन्न-भिन्न कारणों से अस्वीकार किया। राष्ट्रीय दृष्टि से, इसमें निम्नलिखित दोष थे, जिनके कारण कांग्रेस ने इसे अस्वीकार किया—

(१) किसी प्रान्त या और देशी राज्य का अलग रहने का अधिकार भारतीय एकता और अखंडता के लिए घातक है।

(२) देशी राज्यों की नौ करोड़ जनता को प्रतिनिधित्व न देकर उनकी उपेक्षा की गयी है।

(३) राष्ट्र-रक्षा की जिम्मेवारी भारत-संतान को न देकर ब्रिटिश सरकार पर रखी गयी है।

वास्तव में यह योजना एक ऐसी हुंडी की तरह थी, जिस पर आगे की मिति डाली हुई हो, जिसका तत्काल मूल्य न हो। कांग्रेस की यह माँग थी कि राष्ट्र-रक्षा की पूरी जिम्मेवारी हमारे हाथ में होनी चाहिए, तभी देश की जनता में वह उत्साह हो सकता है, जो युद्ध के सफल संचालन के लिए आवश्यक होता है। पुनः युद्ध-काल में शासन के अन्य सब विभाग इसी विभाग के सहायक और पोषक बन जाते हैं; अतः रक्षा विभाग की

तुलना में वे गौण हो जाते हैं। निदान आवश्यक सत्ता के अभाव में कांग्रेस ने क्रिप्स योजना अस्वीकार करदी। और, अन्य दलों ने भी उसे स्वीकार नहीं किया।

विशेष वक्तव्य—सन् १९४१ में और फिर सन् १९४२ में केन्द्रीय सरकार के सदस्यों की संख्या बढ़ायी गयी थी, परन्तु वह वृद्धि बिलकुल व्यर्थ रही; इसका विचार चौथे परिच्छेद में किया जा चुका है।* प्रान्तों में से पाँच में गतिरोध अब भी बना हुआ है, और छः प्रान्तों में सन् १९३५ के विधान के अनुसार 'प्रान्तीय स्वराज्य' चल रहा है; उनमें भी वह कैसा चल रहा है, यह जानकारों से छिपा नहीं। यह स्पष्ट है कि भारतवर्ष के शासन-प्रबन्ध की वर्तमान स्थिति भारतवासियों के लिए असह्य है। और, किसी भी विचारशील तथा निस्पक्ष व्यक्ति को इससे संतोष नहीं हो सकता।

यह ठीक है कि सत्ता-प्रेमी शासक अपने अधिकारों को सहसा कम करना नहीं चाहते, परन्तु यह भी निश्चित है कि यह स्थिति बहुत समय तक नहीं टिक सकती। भारतवर्ष अपना उचित स्थान ग्रहण करके रहेगा, चालीस करोड़ जनता का उद्धार होगा, और, मानवता का हित साधन होगा। हाँ, इसके लिए प्रत्येक भारत-संतान को तथा अन्य विश्व-हितैषियों को अनेक कष्ट सहते हुए भी अपना महान कर्तव्य पालन करने के लिए तैयार रहना चाहिए।

---

*केन्द्रीय सरकार का संगठन तथा उसका भारतीय व्यवस्थापक मंडल से सम्बन्ध, सन् १९१९ के ही विधान के अनुसार है।

परिशिष्ट

संघ-शासन



सन् १९३५ के विधान का संघ-शासन सम्बन्धी भाग भारतीय राजनैतिक दलों को पसन्द नहीं आया, और अन्ततः वह स्थागित ही होगया। तथापि भारतवर्ष के भावी शासन का लक्ष्य संघ-शासन ही है। अतः यहाँ उपर्युक्त विधान में प्रस्तावित संघ-शासन के स्वरूप, और उसके गुण दोष आदि का विचार किया जाता है। पहले यह जान लेना चाहिए कि संघ किसे कहते हैं, उसके क्या लक्षण होते हैं।

संघ——यह बताया जा चुका है कि जब कुछ राज्य आत्म-रक्षा या आर्थिक अथवा राजनैतिक उन्नति के लिए अपनी सेना, मुद्रा या व्यापार आदि कार्यों का प्रबन्ध सामूहिक रूप से करना चाहते हैं, और इस उद्देश्य से अपना संगठन करते हैं, तो यह कहा जाता है कि उन्होंने अपना संघ (फेडरेशन) बनाया।

सघ-शासन में, संघान्तरित राज्यों की सरकारें अपने-अपने राज्य सम्बन्धी शिक्षा, स्वास्थ्य आदि विषयों में स्वाधीन रहती हैं। ऐसी शासनपद्धति आस्ट्रेलिया, संयुक्तराज्य अमरीका, और जर्मनी आदि में प्रचालित है। यह उन देशों के लिए अधिक उपयुक्त होती है, जिनका विस्तार बहुत हो, जहाँ के विविध भागों के निवासियों की आवश्यकताओं, भाषा, रहन-सहन, और रीति

रस्म आदि में भिन्नता हो; कारण, इस शासनपद्धति के अनुसार विविध राज्यों को अपने आन्तरिक शासन-प्रबन्ध में स्वतन्त्रता होती है। वे अपनी आय का कुछ भाग और अपने कुछ अधिकार संघ सरकार को देते हैं, जो इन राज्यों के पारस्परिक झगड़े मिटाने, तथा उनकी बाहरी आपत्ति से रक्षा करने के अतिरिक्त, सार्वदेशिक हित सम्पादन करने का कार्य करती है। *

संघ-योजना के कुछ लक्षण—विविध संघों के स्वरूप में देश-काल के अनुसार अन्तर होता है; तथापि उनमें कुछ बातें प्रायः मिलती हैं, यथा (१) निर्धारित क्षेत्र में संघ का अधिकार सर्वोपरि और स्थायी होता है। (२) संघ को अपने कार्य के लिए जनता में आवश्यक साधन जुटाने का पूर्ण अधिकार होता है। (३) विधान में इस बात का स्पष्ट उल्लेख रहता है कि किन-किन विषयों में केन्द्रीय सरकार का, और किनमें संघान्तरित राज्यों का अधिकार होगा, तथा 'शेष अधिकार' किसे होंगे। (४) संघ में सम्मिलित सब राज्यों की जनता संघ की प्रजा बन जाती है। उन्हें कितने ही विषयों में संघ-सरकार के कायदे कानून मानने पड़ते हैं। (५) संघ-न्यायालय समय-समय पर उपस्थित होनेवाले शासन-विधान सम्बन्धी प्रश्नों पर अपना निर्णय देता है, जो संघ, संघान्तरित राज्यों की सरकारों, एवं व्यवस्थापक मण्डलों को मानना होता है। (६) जब तक संघ को उसे निर्माण करनेवाले राज्य न तोड़ दें, किसी राज्य को उससे पृथक् होने का अधिकार नहीं होता।

* संघ शासन पद्धति के विपरीत, एकात्मक ('यूनीटरी') शासनपद्धति वाले राज्य में प्रायः समस्त शासन-कार्य केन्द्र से होता है। ऐसे राज्य के भिन्न-भिन्न भाग केन्द्रीय सरकार के सर्वथा अधीन होते हैं।

सन् १९३५ का संघ-विधान

अब हम सन १९३५ के संघ विधान का संक्षेप में परिचय देते हैं।

संघ का निर्माण—इस विधान के अनुसार यह व्यवस्था की गयी थी कि भारतवर्ष में संघ-निर्म्माण की घोषणा सम्राट् द्वारा उस समय की जायगी, जबकि पार्लिमेंट प्रस्ताव करके उससे इस कार्य के लिए निवेदन करेगी; और, जब इतने देशी राज्य संघ-शासन को स्वीकार कर लेंगे, जितने राजपरिषद (कौंसिल-आफ-स्टेट) के कम-से-कम ५२ सदस्य चुनने के अधिकारी हों, और जिनकी जनसंख्या, देशी राज्यों की कुल जनसंख्या की कम-से-कम आधी हो।

किसी देशी राज्य का संघ में सम्मिलित होना उस समय समझा जायगा, जब सम्राट् उस राज्य के नरेश का प्रवेश-पत्रक (इन्स्ट्रूमेंट-आफ-एक्सेशन) स्वीकार कर लेगा। प्रवेश-पत्रक में नरेश अपनी ओर से, तथा अपने वारिसों और उत्तराधिकारियों की ओर से यह सूचित करेगा कि वह संघ में सम्मिलित होना स्वीकार करता है, और अपने राज्य के अन्दर खास-खास बातों की व्यवस्था वह स्वयं न करके सम्राट्, गवर्नर-जनरल, संघीय व्यवस्थापक मंडल, संघ-न्यायालय और संघीय रेलवे अथारिटी द्वारा कराएगा। नरेश इस शर्तनामे से अपने ऊपर यह उत्तरदायित्व भी लेगा कि शासन-विधान की शर्तनामे सम्बन्धी बातों का उसके राज्य में ठीक तरह से पालन किया जायगा।

संघ का निर्माण हो जाने पर भारत-मंत्री के भारतीय शासन सम्बन्धी अधिकारों में तथा केन्द्रीय सरकार और व्यवस्थापक मंडल के स्वरूप एवं अधिकारों में अन्तर आ जायगा।

भारत-मन्त्री—भारत-मन्त्री के वर्तमान अधिकारों और कार्य-पद्धति के सम्बन्ध में पहले लिखा जा चुका है। नवीन विधान के अनुसार जिन विषयों में गवर्नर-जनरल को अपने विवेक या व्यक्तिगत निर्णय के अनुसार कार्य करना होगा (ये विषय आगे बताये जायँगे।),

उनमें वह भारत-मन्त्री के नियंत्रण में होगा, और उसके द्वारा समय-समय पर दी हुई आज्ञाओं का पालन करेगा। पहले यह कहा गया है कि जिन विषयों में प्रान्तों के गवर्नरों को अपने विवेक या व्यक्तिगत निर्णय के अनुसार कार्य करना होता है, उनमें वे गवर्नर-जनरल के नियंत्रण में हैं, परन्तु गवर्नर-जनरल का यह नियंत्रण अपने विवेक से होता है, अतः इस पर भी भारत-मन्त्री का नियन्त्रण है। इसका अर्थ यह है कि प्रान्तीय शासन सम्बन्धी इस कार्य पर भी भारत-मन्त्री का कुछ नियंत्रण है; हाँ वह गवर्नर-जनरल के द्वारा है। भारत-मन्त्री गवर्नर-जनरल और गवर्नरों के नाम ज़ारी किये जानेवाले आदेश-पत्रों ('इन्स्ट्रूमेंटस-आफ-इन्स्ट्रक्शन्स') का मसविदा पार्लिमेंट के सामने उपस्थित करेगा, और पार्लिमेंट की दोनों सभाएँ सम्राट् से उन आदेश-पत्रों को जारी करने का आवेदन करेंगी।

संघ-निर्म्माण के बाद, भारत-मन्त्री की सभा अर्थात् 'इंडिया कौंसिल' तोड़ दी जायगी; हाँ, उसके तीन से छः तक परामर्शदाता रहा करेंगे, जिनकी नियुक्ति वह स्वयं करेगा। भारत-मन्त्री और उसकी कौंसिल के नाम से लन्दन के बैंक-आफ़-इंगलैंड में जो खाता है, वह पीछे भारत-मन्त्री के नाम से रहेगा। भारत-मन्त्री और उसके परामर्शदाताओं का वेतन, उसके विभाग का ख़र्च, कर्मचारियों का वेतन और भत्ता ब्रिटिश सरकार के कोष से दिया जायगा, जैसा कि ब्रिटिश साम्राज्य के उपनिवेश-मन्त्रियों सम्बन्धी ख़र्च दिया जाता है। भारत-मन्त्री और गवर्नर-जनरल के पारस्परिक समझौते के अनुसार, भारत-मन्त्री का विभाग जो कार्य भारतीय संघ सम्बन्धी करेगा, उसके उपलक्ष में संघ की ओर से निर्धारित रकम ब्रिटिश कोष में दी जाया करेगी। अभी तक जो मुक़दमे भारत-मन्त्री के नाम या उसकी तरफ़ से चलते थे, वे संघ की स्थापना के बाद संघ-सरकार या प्रान्तीय सरकार की ओर से, या उनके विरुद्ध चलाये जाया करेंगे।

हाई कमिश्नर—हाई कमिश्नर के विषय में पहले लिखा जा

चुका है। यह पदाधिकारी संघ-निर्म्माण के बाद भी रहेगा। उस समय यह संघ के सम्बन्ध में भी आवश्यक कार्य सम्पादन करेगा। गवर्नर-जनरल की स्वीकृति से, यह किसी प्रान्त, या संघान्तरित राज्य की ओर से भी उक्त प्रकार के कार्य कर सकेगा। इसकी, तथा इसके विभाग के पदाधिकारियों की नियुक्ति, छुट्टी और पेन्शन आदि के नियम भारत-मन्त्री द्वारा बनाये जाया करेंगे।

सम्राट्-प्रतिनिधि——संघ का निर्माण होने के बाद, यहाँ ब्रिटिश भारत के शासन सम्बन्धी विषयों में सम्राट् का प्रतिनिधि गवर्नर-जनरल होगा; उसकी नियुक्ति सम्राट् द्वारा की जाया करेगी। देशी राज्यों के शासन-प्रबन्ध सम्बन्धी विषयों में सम्राट् का प्रतिनिधि वायसराय होगा, उसकी भी नियुक्ति सम्राट् द्वारा ही हुआ करेगी। इस प्रकार उक्त दो पदों पर पृथक्-पृथक् व्यक्ति रह सकते हैं, परन्तु सम्राट् को दोनों पद पर एक ही व्यक्ति की नियुक्ति करने का भी अधिकार होगा।

वायसराय—सम्राट्-प्रतिनिधि के पूर्वोक्त दो स्वरूपों में से गवर्नर-जनरल के सम्बन्ध आगे में लिखा जायगा। यहाँ वायसराय के अधिकार बताये जाते हैं। सम्राट्-प्रतिनिधि की हैसियत से वह उन देशी राज्यों में जो संघ में सम्मिलित न होंगे, सम्राट् के अधिकारों की रक्षा और उसके कर्तव्यों का पालन करेगा। इसी हैसियत से वह संघान्तरित राज्यों के उन विषयों के शासन की देख-भाल करेगा, जो संघ-सरकार को समर्पित न किये जायँगे। वह उन अन्य अधिकारों का भी प्रयोग करेगा जो समय-समय पर उसे सम्राट् द्वारा प्राप्त हों।

संघ-सरकार—संघ का निर्माण हो जाने पर भारतवर्ष की केन्द्रीय सरकार का नाम संघ-सरकार होगा। इस समय जो शासन-कार्य कौंसिल-युक्त गवर्नर-जनरल के नाम से होता है, वह पीछे गवर्नर-जनरल के ही नाम से हुआ करेगा। गवर्नर-जनरल की एक मन्त्रिसभा उसके विशेषाधिकारों को छोड़कर अन्य विषयों में सहायता या परामर्श देगी। इसमें अधिक-से-अधिक दस मन्त्री होंगे।

गवर्नर-जनरल के मन्त्री उसी के द्वारा चुने जायँगे, और जब तक वह चाहेगा तब तक वे अपने पद पर बने रहेंगे। अगर कोई मन्त्री लगातार छः मास के लिए संघीय व्यवस्थापक मण्डल की किसी सभा का सदस्य न हो तो वह इस समय के पूरा होने पर मन्त्री न रह सकेगा। मन्त्रियों का वेतन संघीय व्यवस्थापक मंडल समय समय पर क़ानून बनाकर निर्धारित करेगा, और जब तक उक्त मंडल निर्धारित न करे, गवर्नर-जनरल उसका निश्चय करेगा। किसी मन्त्री का वेतन उसके कार्य-काल में बदला न जायगा।

यह प्रश्न किसी न्यायालय में नहीं पूछा जा सकेगा कि किसी विषय में मंत्रियों ने गवर्नर-जनरल को कुछ परामर्श दिया या नहीं, और दिया तो क्या।

गवर्नर-जनरल—गवर्नर-जनरल के अधिकार तीन भागों में विभक्त किये जा सकते हैं:—(१) शासन सम्बन्धी अधिकार। (२) क़ानून-निर्माण सम्बन्धी अधिकार। (३) आर्थिक अधिकार।

पहले शासन सम्बन्धी अधिकारों का विचार किया जाता है, (अन्य अधिकार आगे बताये जायँगे)। संघ सम्बन्धी कुछ कार्यों का प्रबन्ध गवर्नर-जनरल अपने विवेक से, तथा कुछ कार्य अपने व्यक्तिगत निर्णय के अनुसार कर सकेगा। इन कार्यों को छोड़कर शेष कार्यों को वह मन्त्रिमण्डल के परामर्श से करेगा। किसी विषय में गवर्नर-जनरल अपने विवेक या व्यक्तिगत निर्णय के अनुसार कार्य कर सकता है, या नहीं, इसके सम्बन्ध में गवर्नर-जनरल स्वयं जो फैसला करदे, वही अंतिम माना जायगा। गवर्नर-जनरल के किये हुये किसी कार्य के औचित्य का प्रश्न इस आधार पर नहीं उठाया जायगा कि उसे यह कार्य अपने विवेक से करना चाहिए था या नहीं, या उसे इसमें अपने व्यक्तिगत निर्णय का उपयोग करना चाहिए था या नहीं।'

गवर्नर-जनरल के अपने विवेक के अनुसार कोई कार्य करने का अर्थ यह है, कि इसमें उसे मन्त्रिमंडल का परामर्श लेने की आवश्यकता नहीं है। उसके, अपने व्यक्तिगत निर्णय के अनुसार, कार्य करने का

आशय यह है कि वह उसके सम्बन्ध में अपने मन्त्रिमण्डल से परामर्श तो करेगा, परन्तु उससे सहमत न होने की दशा में, वह अपने निर्णय के अनुसार कार्य कर सकता है।

गवर्नर-जनरल अपने विवेक के अनुसार विशेषतया निम्नलिखित कार्य कर सकता है:—

(क) मन्त्रियों, परामर्शदाताओं, और प्रथम आर्थिक परामर्शदाता की नियुक्ति, (ख) मन्त्रिमण्डल का सभापति होना, (ग) संघ-शासन के कार्य-संचालन सम्बन्धी नियम बनाना, (घ) रिजर्व बैंक के गवर्नर, डिप्टी-गवर्नर, और चार संचालकों की नियुक्ति, (च) 'संघीय रेलवे अथारिटी' के कम-से-कम तीन सदस्यों की, और सभापति आदि की नियुक्ति।

विशेषतया निम्नलिखित विषयों में गवर्नर-जनरल अपने व्यक्तिगत निर्णय के अनुसार कार्य कर सकता है:—

(क) उन विषयों का प्रबन्ध, जिन्हें हम आगे उसके सुरक्षित विषय कहेंगे। (ख) जिन विषयों में उसका विशेष उत्तरदायित्व है। (ग) रेलवे अथारिटी के सदस्यों को उनके पद से पृथक् करना।

विधान-युक्त शासन असफल होने पर संघ-सरकार के समस्त अथवा आवश्यकतानुसार कार्य गवर्नर-जनरल के अधीन होंगे।

सुरक्षित विषय—(१) सेना, (२) ईसाई धर्म, (३) पर-राष्ट्र (भारतीय संघ और सम्राट् के, अन्य राज्यों के साथ के पारस्परिक सम्बन्ध को छोड़कर), तथा (४) कबीलों के इलाकों के प्रबन्ध में, गवर्नर-जनरल अपने विवेक के अनुसार कार्य करेगा। इन चार विषयों को हम उसके सुरक्षित विषय कह सकते हैं। इनमें मन्त्रियों का परामर्श नहीं लिया जायगा। इनके सम्बन्ध में सहायता देने के लिए गवर्नर-जनरल अधिक-से-अधिक तीन सलाहकार (कौंसिलर) नियत कर सकता है। इन सलाहकारों की वेतन, और नौकरी की शर्तें सपरिषद सम्राट् निर्धारित करेगा।

[(१) सेना-विभाग केन्द्रीय सरकार के विभागों में मुख्य है। इसके प्रबन्ध के लिए सम्राट् एक जंगी लाट (कमांडरन चीफ) नियुक्त करेगा, और भारत-मन्त्री अपने परामर्शदाताओं की सहमति से विविध नियम बनायेगा। इस विभाग को भारतीय मन्त्री के सुपुर्द नहीं किया गया। (२) धर्म विभाग द्वारा बड़े-बड़े ईसाई पादरियों को सहायता दी जाती है। जब कि भारतवर्ष में अनेक धर्म प्रचलित हैं, एक विशेष धर्म के विभाग का कुछ औचित्य प्रतीत नहीं होता। (३) पर-राष्ट्र विभाग गवर्नर-जनरल के अधीन होने से वही विदेशों से व्यापारिक संधियाँ आदि करेगा, इन सन्धियों में वह इंगलैंड के हितों की रक्षा करेगा ही; भारतवर्ष के हितों का यथेष्ट ध्यान रखा जाय और दक्षिण अफ्रीका आदि देशों में भारतीयों के साथ जो दुर्व्यवहार होता है, उसका विरोध हो, इस सम्बन्ध में भारतीय मन्त्री-सभा कुछ विशेष न कर सकेगी। (४) कबीलों के इलाकों के सम्बन्ध में यही वक्तव्य है कि केन्द्रीय सरकार इन्हें पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त की सरकार को सौंप दे, वह इनके शासन-प्रबन्ध की ज़िम्मेदारी लेने को तैयार रही है।]

गवर्नर-जनरल का विशेष उत्तरदायित्व—गवर्नर-जनरल निम्नलिखित विषयों के लिए विशेष रूप से उत्तरदायी होगा—यह उत्तरदायित्व ब्रिटिश सरकार के प्रति होगा, (भारतीय जनता के प्रति नहीं)—जब कभी उसे अपने इस उत्तरदायित्व पर आघात पहुँचता हुआ प्रतीत होगा, तो वह (मन्त्रियों की सलाह के विरुद्ध भी), अपने व्यक्तिगत निर्णय के अनुसार कार्य कर सकेगा।

१—भारतवर्ष या उसके किसी भाग के शान्ति-भङ्ग का निवारण करना।

२—संघ-सरकार की आर्थिक स्थिरता और साख को सुरक्षित रखना। गवर्नर-जनरल को, इस उत्तरदायित्व सम्बन्धी कार्य के करने में सहायता देने के लिए एक आर्थिक परामर्शदाता ('फाइनेन्शल एडवाइजर') होगा। वह संघ-सरकार को भी आवश्यकतानुसार आर्थिक

विषयों में परामर्श देगा। वह, जब तक गवर्नर-जनरल चाहेगा, अपने पद पर बना रहेगा। उसका वेतन, भत्ता, उसके विभाग के पदाधिकारियों की संख्या, तथा उनकी नौकरी की शर्तें गवर्नर-जनरल निर्धारित करेगा। इन विषयों, तथा आर्थिक परामर्शदाता की नियुक्ति और बर्खास्तगी का अधिकार गवर्नर-जनरल को रहेगा, और वह इन अधिकारों का उपयोग अपने विवेक से करेगा। अगर वह आर्थिक परामर्शदाताको नियुक्त करने का निश्चय करे, तो वह प्रथम बार की बात को छोड़कर, इस पद पर नियुक्त किये जानेवाले व्यक्ति को चुनने से पूर्व, अपने मन्त्रियों का परामर्श लेगा।

३—ऐसे कार्य को (वह शासन सम्बन्धी हो, या व्यवस्था सम्बन्धी) रोकना, जिससे इंगलैंड या बर्मा से भारत में आनेवाले माल के सम्बन्ध में भेद-नीति का व्यवहार हो।

४—अल्प-संख्यकों के उचित हितों की रक्षा करना।

५—वर्तमान तथा भूत-पूर्व सरकारी कर्मचारियों और उनके आश्रितों के, नवीन विधानान्तर्गत अधिकारों और उचित हितों की रक्षा करना।

६—संघीय कानूनों के सम्बन्ध में, इस बात की व्यवस्था करना कि व्यापारिक और जातिगत विषयों के भेद-भाव या पक्षपात मूलक कानून न बनें।

७—देशी राज्यों के अधिकारों की तथा उनके नरेशों के अधिकारों और मान मर्यादा की, रक्षा करना।

८—इस बात का प्रबन्ध करना कि जो कार्य गवर्नर-जनरल को अपने विवेक या व्यक्तिगत निर्णय के अनुसार करने हैं, उनके सम्पादन में किसी अन्य विषय सम्बन्धी कारवाई से कुछ बाधा उपस्थित न हो।

एडवोकेट जनरल—गवर्नर-जनरल संघ के लिए एक ऐसे व्यक्ति को एडवोकेट जनरल के पद पर नियुक्त किया करेगा, जिसमें

संघ-न्यायालय के जज होने की योग्यता हो। वह संघ-सरकार को आवश्यक कानूनी विषयों पर परामर्श देगा, और ब्रिटिश भारत के तथा संघ में सम्मिलित देशी राज्यों के न्यायालयों में पैरवी कर सकेगा।

संघीय व्यवस्थापक मण्डल; सङ्गठन — संघ-निर्माण होने पर भारतवर्ष के केन्द्रीय क़ानून बनानेवाली संस्था का नाम संघीय व्यवस्थापक मण्डल (फ़ीडरल लेजिस्लेचर) होगा। उसमें सम्राट्-प्रतिनिधि (गवर्नर-जनरल) के अतिरिक्त दो सभाएँ होंगी; राजपरिषद (कौंसिल-आफ़-स्टेट), और संघीय व्यवस्थापक सभा (फ़ीडरल ऐसेम्बली)।

राजपरिषद में अधिक-से-अधिक २६० सदस्य होंगे:—१५६ सदस्य ब्रिटिश भारत के; और अधिक-से-अधिक १०४, देशी राज्यों के। यह एक स्थायी संस्था होगी। इसके एक-तिहाई सदस्य प्रति तीसरे वर्ष चुने जाया करेंगे। ब्रिटिश भारत के सदस्यों में से १५० जनता द्वारा निर्वाचित (और ६ नामज़द) होंगे। राजपरिषद के प्रथम संगठन के पश्चात् उसमें तीन तीन वर्ष में, जो स्थान ख़ाली होंगे, उनकी पूर्ति के लिए सदस्यों का चुनाव नौ-नौ वर्ष के वास्ते होगा। राजपरिषद में छः सदस्य गवर्नर-जनरल द्वारा नामज़द रहेंगे। इसके प्रथम संगठन के समय इन सदस्यों में से दो, तीन वर्ष के लिए; दो, छः वर्ष के लिए; और शेष दो, नौ वर्ष के लिए; चुने जायँगे।

इस सभा में अधिक-से-अधिक ३७५, सदस्य होंगे, जिनमें २५०, सदस्य ब्रिटिश भारत के, और अधिक-से-अधिक १२५, देशी राज्यों के होंगे। ब्रिटिश भारत के सदस्यों का चुनाव अप्रत्यक्ष होगा, अर्थात् सीधे जनता द्वारा न होगा वरन प्रान्तों की व्यवस्थापक सभाओं (ऐसेम्बली) के सदस्यों द्वारा प्रति पाँचवें वर्ष होगा।

देशी राज्यों की ओर से लिये जानेवाले सदस्यों का निर्वाचन न होकर, उनकी नियुक्ति की व्यवस्था की गयी है। नियुक्ति नरेशों द्वारा

होगी। कोई व्यक्ति किसी सभा का सदस्य नियत नहीं किया जायगा, जो ब्रिटिश प्रजा, या संघान्तरित राज्य की प्रजा या नरेश न हो। राज-परिषद् के लिए नियुक्त होनेवाला सदस्य तीस वर्ष से कम, और संघीय व्यवस्थापक सभा के लिए नियुक्त होनेवाला सदस्य पचास वर्ष से कम, आयु का न होगा।

व्यवस्थापक मण्डल का कार्यक्षेत्र—निर्धारित नियमों या सीमा को ध्यान में रखते हुए, संघीय व्यवस्थापक मण्डल समस्त ब्रिटिश भारत या उसके किसी भाग के लिए, या किसी संघान्तरित राज्य के लिए क़ानून बना सकेगा। और, उसका बनाया निम्न विषयों का क़ानून, उसके क्षेत्र से बाहर होने के आधार पर अवैध नहीं ठहराया जायगा—सम्राट् की भारत-स्थित ब्रिटिश प्रजा और नौकर। २—भारतवर्ष में बसी हुई ब्रिटिश प्रजा, वह चाहे कहीं भी हो। ३—ब्रिटिश भारत में रजिस्टरी किये हुए जहाज, हवाई जहाज़, और उन पर रहनेवाले आदमी। ४—संघान्तरित राज्य की किसी भी जगह रहनेवाली प्रजा के लिए ऐसा विषय जिसके सम्बन्ध में उस राज्य ने प्रवेश-पत्रक में यह स्वीकार कर लिया है कि संघीय व्यवस्थापक मण्डल क़ानून बना सकता है। ५—ब्रिटिश भारत में संगठित जल, स्थल या हवाई सेना में कार्य करनेवाले या उससे सम्बन्धित व्यक्ति।

क़ानून-निर्माण की दृष्टि से विविध विषय तीन सूचियों में विभक्त किये गये हैं, उनमें से प्रान्तीय और सम्मिलित सूची के विषय ग्यारहवें परिच्छेद में दिये जा चुके हैं; संघीय विषयों के सम्बन्ध में संघीय व्यवस्थापक मण्डल क़ानून बना सकता है, (प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडल नहीं बना सकता); इनमें से मुख्य निम्नलिखित हैं:—सेना, छावनियाँ, मुद्रा और टकसाल, डाक, तार, टेलीफोन, बेतार का तार, ध्वनि-विस्तार ('ब्राड कास्टिंग'), सङ्घ की सरकारी नौकरियाँ, काशी और अलीगढ़ के विश्वविद्यालय, मनुष्य-गणना, आयात-निर्यात, बड़ी-बड़ी संघीय रेलवे, हवाई जहाज़, समुद्रयात्रा, मुद्रणाधिकार ('कापी राइट')

युद्ध-सामग्री, पेट्रोलियम, खान और तेल के कुए, संघीय व्यवस्थापक मंडल का चुनाव, नमक, नागरिककरण, आय-कर, आयात-निर्यात कर, उत्तराधिकार कर, कारपोरेशन कर आदि संघीय आय के साधन।

'सम्मिलित' विषयों के सम्बन्ध में संघीय व्यवस्थापक मंडल क़ानून बना सकता है; और अगर वह न बनाये तो प्रांतीय व्यवस्थापक मंडल बना सकता है। यदि प्रान्तीय और संघीय व्यवस्थापक मंडल के बनाये किसी विषय के क़ानून में परस्पर विरोध हो तो केन्द्रीय व्यवस्थापक मंडल का बनाया क़ानून ठीक समझा जायगा।

जो विषय संघीय या प्रान्तीय सूची में नहीं है, उनके सम्बन्ध में गवर्नर-जनरल अपने विवेक से संघीय या किसी प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडल को क़ानून बनाने का अधिकार, सार्वजनिक विज्ञप्ति करके दे सकता है; इसमें ऐसे कर लगाने का विषय भी सम्मिलित किया जा सकता है, जो उक्त सूची में न हो।

विशेष दशाओं में मण्डल का अधिकार—साधारणतया संघीय व्यवस्थापक मंडल किसी प्रान्तीय विषय के सम्बन्ध में क़ानून उस दशा में बना सकता है, जब उसका सम्बन्ध केवल एक ही प्रान्त या उसके भाग से न हो। परन्तु यदि गवर्नर-जनरल अपने विवेक से, घोषणा द्वारा यह सूचित करदे कि युद्ध या आन्तरिक अशान्ति के कारण ऐसा घोर संकट विद्यमान है कि भारतवर्ष की रक्षा ख़तरे में है, तो संघीय व्यवस्थापक मंडल को एक प्रान्त या उसके किसी भाग के संबंध में भी क़ानून बनाने का अधिकार होगा। ऐसा मसविदा या संशोधन गवर्नर-जनरल की पूर्व स्वीकृति बिना उपस्थित नहीं किया जायगा; और इससे प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडल के क़ानून बनाने के निर्धारित अधिकारों में बाधा न होगी; परन्तु, यदि उसका क़ानून उक्त नियम के अनुसार बनाये हुये, संघीय व्यवस्थापक मंडल के क़ानून से असंगत हो तो संघीय व्यवस्थापक मंडल का क़ानून व्यवहृत होगा; चाहे वह प्रान्तीय कानून से पहले बना हो या पीछे; और प्रान्तीय कानून, जितने अंश में वह संघीय कानून से असङ्गत है, रद्द रहेगा।

अगर दो या दो या अधिक प्रान्तों के व्यवस्थापक मंडल इस आशय का प्रस्ताव पास कर दें कि कोई प्रान्तीय विषय उक्त प्रान्तों में संघीय व्यवस्थापक मंडल द्वारा नियमित होना चाहिए, तो यह मंडल उस विषय का क़ानून बना सकता है। यह कानून किसी सम्बन्धित प्रात के व्यवस्थापक मण्डल द्वारा संशोधित अथवा रद्द किया जा सकता है।

व्यवस्थापक मडल के अधिकारों की सीमा—गवर्नर-जनरल की पूर्व स्वीकृति बिना, संघीय व्यवस्थापक मंडल की किसी सभा में कोई ऐसा मसविदा या संशोधन उपस्थित नहीं किया जा सकताः—

(क) जो पार्लिमेंट के, ब्रिटिश भारत सम्बन्धी, किसी कानून को रद्द या संशोधित करता हो, या उससे असंगत हो, या

(ख) जो गवर्नर-जनरल, या गवर्नर के कानून या आर्डिनेन्स को रद्द या संशोधित करता हो, या उससे असंगत हो; या

(ग) जिसका प्रभाव किसी ऐसे कार्य पर पड़ता हो, जो गवर्नर-जनरल को नवीन विधान के अनुसार, अपने विवेक से करना हो, या

(घ) जो पुलिस सम्बन्धी किसी कानून को रद्द या संशोधत करता हो, या उस पर असर डालता हो, या

(च) जो योरपियन ब्रिटिश प्रजा सम्बन्धी फौजदारी कार्य-पद्धति पर प्रभाव डालता हो, या

(छ) जो ब्रिटिश भारत से बाहर के आदमियों और कम्पनियों पर, ब्रिटिश भारत के आदमियों तथा कम्पनियों की अपेक्षा, अधिक कर लगाता हो, या

(ज) जो ब्रिटिश संयुक्त राज्य में कर लगने वाली आय को संघीय कर से मुक्त करने के विरोध में हो।

अगर संघीय व्यवस्थापक मंडल के किसी कानून या उसके किसी भाग को गवर्नर-जनरल या सम्राट् स्वीकार करले तो वह रद्द नहीं होगा, चाहे उसके लिए उपर्युक्त पूर्व स्वीकृति न दी गयी हो। ब्रिटिश पार्लिमेंट,

सम्राट् और भारत-मंत्री आदि सम्बन्धी जिन विषयों के लिए प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडल कानून नहीं बना सकता, उनके लिए संघीय व्यवस्थापक मण्डल भी कानून नहीं बना सकता।

आर्थिक विषयों सम्बन्धी कार्य-पद्धति--गवर्नर-जनरल संघीय व्यवस्थापक मण्डल की दोनों सभाओं के सामने आगामी वर्ष के अनुमानित आय-व्यय का नक्शा उपस्थित करायेगा। उसमें व्यय की दो प्रकार की मदों की रकमें पृथक्-पृथक् दिखायी जायँगी :—(१) जो पूर्व निश्चित हैं, जिन पर संघीय व्यवस्थापक मण्डल का मत नहीं लिया जायगा, और (२) जिन पर मत लिया जायगा। व्यय की निम्न-लिखित मदों पर संघीय व्यवस्थापक मण्डल को मत देने का अधिकार न होगा :—

(क) गवर्नर-जनरल का वेतन और भत्ता तथा उसके कार्यालय सम्बन्धी निर्धारित व्यय।

(ख) संघीय ऋण सम्बन्धी व्यय, सूद आदि।

(ग) मंत्रियों, सलाहकारों, आर्थिक परामर्शदाता, ऐडवोकेट-जनरल, तथा चीफ-कमिश्नरों का, और आर्थिक परामर्शदाता के कर्मचारियों का वेतन और भत्ता।

(घ) संघ-न्यायालय के जजों का वेतन, भत्ता और पेंशन, और हाईकोर्ट के जजों की पेंशन।

(च) गवर्नर-जनरल के सुरक्षित विषय—सेना, ईसाई धर्म, पर-राष्ट्र विषय, और कबीलों के ('ट्राइबल') इलाकों का व्यय।

(छ) संघ से सम्राट् को मिलने वाली ऐसी रकम, जो सम्राट् का देशी राज्यों से सम्बन्ध होने के कारण, खर्च हो।

(ज) प्रान्तों के 'पृथक्' क्षेत्रों के लिए होनेवाला व्यय।

(झ) अदालती निर्णयों के अनुसार होनेवाला व्यय।

(ट) अन्य व्यय, जो शासन विधान अथवा संघीय व्यवस्थापक मंडल के कानून के अनुसार किया जाना आवश्यक हो।

कोई प्रस्तावित व्यय उक्त मदों में से किसी में आता है, या नहीं, इसका निर्णय गवर्नर-जनरल अपने विवेक से करेगा। [क] और [छ] को छोड़कर अन्य मदों पर मंडल की किसी भी सभा में वादानुवाद हो सकेगा।

उपर्युक्त [क] से [ट] तक की मदों को छोड़कर, अन्य विषयों के खर्च के प्रस्ताव संघीय व्यवस्थापक सभा के लिए, और उसके पश्चात् राजपरिषद के मत के लिए, माँग के रूप में रखे जायँगे। प्रत्येक सभा को अधिकार है कि वह उस माँग को स्वीकार करे, अस्वीकार करे, या उसे घटाकर स्वीकार करे। यदि संघीय व्यवस्थापक सभा किसी माँग को (१) अस्वीकार कर दे, या (२) घटाकर स्वीकार करे तो जब तक गवर्नर-जनरल आदेश न करे, वह पहली दशा में राजपरिषद के सामने न रखी जायगी और दूसरी दशा में कम की हुई रकम के लिए ही माँग की जायगी। गवर्नर-जनरल का आदेश होने पर परिषद में उतनी रकम के लिए माँग की जायगी, जितनी आदेश में सूचित हो, और जो मूल माँग से अधिक न हो।

अगर दोनों सभाओं में किसी माँग के सम्बन्ध में मत-भेद हो तो उसके सम्बन्ध में गवर्नर-जनरल दोनों सभाओं की संयुक्त बैठक करायेगा, और दोनों सभाओं के उपस्थित तथा मत देनेवाले, सदस्यों के बहुमत का निर्णय दोनों सभाओं का निर्णय माना जायगा।

गवर्नर-जनरल की सिफारिश के बिना, किसी काम के लिए रुपये की माँग का प्रस्ताव नहीं किया जा सकता। यदि सभाओं ने कोई माँग स्वीकार नहीं की, या घटाकर स्वीकार की, और इससे गवर्नर-जनरल की सम्मति में उसके उत्तरदायित्व को पूरा करने में बाधा उपस्थित हो तो वह अपने विशेषाधिकार से, रद्द की हुई, या घटायी हुई माँग की पूर्ति कर सकता है।

[इस विधान के अनुसार लगभग ८५ प्रतिशत व्यय के सम्बन्ध में व्यवस्थापक मंडल को मत देने का अधिकार नहीं था; शेष, केवल १५

प्रतिशत व्यय पर सदस्य मत दे सकते थे; इस व्यय पर भी गवर्नर-जनरल को विशेषाधिकार था।]

गवर्नर-जनरल के कानून बनाने के अधिकार—गवर्नर-जनरल (१) संघीय व्यवस्थापक मंडल के अवकाश के समय आर्डिनेंस (अस्थायी कानून) बना सकता था, (२) अपने उत्तरदायित्व के विचार से आवश्यक समझने पर, कुछ दशाओं में संघीय व्यवस्थापक मंडल के कार्य-काल में भी आर्डिनेंस बना सकता था, (३) विशेष दशाओं में वह स्थायी रूप से भी (मंडल की इच्छा के विरुद्ध), कानून बना सकता था।

इस विधान की मुख्य बातें—(१) इसके अनुसार भारतवर्ष में केन्द्रीय शासन का स्वरूप संघ-शासन का रखा गया था, जिसमें ब्रिटिश भारत और देशी राज्य दोनों सम्मिलित हों। इस प्रकार अंगरेजों के समय में यह समस्त भारतवर्ष का पहला ही शासन-विधान था। तथापि एक भाग (ब्रिटिश भारत) में, शासन उत्तरदायी होना और दूसरे भाग में उसका स्वेच्छाचारमूलक बना रहना अस्वाभाविक था। (२) केन्द्र में भी उत्तरदायी शासन स्थापित करने का निश्चय किया गया था परन्तु वह कई संरक्षणों के साथ था। कई महत्व-पूर्ण विषयों में गवर्नर-जनरल का विशेष उत्तरदायित्व माना गया था, तथा कुछ विषय ऐसे निर्धारित कर दिये गये थे, जिनका शासन गवर्नर-जनरल अपने परामर्शदाताओं की सलाह से अपनी समझ के अनुसार करे। इस प्रकार वह जनता के प्रतिनिधियों के प्रति बहुत ही कम उत्तरदायी होता।*

*इस विधान के अनुसार, अब प्रान्तीय शासन का क्या स्वरूप है इसकी आलोचना पहले कई परिच्छेदों में विस्तार-पूर्वक की जा चुकी है।

स्मरण रहे कि यह विधान ऐसा नहीं था, जो पूर्ण हो या स्वयं विकसित होने वाला हो। मांट-फोर्ड सुधारों में यह निश्चय किया गया था कि दस-दस वर्ष में भारतीय शासन-व्यवस्था की जाँच एक कमीशन द्वारा हो, और उस पर पार्लिमेंट में विचार हो। इस विधान में वैसी जाँच की व्यवस्था नहीं थी; यह निश्चय किया गया था कि प्रत्येक महत्व-पूर्ण परिवर्तन इंगलैंड में ही होगा; या तो वह पार्लिमेंट के एक्ट द्वारा होगा, अथवा 'आर्डर्स-इन-कौंसिल' अर्थात् सम्राट् की आज्ञाओं से होगा; भारतवर्ष में भारतवासियों द्वारा कोई विशेष परिवर्तन नहीं हो सकता।

भारतवर्ष के लिए संघ-शासन उपयोगी है—भारतवर्ष एक है, और अखंड है। इसे नक्शे में लाल और पीले दिखाये जाने वाले ब्रिटिश भारत और देशी राज्यों में विभक्त करना अस्वाभाविक है। भौगोलिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, आर्थिक—किसी भी दृष्टि से विचार किया जाय, सिद्धान्त से यहाँ संघ शासन-प्रणाली बहुत उपयोगी है। अनेक भारतीय नेताओं ने समय-समय पर यह विचार प्रकट किया है, अन्य राजनीतिज्ञों ने भी इसका समर्थन किया है। इस समय भी जनसंख्या और क्षेत्रफल आदि का विचार करके, विचारशील भारतवासी अपने देश के लिए अन्ततः संघ-शासन को ही अनिवार्य समझते हैं, परन्तु इसमें एक शर्त है—और यह शर्त बहुत ज़रूरी है—कि यहाँ संघ का निर्माण निर्दोष राजनैतिक तत्वों के आधार पर किया जाय।

भारतवर्ष में संघ-निर्माण का उद्देश्य यह होना चाहिए कि यहाँ विविध भागों में भाषा, रहन-सहन आदि की भिन्नता होते हुए भी यह देश इस प्रकार शासित हो कि इसके सब अंग सम्मिलित रूप से सोचना विचारना और व्यवहार करना सीखें, —संघ के सब महत्व-पूर्ण शासन-विषयों में समान नीति हो; व्यापार-नीति, राजस्व, निर्वाचनपद्धति और नागरिकता में एक बड़ी सीमा तक समानता रहे। संघ को आत्म रक्षा करने, तथा विदेशों से राजनैतिक और आर्थिक सम्बन्ध स्थापित करने की स्वतन्त्रता हो; उसे अपना आदर्श प्राप्त करने में, संसार में अपना आर्थिक और राजनैतिक पद प्राप्त करने में सुविधा हो।

सन् १९३५ का संघ-विधान अनिष्टकारी था—अब सन् १९३५ के विधान की बात लीजिए। इसमें संघ-शासन के सिद्धान्तों और आदर्शों की नितान्त अवहेलना की गयी थी। फल-स्वरूप यह विधान संघ के आवश्यक गुणों से रहित था। इसमें दो भिन्न प्रकार की शासनपद्धति वाले प्रदेशों का गठबंधन किया गया था। ब्रिटिश भारत में लोकसत्तात्मक शासन पद्धति और संस्थाएँ, कुछ अपूर्ण रूप में ही सही, विद्यमान हैं; जब कि अधिकांश देशी राज्यों में अवैध राजसत्तात्मक शासन-पद्धति है, प्रजा-प्रतिनिधियों का उसमें प्रायः कुछ भी भाग नहीं है। विधान में इनके अन्तर को घटाने के लिए यह व्यवस्था भी नहीं की गयी कि देशी राज्यों में क्रमशः उत्तरदायी शासनपद्धति प्रचलित की जाय। इसके विपरीत, उनका सम्राट् से पृथक् और

सीधा सम्बन्ध रहने की व्यवस्था करके उन्हें ब्रिटिश भारत से और भी दूर करने की योजना की गयी।

पुनः यह विधान इस देश को न केवल विदेश-नीति और व्यापार के सम्बन्ध में, वरन् अपनी रक्षा और आन्तरिक प्रबन्ध में भी परतंत्र बनाये हुए था। केन्द्रीय कार्यों के संचालन के लिए प्रायः समस्त शक्तियाँ और अधिकार मंत्रिमण्डल को न देकर गवर्नर-जनरल को सौंप दिये गये थे। उसके भारतीय मंत्री तभी तक अपने पद पर रहते, जब तक कि वे उसकी इच्छानुसार कार्य करते; फिर उसके सलाहकारों को तो बात ही क्या, वे तो सर्वथा उसके अधीन ही होते। इस प्रकार, संघ-सरकार का कार्य बहुत कुछ गवर्नर-जनरल के विवेक या व्यक्तिगत निर्णय पर अवलम्बित होता; और, जब वह अपने विशेषाधिकारों से काम लेता—जैसा कि वह विधान के अनुसार कर सकता था—तो भारतवर्ष की राजनैतिक स्थिति कैसी चिन्तनीय होती, इस बात का सहज ही अनुमान किया जा सकता है।

संघीय व्यवस्थापक मण्डल का संगठन और कार्यपद्धति अत्यन्त दूषित थे, तथा इसके क़ानून-निर्माण सम्बन्धी एवं आर्थिक अधिकार बहुत कम थे; यहाँ तक कि ऐसा व्यवस्थापक मण्डल संघ-शासन की दृष्टि से सर्वथा अनुपयुक्त था। इस विधान के अनुसार सङ्घ का प्रान्तों से जो राजस्व-सम्बन्ध रहनेवाला था, उसके विषय में बहुत सी ब्यौरेवार बातें प्रकाशित न होने से उनकी चर्चा नहीं की जा सकती; किन्तु जो कुछ ज्ञात हुआ, वह इस विधान को निषिद्ध ठहराने के लिए पर्याप्त था।

विधान स्थगित हो गया—ऐसे दूषित विधान का जनता द्वारा प्रबल विरोध होना स्वाभाविक ही था। अतः ब्रिटिश भारत तथा देशी राज्यों में सर्वत्र इसका विरोध हुआ। कुछ साम्प्रदायिक तथा स्वार्थी लोगों की यह इच्छा अवश्य रही कि विधान अमल में आ जाय। परन्तु वे नगण्य थे। राष्ट्रीय नेताओं ने घोषणा कर दी थी कि यदि ब्रिटिश सरकार हम पर इस विधान को लादेगी तो हम सत्याग्रह के अस्त्र द्वारा उसका विरोध करेंगे। किन्तु उसका अवसर ही न आया। विधान कार्यरूप में परिणत होने से पहले ही स्थगित कर दिया गया। सन् १९२७ ई० से ब्रिटिश राजनीतिज्ञ इस विधान के सम्बन्ध में दौड़-धूप करने लगे थे। आठ वर्ष तक पहाड़ खोदने पर एक चुहिया निकली; और वह भी जाती रही। पर किसी राष्ट्रवादी को इसका कुछ अफसोस न हुआ। विधान था ही ऐसा असतोषप्रद और अवांछनीय!

विधान कैसा होना चाहिए?—हम पहले कह चुके हैं कि सिद्धान्त से भारतवर्ष के लिए संघ-शासनपद्धति बहुत उपयोगी है, परन्तु संघ-शासन, वास्तव में संघ शासन होना चाहिए। उसकी योजना सफल होने के लिए उसमें निम्नलिखित बातें अत्यन्त आवश्यक हैं :—

(१) भारतीय सङ्घ अपने आन्तरिक तथा बाह्य राजनैतिक सम्बन्धों में स्वतंत्र होना चाहिए, वह किसी अन्य राज्य के अधीन नहीं होना चाहिए, उसे अपनी राष्ट्र-नीति, सैन्य नीति तथा व्यापार और विदेश-नीति निर्धारित करने का पूर्ण अधिकार होना

चाहिए। (२) सङ्घीय विषयों में उन सब केन्द्रीय विषयों का समावेश होना चाहिए, जो देश-हित की दृष्टि से आवश्यक हों, चाहे उनका सम्बन्ध इस समय देशी राज्यों से ही क्यों न हो। (३) सङ्घीय व्यवस्थापक सभा का चुनाव प्रत्यक्ष होना चाहिए, और मण्डल की दोनों सभाओं में देशी राज्यों की ओर से भाग लेनेवाले सदस्य, उनकी प्रजा के द्वारा निर्वाचित व्यक्ति होने चाहिए, न कि नरेश, या नामज़द किये हुए व्यक्ति। (४) विधान में नागरिकों के मूल अधिकारों की सुरक्षा की व्यवस्था होनी चाहिए। (५) नयी संघ-सरकार का कार्य सफलता-पूर्वक चलाने के लिए आर्थिक अनुकुलता होनी चाहिए; सङ्घ को सरकारी ऋण के भार से मुक्त किया जाना चाहिए; इस ऋण का दो-तिहाई भाग साम्राज्य-हित के लिए ही खर्च किया गया है, और एक-तिहाई का मुक्त करना इंगलैंड के लिए कोई बड़ी बात नहीं है; आयर्लैंड के साथ वह ऐसा कर चुका है। आर्थिक सफलता के लिए शासन-कार्य का व्यय भी कम होना चाहिए; प्रजा के कर-भार को कम करने, अथवा प्राप्त करों के राष्ट्रोत्थान सम्बन्धी कार्यों में लगाने की आवश्यकता है। (६) देशी राज्यों में प्रजातंत्र-मूलक शासन स्थापित किया जाना चाहिए। जिन राज्यों की आय तथा जनसंख्या इतनी कम है कि शासन, न्याय, शिक्षा और लोकहित सम्बन्धी अन्य कार्यों का संचालन अच्छी तरह न हो सके, उन्हें निकटवर्ती प्रान्तों में मिला दिया जाय या कई छोटे-छोटे राज्यों का भारतीय संघ के अन्तर्गत एक छोटा संघ बना दिया जाय। (७) संघ को अपने शासन-विधान में परिवर्तन,

संशोधन आदि करने का पूर्ण अधिकार रहना चाहिए।

विधान-निर्माण सम्बन्धी आदर्श—आत्म-निर्णय या स्वभाग्य-निर्माण और स्वावलम्बन इस युग की पुकार है। अब प्रत्येक देश को अपना विधान स्वयं बनाने का अधिकार होना चाहिए, वह अपनी समस्याओं को स्वयं सुलझावे; यदि ऐसा करने में उससे कुछ भूलें होंगी, तो इसमें उसका अनुभव बढ़ेगा। दूसरा देश उस पर कोई विधान जबरदस्ती न लादे। यह सर्वोत्तम स्थिति है। दूसरे दर्जे की बात यह है कि शासक-देश के नीतिज्ञ, शासित देश के नेताओं के समुचित सहयोग से, उसके लिए विधान बनाएँ। तीसरे, और सबसे निकृष्ट दर्जे की बात यह है कि शासक-देश स्वयं ही शासितों के लिए चाहे-जैसा विधान बना डाले। लोकतंत्रवाद के युग में दूसरे या तीसरे दर्जे के विधान से काम न चलेगा, वे न स्थायी होंगे, और न सफल ही। भारतवर्ष के शासन-विधान की रचना के लिए भारतीयों को इंगलैण्ड की राजधानी तक दौड़े जाने की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए। उसके लिए उपयुक्त स्थान भारतवर्ष में ही, देहली, या कोई अन्य केन्द्रीय स्थान होगा, और उसमें भारतीय प्रतिनिधि ही सर्वेसर्वा होंगे; हाँ, उसमें इंगलैण्ड आदि अन्य देशों के वास्तविक हितों का ध्यान रखा जायगा। यह राजनैतिक आदर्श कब पूरा होगा ? जितनी जल्दी पूरा हो, उतना ही भारतवर्ष का, इंगलैण्ड का, और हाँ, संसार का वास्तविक हितसाधन अधिक होगा।

